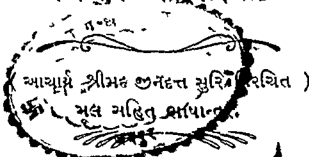
विवेक विलास.



(આચાર્ય શ્રીમદ્ જીનદત્ત સુરિ રચિત)

મૂલ સહિત ભાષાન્તર.

સંશોધિત કરી તૈયાર કરનાર

ભગુભાઈ ફતેહચંદ કારભારી.

પહેલી આવૃત્તિ પ્રત ૧૦૦૦

(સર્વ હક સ્વાધિન)

શ્રી સુરત "જૈન" પ્રિન્ટીંગ વર્કસ લીમીટેડમાં મંછુભાઈ
...ભાઈએ છાપ્યું છે ખપાટીઆ ચકલા-સુરત

आपने अर्पण करी कृतार्थ थाउ छुं, ते स्वीकार उपकृत करशो.

श्री जैन पत्रनी ऑफीस
जेठ वद १०, १०६७
मुंबई

आपनो
आज्ञांकित,
भगुभाइ फत्तेचंद कारभारी.

अर्पण पत्रिका.

पुज्यपाद् जैन रत्न न्याय सागर धर्मोपदेशक,
मुनिराज श्री श्री श्री १००८

लब्धीविजयजीनी पवित्र सेवामां.

अमृतसर—पंजाब.

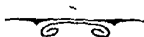
पूज्य श्री !

माणसा जेवा एक नाना गाममा जन्म लई आचार्य श्रीमद् विजय कमलसूरि जेवा पासे अभ्यास करी, जैन धर्मना एक मुनि तरीके पंजाबमां रही जे दिग्विजय आप करो छो, अनेक जीवोने बोध आपी आ संसार समुद्रमाथी तारवा प्रयास करोछो अने न्हानी वय छता साधु चारित्र्यने शोभावी जैन समाजनी धर्मरक्षा करवा जे प्रयास आप करो छो तेना काई स्मरण दाखल आ विवेकविलास ग्रंथ आपने अर्पण करी कृतार्थ थाउ छु, ते स्वीकारी उपकृत करशो.

श्री जैन पत्रनी आफीस
जेठ वद १० १९६५
मुंबइ

आपनो
आज्ञांकित,
भगुभाइ फतेचंद कारभारी.

બે બોલ



વિવેક વિલાસ ગ્રથને પ્રસ્તાવનાની જરૂરજ નથી આ ગ્રથ શ્રાવક ધર્મ અને સસારી જીવન પાળનાર માટે એક ભોમિયા જેવો છે વળી અગાઉ શ્રાદ્ધવિધિ ગ્રથ બહાર પાડી આવા પુસ્તકોની આવશ્યકતા મે બતાવી છે શ્રાદ્ધવિધિ ગ્રથમા જે કાઈ નથી તે આ ગ્રથમા છે આ ગ્રથ સબધી એક ઢુઢક પત્રમા ટિકા હતી પણ આચાર્ય જો કે સસારોપયોગી ઉપદેશ આપી શકે નહી પણ સસારી પુરૂષો સુખી અને દીર્ઘાયુશી કેમ થાય તે સબધી બોધ તો આપી શકે આ ગ્રથ તેવાજ પ્રકારનો છે વળી મુબાઇ યુનીવર્સીટીએ જૈન આહિત્યના ગ્રથોમા આ ગ્રથને મુકી બી એ ની પરિક્ષા માટે તે નિર્માણ કર્યો છે તો આ પ્રસીદ્ધી સવેળાની થયેલી ગણાશે

આ ગ્રથ અગાઉ મારા મિત્ર બાલાભાઇ રાયચદે છપાવ્યો હતો પણ હાલમા તે મળતો નથી તેમજ તેની કીંમત વિશેષ હોવાથી માત્ર બાર આનાની કીંમતે પ્રસીદ્ધ કરી જૈન ગસ્તુ સાહિત્ય પુરૂપાડવામા મારાથી બનતો ફાળો આપી કૃતાર્થ થાઉ છુ

મુબાઇ
'જૈન' ઑફીસ
[illegible] ૧૦



સેવક
ભગુભાઇ ફતેહચદ કારભારી

जैन रत्न न्यायसागर धर्मोपदेशक श्री. मुनि श्री. लब्धीविजयजी महाराजका जीवन चरीत्र.

गुजरात देशमे भोयणीजी तिर्थसे करीवन (अंदाजन) तीन कोसके फासलेपर एक (१) वालसासण नामका छोटासा ग्राम है. जीसमें एक शेठ पिताबरदास नामके दशाश्रीमाली जैनि अपनी पतिव्रता भार्या मोतीबाइके साथ धर्म और अर्थरूप पुरषार्थ द्वयके साथ विरोध न पहुंच शके इसतरह ससारीक सुखको भोगतेथे. इस ग्रामसें एक कोश दुर राजपुरा नामका क्षेत्र है इसमें ठाकोर लोग रहते है. इनके तावेमें राजपुरा, वामलोरी, डागरवा वगेरे कइएक गाम है. पुर्वोक्तश्रीमान उन ठाकोर लोगोंके एक वजीर थें, लोगोमे मोटीके नामसे मशहुर थे. ठाकोर लोगोके पास द्रव्यकी कमी होनेपर कइ वरत सैकडो रूपयेकी मदतभी देनी पडतीथी. इस तरहका लेण देणका व्यवहार भी उनके साथ करना पडता था. उनके घरमें (विक्रम संवत १९४०)मे मेर तेरश वाले दीन पोस सुदी तेरश (१३) को एक लालचंद नामके पुत्र पेदा हुअे. इनमें छोटीसी उमरमेंभी ववतृत्व शक्ति अे

सीथी कि शहेरके छोटेसे लेकर वडे पर्यंत लालच नाम के वाल रत्नको अपनी अपनी गोदमें लेकर खेलाते थें. जव लालचंद उमर नौं (९) सालकी हुइ तव उनके पीताजी स्वर्गलोक पधारें. लालचंदके अेक वडे भाइ भी मौजुद थें. सीरफ दो पुत्र ही उक्त श्रीमानके हुये थे. इनमेंसें जेसी चपलता और धर्म प्रियता लालचंदमें थी वैसी उनकें वडे भाइमें नहि थी. पिताके काल व शहेजाने परराजपुरेके लोगोमें जो कुच्छ लेण देण था उस्का व्यवहार विल्कुल वंध हो गया. और वद नियतसें उन लोगोनें अेक कौडी तकभी नाही दिइ. लालचंदाकि तथा उनके वडे भाइकि साल संभाल लेनेके लिये इनकी भुवा (फइ) शहेर माणसासें वहोत दफा आया करतीथी. और इन दोनोपर उसका अेसा ममत्व था कि अपने प्राणोंका वीनाश होनेपर भी इनका विनाश नहि चाहतीथी. यानि इनके लिये अपने प्राणोकोभी कुरवान कर रखे थें. और घरकी तमाम चीजें की खवर या अधीकार रखना इस वाइ के स्वाधीन था. यह वाइ माणसा निवासी शेठ छगन डुंगर कि भोजाइ थी. ओर दोनो वक्त पडावश्यकमें निपुण ओर व्रत पच्चखाण करनेमें दत्त चित्तथी. इसके सहवाससें लालचंदका भी धर्म में चित्त हमेश लगा रहता था. नौं (९) सालकि उमरमें पढने के लिये लालचंद स्वयमेव गांमठी निशालमें दाखील हुये. उस वक्त इनके दिलमें यह ख्याल आया की हमारे वापने वं

सबब मोहके हमे लोर्ड लडाकर पढानेकी कोशिश नेही कीई इस से उनोने तो अपना फरज अदा नाहि किया कयों कि पिताका फर्ज है कि अपने बालक को पढावें, जो लोग संतान कि मोह-बतमें पडेकर अपने लडकोंको नही पढाते है, देखिये उनके लिये नितिकार क्या फरमाते है.

॥ माता शत्रुः पिता वैरी बालो येन न पाठितः ॥
॥ न शोभते सभामध्ये हंसमध्ये बकोयथा १ ॥

मगर अब हम समज शकते है कि विद्याका पढना बहोत अछा है. अेसा समजकर गामठी निशालमें पढना शुरु कीया. नौ (९) महीनें तक इस निशालकि रथीती रही, बाद में कैयेक कारणके वससें निशाल टुट गइ थी. कयोंकी गाम निशालो के टुटनेमें कोइ देर नाहि लगती है. जब लालचंद को इस निशा-लमें बैठे दो तिन महीने हुए थे कि एक दिन भकोडेके ठाकोर नें सिपाइ नोकर चाकरोंके साथ इसि निशालमें आनकर देरा जमाया. बालसामण भि एक उनकि रियास्तका क्षेत्र है इस लिये खुश होकर पढनेवाले लडकोंको इनाम बांटा. ओर तमाम लडकोंसि लालचंद पर ज्यादा खुश हुए. उनके साथ एक ज्योतिषी ब्राह्मण आया हुवा था. उसनें लालचंद का हाथ देखा. ओर शीरको चुनाकर कहनें लगे कि तुमारे बाबत सामुद्रिक लक्षणोंका फल कल दुपहेर लिख दुंगा. दुसरे दिनके प्रातःकाल होतेहि ठाकोरको कुछ जरुरी काम था इस

लिये फोरन हि पंडितजीको आपने साथ लेकर चल पडे. चल ने वक्त लालचंदकि बावत ज्योतिषजीने कहाकी में कमवख्त होनेकि वजहसे इस वख्त लालचंद के लिये में कुच लिख नहीं शक्ता लेकिन आप लोग इतना जरूर याद रक्खे कि ओन्निस (१९) सालकि उम्मर में अनेक लोग दास बनकर इस लालचंद कि सेवा करेंगे. और लालचंद अनेक देशो में मशहुर होवेगा इस बातको सुनकर तमाम लोगों को आश्चर्य पेदा हुवा कि यह कया बात है अेसा होना बडा मुश्कील है इस तरहके वीचार कल्लोलो में उनका मन मग्न होने लगा कयों कि उस वख्त लालचंद के पास इस बावतका अनुमान करानेवाली संपत नहीं थी लेकीन चार ख्याल किसि के दिलम नही आया कि लालचंद अेक दिक्षा सांम्राज्य को धारणकर विमके वचनको सत्य कर दिखलायें गा. अेकादिन आचार्य - महाराज श्री विज्य कमलसूरीश्वरजीने भोयणीजी जाते हुये वालसासणमे कयाम किया और नौ (९) सालके लालचंद को देखा और इनकी बातें सुनकर अती व खुश हुये. ओर मेसाणाकी पाठशालामें पढाकर लालचंदको दिक्षा साम्राज्य देवें अेसी इच्छा किइ. तब वेणीचंद सुरचंद के जरीये अेक आदमीद्वारा लालचंदको बुलायें लेकिन लालचंद इस बातसें इनाकारी रहे. कयोंकी उस वख्त वो परतंत्र थे. अपने आप कुछ कर नहि सकते थे. बादमें निशाल छूट गइ

तब उनका भुआ (फइ) शहेर माणसामे ले गइ और वाहाकी निशालमें दाखल करने के लिये लालचद को मास्टर के पास भेजा. लालचद हेडमास्तरके पास जाकर कहा कि आप मुजको शालामे दाखिल करे तब उनोने कहा तुमाहारे पास सार्टीफिकट किस धोरणका है लालचंदने जवाब दिया मैने नौ (९) महिने तक गामठी निशालमे अभ्यास किया है. इस लिये मेरे पास सार्टीफीकट नहि है मेरी परिक्षा लेकर जिस धोरण के योग्य समजे उसी मे दाखल करदेवें. लालचद के इस वाक्यको सुनकर हेड मास्टर खुश हुअे और परीक्षा लेकर तीसरी कीताब के योग्य समज कर तीसरी निशालमें दाखील किये. इस शालाकी परीक्षा होने मे चार महिने बाकी थें इस लिये बस चार महिनेमें तीसरी कीताबमे पहले नबर (१) पास होकर चोथीमे दाखील हुये. इसमे भी पास होकर पचमीमे दाखिल हुए. पचमीकी परीक्षा होने वालिही थी के श्री मुनि उद्योत विजयजी महाराजका चतुर्मास शहर माणसामे हुवा और इनके पास लालचंदने जाना शुरु किया. उपदेश दिक्षाका मिलता रहा इस लिये लालचंदका चित्त पढाइसे उठ गया और उनके पास बैठना शुरु किया. अखीरमे चौमासा खतम हुआ तो लालचंद भागकर शहर लाडोलमे जा मीले और पीछेसे दो आदमी और एक उनकी भुवा (फइ) भी दौडे और लालचद को [illegible]

लियायें. बाद लालचंद भागकर आगलोड जा पहुंचे तो ला-डोलका एक महात्मा जति और दो आदमी तथा एक इनकी भुआ (फइ) फिर मगर दौडें और लालचंद को पकड लिया यें. आखिरमें तीसरी दफा भागकर लालचंद वडालीमें जाकर उनोंसे मीला और उनके घरके लोगोंको एक महिने तक पता नाहीं लगा. कइ दीनोके बाद उनको पता लग गया कि लाल-चंद महाराज साहेबके पास वडाली में है. इनकी भुआ देशी सीपाइ और एक आदमी और एक उटवाले को साथ लेकर वहां पहुंची और जौर देकर लालचंदको वापीस लियाइ. लालचंदके एक महिनेके वियोगसें इनकी भूआका (फइ) शरीर आधा हो गया था और पेट भरकर माहिनेमें पद्रह दिनभी आहार नहीं कीया था. बस भूआकी (फइ) ऐसी हालत देखकर लालचंदको दिलमें यह ख्याल आया कि अब मेरा दिक्षाका लेना उचित नही है क्योंकि शायद ऐसा ना होजावें कि पीछेसें भूआका मरण होजावे. ऐसा समझकर बिलकूल ख्याल छोड दिया और विचार लिया कि भूआ के (फइ) जीन्दे यह काम करना ठीक नहि मालूम देता है बस इस विचारसे इरादा मोकुफ करदिया गया और दो साल चुप चापीसें निकाल दिये गये बाद संवत् (१९५८) की सालमें आचार्य श्रीमद्विजयकमलसूरीश्वर महाराजका चौमासा हुआ. लालचंद इन महात्माओंकी पास १ व्याख्यानमें या श्यामको

प्रतिक्रमण करनेके लिये और प्रातःकाल दर्शन करनेके लिये दिनमें दो दफा जाया करते थे. आचार्य महाराजको मालूम हो गइ कि वो यही लडका है जिस्के लिये हमको वेणीचंद सूरचंद सुश्रावकद्वारा कौशीश करनी पडी थी. साडेतीन महीने चौमासेके व्यतीत हुए वांहा तक सूरीश्वरजीने कोइ बात लालचंदको नही सुनाइ थी. जब पंद्रह दीन चोमासेके बाकी रहते थे तब एकीले लालचंदको बुलाकर समझाना शुरु किया कि यह क्या बात है तुम साधु बनते बनते रह गये. सुना जाता है कि श्री मुनी उद्योतविजयजीके पास तुम साधु बनने को गये थे अब क्यो नही बनते. लालचंद मेरी चारीत्र लेनेकी भावना तो इसी तरह किंहै मगर मै निकल नहीं शकता. श्री सूरीश्वर जी तुमको निकलनेमें क्या अटकात है और किस बातका ख्याल है सो प्रगट करो. लालचंद मुझको दिक्षा लेनेमें भूआकी हरकत है क्यो कि उस्का मेरेपर बहोत मोह है मेरी माता हालमा मौजुद है लेकिन उस्केपर मेरी प्रीती उतनी नहीं है जीतनी के भूआपर है और मेरे लिये भूआने जीतने उपसर्ग सेहेह उतने माताने भी नही सेहे है इसलिये मै ख्याल करता हु कि शायद उसे देवगतिका मार्ग न लेना पडे ॥ सूरीश्वरजी ॥ लालचंदजी यह तुमारा कहना दुरुस्त है लेकिन तुमसें यह पुछा जाता है कि अगर तुमपर काल

राजा मोहित होकर तुम्हे लेजाना चाहतो उस वक्त तुम एबात पेश करशकते होकि मेरी भूआका मेरेपर बहोत प्रेम है मुझे आप छोड देवें ॥ लालचंद नहीं स्वामीनाथ अेसा में नहीं कह शकता हुं. में कया बल्के कोइ भी काल राजाके सामने किसीबातको पेश नहीं कर सकता और नाहीं इससें बच शकता हैं चाहें बालक हो चाहें वृद्ध हो चाहें युवाहो चाहें नवपरिणीत हो चाहे कुवाराहो यमराज कीसीको भी नहीं छोडता ॥ सूरीश्वरजी ॥ लालचंद अगर तुम अेसा जाणते हो तो अब तुमको विचार करना चाहीये कि जब काळली बली कीसीको नाहीं छोड शकता है तो हमको भी नहीं छोडेगा इस लिये यदि तुम निश्चित रहना चाहते हो तो मोक्षकी प्राप्तिका उपाय करो जिससें जन्म जरा मरण रोग शोक वगेरा तमाम उपाधियों छुट जाय और अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त चारित्र और अनंत वीर्य रुप अनंत चतुष्टककी प्राप्ति हो और तुमको य भ्रम है कि मेरे पश्चात् मरी भूआका मरण होगा क्यों किसीके पीछे कोइ न नहीं मरता हे तमारे बाप पर उनका प्यार नहीं था उनके पीछे इनका मरण क्यों नहीं हुआ बस इसी तरह समझ लेना. "लालचंद" को फेर कुछ दिक्षाका ख्याल पैदा हुआ और इनके दिलमें नूतन लगे हुअे भाववृक्षको सूरीकमलमहाराज जिनवाणीरुप पाणी द्वारा पुनः पुनः सिंचन करने

रहे. अेक दिन लालचंदने सूरीश्वरजी के पास जाकर कियाकि अगर आप मुझको आतेसार दिक्षा दे देवे तो मैं यहासे चल्कर आपके पास किसी अन्य शहेरमें आउगा. सूरीश्वरजीने लालचंदसे यह कहाकि अगर हमने जल्दी दिक्षा देदी ओर पीछेसे स्वजनको उदास देखकर तुम्हारा दिल ढीला होजायगा तो हम क्या करेंगे कयोंकि तुम्हारे वापीस चले जानेसे धर्मकी हानी होगी इस लियें हम जल्दी दिक्षा नहि दे शकते है तब लालचदने जवाब दियाकी आप बिल्कुल फिकर न करे दीक्षित होनेपर किसी सुरत भी आपने निश्चयसे नहीं हुगा अगर आप गृहस्थीपणें कुछ दिन रखकर दिक्षा देनी चाहेतो मुशकिल है एक दीन भी मैं आप के पास नहीं रह सकुंगा कयोंकि अगर मे गृहस्थी हुवा तो वो अनेक प्रकारसे मुझे ले जा सकते है साधु पनकि हालतमें मुझे उतना तंग नहीं कर शकेगे सूरीश्वरजीने यह बात मंजुर किइ ओर चतुर्मासके उठनेपर निवोंद्रा होकर शहेर बोरुमे जा पहुंचे. संवत् (१९६०) उन्नीसे ऒगणसाठके कार्तिक वदि ६ छठके रोज सुवाह (सवारे) सात बजे लालचद महाराज साहेब के पास जा पोहुचे. सामग्री तैयार हीथी दस बजे तक दिक्षा हो चुकी ओर इनका नाम मुनि लब्धि विज्यजी रखा. सुरीश्वरजी एक महात्मा पुरुष है ओर उनकि विद्वतासे कोइ बिरलाही अजान होगा. इन महात्मामें जैसा नॊवाड विभूषित

ब्रह्मचर्य गुण है एसा गुण हरएकमे होना मुश्किल है और बहोत लोगो को यह भी मालूम है कि इन कि जबान मुबारकसे जो बात निकलति है सो फोरन सिद्ध हो जाति है इस लिये इनका दीया हुवा लब्धिविजयजी नाम भी एसा गुण निष्पन्न हुवा है कि जिन गुणोका ब्यान करने को या लिखने को जबान ओर कलम दोनोंहि कासर है (अशक्त) सूरीश्वरजी महाराज जानतेथे कि इनको लब्धि पात्रहोना है इसलिये लब्धि विजय हि नाम रखना मुनासीब है अखीर में यही बात सीद्ध हुइ के बादकी लब्धी इन में अपार है कवित्व शक्ति भी अपार है और वक्तृत्व शक्ति से तो इनके सामने बृहस्पतिभी लाचार है जब मुनी महाराज लब्धीवीजयजीकि दीक्षा कातिक वद छठ के रोज फजरका दस बजे दिक्षा हो चुकी तब माता भ्राता पितृ भगिनी भूआ (फइ) वगेरे आन पहुंचे तब उस गाम के श्रावकोने मकानका दरवज्जा अंदरसे बंध कीया जीसमे मुनीलब्धीवीजयजी तथा इनके गुरुजी आचार्य वीजय कमळसुरीजी बेठेथे उस वखत लब्धिवीजयने श्रावकोको कहाकि आप लोगोने दरवज्जा कयों बंध कर रक्खा है दरवज्जा खोल देवे में उनतो जबाब देनेके लीये तैयार हुं. उसी वखत दरवज्जा खोल दीया गया और सबको अंदर आनेका हुकम दीया गया मुनी लब्धीवीजयजीने असे शान्ती वाले वचन सुनाअे जीनके श्रवण मात्रसें उनको परम

शानी पेदा हुइ उस वखत पाटण के भाइ सूरिजी के दर्शन को आयेथे उनोनेभी शातिवाले वचन सुनाये आखिरमें श्री मुनी लब्धिवीजयजीका दृढ निश्चयको देखकर वो लोग घरको वापीस चले गये दिक्षा के समये श्री मुनी लब्धि वीजयजी सिरफ दो पडीकम्मणे जानते थे दिक्षा के दिनसे लगा कर दो महिने तक ॥ श्रमण सूत्र ॥ पाक्षिक सूत्र वगेरा पांच प्रातिक्रमण वगेरा तमाम क्रिया समाप्त कर लिइ ॥ साथही उंझामें योग वहन किया इनके योग वहन के समयपर उंझा में बत्रीस साधु इकठे हुयेथे जिसमे से ११ वडी दिक्षा लेने वाले मौजुद थे मुकाम उंझासे विहार कर विजापुर वगेरे शहेरोंमें होतो हुये इडर जापहुंचे और सवत (१९५९) चोमासा वहाही हुआ चोमासे मे काशीसे श्री मुनि लब्धिविजयजीको पढाने के लिये सूरिजीने एक विद्वान को बोलायाथा उस्का नाम धनानदथा उस्कें पास सारस्वत पदलिंगतक एक माहिनेम करलिया गया तो पीछेसे जवर आना शुरु हुआ जिससे दोतीन महिने वृथाही व्यतीत करने पडे बाद वाहासे विहार कर कुभारीयाकी यात्रा करने के लिये शहेर इडरके श्री संघकें साथ जाना हुवा मगर उस वकत भी तबियत नरमथी चलनेके सबबसे रस्ते की खुश नेवा हवासे दीन वदीन तबीयत अछी होने लगी बाद में सूरिजीने मुनीश्रीजीको प्रकरण कंठस्थ करनेकी आज्ञा दिइ बस तबसे (जीवविचार) नव तत्व ॥ दंडक छोटी सघयणी वडी

संघयणी–इतने सूत्र विस्तृतार्थ पूर्वक कंठस्थ कर लिये गये बाद में कपडवंज वगेरे स्थलोंमें होते हुए संवत १९६० का चोमासा वडोदेमें किया इस चोमासेमें छो कर्म ग्रंथ–कंठस्थ किये ओर कर्म ग्रंथ के अर्थभी टीका द्वारा ननुनच पूर्वक (तर्क वितर्क) पूर्वक याद किये गये इस शहेरमें चतुर्मासके अनतरभी व सवत्र कोनफरन्स होने के कुछकाल ठहरना पडा था कोनफरन्स देखकर यहांसे विहार कर मीयागाम जधर्डाया वगेरे स्थालेमें होते हुते शहेर भरूच जापहुंचे वस वडोदासे निकल कर रस्तमें जीतने शेहर आये उन शहेरोमें धर्मो पदेश श्री मुनि लब्धिवीजयजी ही देते रहे जिस वक्त वडोदामें थे उस वक्त विज्य कमल सूरीश्वरजी कोयकीन नही था कि उठ चौमासे मुनि लब्धिविजयजी उपदेश दे शकेंगी लेकिन रस्तेमें एक जगहपर रातको करीवन तीस ३० चालीस ४० आदमीके अंदाजन उपदेश सुनानेके लिये आये महाराज साहीव परीश्रमसे सो रहे थे उस वक्त मुनि लब्धिविजयजीने एक घंटा तक उनको वहोत असरकारक उपदेश सुनाया उस वक्त सूरीश्वरजी सुप्त जाग्रदवस्थामें थे उनोने मुनि लब्धि विज्यजीके मुखसे जो वचन निकले सव श्रवण किये ओर सव भाइ उपदेश सुनके चले गये तो पीछे से वहोत तारीफ किइ ओर कहाकि कइ एक मुनियोंने-दिक्षा लेकर उसी वखत भी देशनादि रहे लेकिन उन लोगोने मेंसाणा पाठशालामें

पाच पाच सात सात साल विद्याभ्यास किया हुवाथा इससे उनकी अधीकता नहि समजी जाती है. शहेर भरूचमें जाकर शेठ अनोपचदभाइ से कर्म ग्रंथ संबधी खुब विचाराश होता रहा यहासें विहार कर मुकाम डभोइ जा पहुचे इस शहेर में भी व्याख्यान मुनि लब्धीवीजयजी देते रहे यहासे विहार कर देश मालवामें शहेर रतलाम गये इस शहेरमें मुनि लब्धि विजयजीने ज्ञान के वारेमे दोचार लैकचर (भाषण) दिये जाहेर भाषणका यह पहिला ही मौका मीलाथा इसलिये इस बातको देखकर सूरी कमल निहायत खुश हुए श्रोतुगण करी बन एक हजारके अंदाजनथे यहासें विहार कर श्री संघके साथ माडवगढकी यात्रा किइ और इन्दौर जा पहुंचे यहा परभी धर्मोपदेश दिया यहासे विहारकर उज्जयिनि नगरीये होते हुए मगसीरजी पार्श्वनाथजीकी यात्रा किइ रास्तेमें मसगोपात जाहेर लैकचर (भाषण) तथा व्याख्यान होते रहे ईस रास्तेमे क्षेत्र समास कंठस्थ किया गया ओर साथही टीकाका विचारास होता रहा यहासे विहारकर संवत–१९६१–का चातुर्मास देश मालवामें शहेर महत्पुर हुआ ईस शहेरमें एक गोपालदास नामके नामी पंडीतजी थे ईनके पास सारस्वत संपूर्ण और चांद्रिकाका अर्ध भाग दशगण तक कठस्थ कीया॥ यहासे विहारकर मुकाम बडोदानिवासी संघपति जमनादास कोठारीके साथ सम्मेतशिखरजीकी यात्रा करनेके लिये देश

बंगालको रवाना हुए विद्यापुरी काशी नगरीमें जा पहुंचे क्याम भिक्षुपुरा हुआ एक दिन यशोविजय जैन पाठशालाके छ-डके परीक्षा देनेको आये, आचार्य विजयकमल सूरीश्वरजीने मुनी श्री लब्धिविजयजी को उनके साथ वार्ता लाप करनेका हुकम दिया करीबन तिन घंटे तक व्याकर्ण के बारेमें विचारां-श होता रहा सुखलालजी नामके विद्यार्थी इस पाठशालामें अच्छे लायक थे उनोने उठकर मुनि लब्धिविजयजीकि तारीफ किइ और बहोत खुशी जाहेरकि और कहाकि मुनि लब्धि विजयजी महाराजने—ए मंजाणे इंसाल देखाणेइ—इस पोशालको सत्यकर दिखालाइ है और इनोने विद्याभ्यास बडे शौख से किया है एक सूत्र मात्र सूत्राक्षरोका पठना कुछ और है चहो इसतरहसे बार हजार (१२,०००) कौमुदीकयों न पठ लेवे फायदा कुछ नहोगा और एक एक सूत्रको नए लक्ष (तर्क वितर्क) पूर्वक पढने वाला चाहे चांद्रिकि क्योंन नहो जरूर इजत पायगा यांहासे विहार कर सम्मेत सिखरजीकि जात्रा करके संवत (१९६२) वासठका चतुर्मास शहेर मुर्शिदाबाद (अजीमगंज) में हुआ यहांपर एक मैथिली पंडितसें चंद्रिका समाप्त कि और एक दो काव्यग्रंथ भी देखे यहांके चतुर्मासमे रायबाहादुर बद्रिदासजी सूरिश्वरजीके दर्शनार्थ आयेथे जीस वख्त मुनि लब्धिविजयजीने जाहेर लेक-चर (भाषण) दीयाथा जीसको सुनकर बद्रिदासजीने बहुत

तारीफ किइ ओर अतिव खुश होकर सूरिश्वरजीसे प्रार्थना किइ के अगर आप ईनको लेकर शहेर कलकत्ते पधारे तो धर्मका व्होत लाभ होगा क्योंकि जाहेर लेक्चर (भाषण) देनेमे ए अतिव निपुण है ईसलिये ईनके उपदेशसे वड बगाली लोग मास-सराब-के त्यागी बनेंगे। कट एक समय होनेकि वजहसे महाराज साहीबने जानेसे ईनकार किया बाद मकसुदाबादसे राय बहादुर महाराज सिंगने श्री चंपापुरीजी की यात्राकेलिये संघ निकाल्या था मगरुर राणी मेना कुमारीजी भी साथमेंथी उनके साथ बडे जल्से से चंपाजी पहुंचे ओर वासुपूज्यजी के प्रतिबिम्ब के दर्शन कर अतीव खुश हुए यहांसे विहार कर काशी वगेरा स्थलो में होते हुए शहेर लष्कर जापहुचे ओर संवत १९६३ का चोमासा यहांही किया यहां पर एक पंडित के पास न्याय बोधिनी पद कृत्य ओर लघु बोधिनी टीका न्यायसमेत तर्क संग्रह गदाधरा ओर रहस्य किया तर्क संग्रह कीतीनो टीका के कंठ करने से ओर बुद्धिकी चपलता ईनकी वजहसे श्री मुनि लब्धिविजयजी नैयायिकोकी पंक्तिमें सुमारकिये जाने लगे ईस चोमासेमें अमरकोशकी बडी टीका देखी ओर व्यु-त्पत्तिके साथ तमाम अमरकोश रहस्य किया ईस जगामे लब्धिविजयजी एक दिनमें अनुष्टुप् पच्चास श्लोक बनानेकी ताकत रखतेथे ईनकी ऐसी लब्धिको देखकर विजयकमल

सूरिश्वरजी ईनपर बडेही प्रसन्न रहतेथे एक अमरसेन वीर-सेनका भाषामें चारित्र था उस्को गद्यबंधमें करनेका आदेश दिया गुरुजीके आदेशको स्वीकारकर सात दिनके अंदर संस्कृतमें रचना किइ ओर तीनसो श्लोकके अंदाजन चारित्र तैयार किया ओर स्वोपज्ञ (अपने रचेल्हा) चरित्रको पंद्रह दिन तक व्याख्यान मेंभी वांचा. सूरीश्वरजीने ईस चरित्रको साधारण कागळ परसे शास्त्राकार लिखाथा सो अबभी मूनिश्री लब्धिविजयजीकी पास मौजुद है मुनि लब्धिविजयजीको ईस शहरमें दो महिने तक व्याख्यानभी करना पडाथा, यहांसे विहार कर आगरा देहली (दिल्ली) वगेरे क्षेत्रोमां जाहेर भाषण देते हुए. शहर गुजरानवालामें जा पहुंचे. रस्तेमें श्री वादी देवसूरी निर्मित प्रमाणनय तत्त्वलोका लंकार न्यायशास्त्रका एक चालु ग्रंथ है इस्को खूब शंका समाधान पूर्वक कंठस्थ किया ओर साथही में एक दिगंबरा चार्य निर्मित न्यायादिपिका नामका ग्रंथ देखा ओर संवत् १९६४ (संवत् ओगनीसो चोसठ) का चोमासा शहर गुजरांवालेमें हुआ यहांपर जंबुके पंडित वासदेवजीसे समझ-कर सिद्धांत मुक्तावलीको कंठस्थ कीइ इस्केपर राम रुद्री नामकी टीका बडे विस्तारसें है इस्केपरभी कुछ विचारांश होता रहा चोमासेके अंतमे मुक्तावलीकाभी अन्त किया ओर यहांसे विहारकर सनखतरे होकर नारोवाल गये

यहां पर एक महिने तक रहता हुआ सूरीजीने इस क्षेत्रमें व्याख्यान करनेका हुकम मुनि लब्धिविजयजीको दिया और अगर कोइ आर्यासार्या वाद करनेको आताथाउससेभी वार्ता लाप मुनि लब्धिवियजी करतेथे इनकी अपूर्व वाद शक्तिको देखकर सूरिजी मुनि लब्धिविजयको वादि घट मुदगरके नामसे बोलाते थें यहांपर दो साधुको अवस्यक सूत्रभी पढाते रहे मास कल्पके वाद कइएक कारणोसे मुनि लब्धिविजयजीको जीरेकी तरफ जाना पडा सूरीश्वरजीकी इच्छा नहींथी कि लब्धिविजयजी मेरेसे अलादा विचरे और एसे ही नाही मुनि लब्धिविजयकी मरजीथी कि मै अलादा विचरु मगर श्रावक जगन्नाथजी प्रेमचदजी वगेरेकी प्रार्थनाको मंजूर कर, लब्धिविजयको जीरें जानेकी आज्ञा दिइ इस आज्ञाको बाबा वाक्यं प्रमाणं इस रीत्यनुसार स्वीकार कर अमृतसर पट्टि होते हुअे जीरे पहुचें इस शहेरके श्रोतृगण वडे निपुणथें और बारिक जैन फीलोसुफीको समजनें वालेथें क्योंकी विज्यानंद सूरीश्वरजीने भी इनको गणघर वाद सुनायाथा इस लिये मुनि लब्धिविजयजीनेभी इनको स्याद्वाद मजरी सुनाइ. प्रिय पाठकजनो एसे बारिक ग्रथोको व्याख्यानमें वांचकर आबालगोपालको खुश करना हरएकका काम नहि हे जीनको बहुतसे स्थुल दृष्टांत बारीक बातोंके समझानेके लिये आतेहो वोही हरएकको एसे ग्रथ समझा शकते हे. इस

शहेरमें पंद्रह दिन रहनेका इरादाथा लेकिन जीरेके भाइ शहेर अमृतसरमें आचार्य महाराजके पास जाकर डेड माहिने कीइ फरमायशलियायेथे इस लिये डेड महिने तक ठेहरना पडा. एक दिन जीरेके भाइयोसे महा राजसाहिबने कियाकी आप लोग हमारे पास एक लेकचर (भाषण) दिलवावें इस वातको सुनकर प्रथम सोचमें पड गये कि अब कया करना इस शहेरमें कबीभी बाजारमें खडे होकर आज तक किसी मुनिराजने लेकचर (भाषण) नहि दीया बस विचार कर महाराजके पास भी यही वात पेश किइ तब महा-राजने जवाब दिया कि जब कोइ मुनिराज लेकचर (भाषण) की वात कहेगे तब आप यही जवाब दिया करेंगे कि यहां पर कोइ लेकचर नही हुआ हे बस. फिरतो इस वातकि प्रवृत्ति चलनीही मुशकील हो जावेगी कया यह बात जरुरी हे कि जो वात हुइ हो सोही हो सके इस वातपर ख्याल दोगे तो आपको व खुबी मालूम हो जावेगा कि यह जवाब ठीक नहीं है देखिये एक साहुकार के लडके को वीस (२०) सालकी उमर तक उस्का शिर भी कबी नही दुखा था जब उसके शरीरमें सखत रोग शुरु हुआ तो हकिमने आकर कहा इस्को फलानी, फला-नी दवा देनी पडेगी तब दो चार आदमी बोल उठे हकीमजी साहेब आपका कहना तो ठीक हे मगर इस्को कभी भी दवा नही पीलाइ गइ अब यह नया काम हम कैसे करेंगे इस वातको

सुनकर पास बेठे हुए अकलमंद लोग हसने लगे और समझाने लगे कि आप क्यों इस बीचारे के प्राणोका नास करवाते हो बस अब आप इस बातपर ख्याल करे कि इन लोगोका दवाका पीलाना नइ बात समझकर इस्तमाल नहीं करना अछा हे या इस्तमाल करना अछा हे अब आपको कहना पडेगा कि वड-जगहपर नयी बातका स्वीकार करनाभी श्रेयस्कर है. बस सब भाइ फौरन समज गये और लेकचर कि तइयारी किइ ओर बाजारमें इस्तीहार लगाये गये और विषय कितने हे और जीवको कीस तरह तकलीफ देते है और इससे हटने वाले कैसा सुख पाते है इस विषयमें लेकचर हूआथा अखीरमे सारांस यही नीकालाथा कि इन विषयोका परित्याग जेसा जैनीयोमें तथा इनके मुनीओमें पाया जाता हे वैसा दीगर महजबके लोगोमें या उनके धर्म गुरुओमें नहि पाया जाता फकीरीके हकमे जेस जैन मुनियोके पावन असुल हे एसे दुसरे फकीरोमें नाहि देखे जाते इस बातका विस्तारपूर्वक स्वरुप एसा निरुपण किया था कि सबके सब एक मुखसे जैन धर्मकी तारीफ करने लगे और सब जैनी भाइ खुब खुश हुए और पीछेसे सब जैनी भाइ कहने लगे कि जिस तरह आप साहीबने जाहेर भाषणकी प्रथा फेलानी शुरु किइ हे अगर हमारे तमाम मुनिराज इस बातपर इसी तरह कटीबद्ध हो जावे तो थोडेही बखतमे हमारे जैनीभाइ

अपना अभ्युदय देख शके यह एक निःशंक बात है इस्के बाद विहार कर शेहेर पट्टी गये यहांपर महाराज साहिबके आनेसे कइ दिन पेस्तर आचार्य वर्य श्री विजयकमल सूरीश्वर जी महाराज इस शहेरमें पधारेथे इस लिये गुरुजीके दर्शन कर अतिवखुश हुए और पट्टपर बेठकर करीबन एक घंटे तक मंगलीक धर्मोपदेश सुनाया इस शहेरमें पट्टीके कसूर के भाइ सूरिजीके पास विनति वासते आयेथे की आप हमारे शहेरमें पधारें और धर्मोपदेश देवें ताके हमारे शहेरमें नया मंदिर बन जावे क्योंकि इस वक्त छोटेसे मकानमें मुर्त्तियें विराजमान हैं सो जगहकी कमी होनेसे हमें तंग होना पडता है और यह काम आपसेही होगा क्योंकि पेस्तरभी इस कामके लीये कइ मुनिराज पधारे थें मगर भायोंकि येकत्फाकी (कुसंप) से काम सिरंजाम नहि हुआ इन लोगोंकी प्रार्थना को आप मंजुर नहि कर शके इस लिये मुनि लब्धिविजयजी महाराजको इजाजत दिइ गुरुजीकी आज्ञा पाकर मुनि लब्धिविजयजीने कसूरकि तरफ विहार किया. और दो चार दिन तक में कसूर जा पहुंचे जातेहीसार विविध रस भरपूर वचन सूना कर चंदा (टीप) करवाया तब मंदीरजीका काम शुरु हूआ और मुनिजीने यहांपर मास कल्प किया जब मास कल्प खतम होनेकी तयारीपर था तो यहांके भाइयोने चोमासेकी विनति किइ और . यहभी कहाकि अगर आप यहांपर

चोमासा नाही करोगे तो फिर मंदीरजीका काम समाप्त होना मुशकील है महाराजने जवाब दिया मे चोमासा करनेको तइयार हु अगर मेरे गुरुजीकी आज्ञा होगी तो मैं यहा पर ही चोमासा करुंगा उस वक्त कसूरके भाइ कइएक सुरिजीके पास मुकाम वेरोवाल पहुचे ओर आज्ञापत्रीका लीयाये तो संवत १९६९ का चोमासा शहेर कसूरमें करना मंजूर कर बुधीयाणा नामके गावमे गये और यहा धर्मोपदेश देते रहे व्याख्यानमें=१००=आदमी अन्य मतावलंबी और ७५ आदमी अपने जैनी भाइ १७५ आदमीयोके अंदाज आते रहे यहां पर अपन जेनी भाइयोके घर करीबन १० या बारा १२ है उस्मेभी आदमी बहोत थोडे है एक दफा रात्रीको सात बजेसे लगा कर साडे नौव बजे तक मास भक्षण करना हिन्दु ओर मुसल्मान दोनोका धर्म नही है उस विषयमे लेकचर दिया गया इस लेकचर के असरसे तीनधीवर (भोइ) लोगोने अपनी जाणी को जला कर ताजींदगी मास भक्षणका नियम लिया और एक मुशल्माननेभी मास खाना छोड दिया इसी तरह तीन कुभारोने एक छींबेने ओर दो चार–४ जाटो (कणबी) ने सर्वथा हि मास खाना त्याग किया इस तरहका उपकार अनेक शहेरो मे करते हुए शहेर कसूरमे लिये चोमासे के जा पहुंचे इस शहेर के अलादा अलादा बारह (१२) कोट है आबादि (२६०००) किंह लेकिन मुशल्मानोका यहापर ज्यादह जोर है. १९६९ का

मंडीके दरम्यान एक कृष्ण द्वार नामका मकान वडा सुंदर तथा वहोत वडाहै जिसमे चार हजार आदमी बडी खुशीसे बैठ शकते है आर्य्यो की समाज इसी मकानमें लगा करती है इसमें तालुक भी आर्य्य लोगोकाही है उस मकानमे जाकर जैन फिलसुफीका ब्यान करते रहे यद्यपि यहां पर अपने घर सिरफ पंद्रह (१५) हीथें तोभी महाराज साहिब किसी बातका ख्याल नहीं करते थें बल्के (किन्तु) मुखसे यह कहा करते थे कि इन प्राणोसे जितनी जैन धर्मकी हो जायगी उतनी ही इनकी सफलता है एक दिन जरुर प्राणोने तो जवाब देनाही दनाहै अगर महावीरके सासनानुरागीयोंको वढानेकी कोशिश मेंही प्राण जवाब देवें तो वडी खुशीकी बात है जिस वकत वीरके तत्वोका स्वरुप ब्यान करते थे उस वकत यही भान होता था कि साक्षात शिक्षायिका देवि अधिष्टाय कहा कर बोल रही हो अथवा आचार्य सूरि कमल मुनि लब्धिविजयको कुचाल सरस्वती कहा करते थें सो शायद सद्गुरुओं के वचनको सिद्धकरने के लिये साक्षात् कुचाल सरस्वतीका स्वरुपही न धारा हो इस तरहसे महाराज साहिबकी मुर्ति शोभतीथी लेक्चरके लिये दरीये विच्छानीया शहेरके लोगोंको खबर कर देनी यह सब काम अन्य मतावलंबी भाइ करते थे बेंड वाजे के साथ तमाम शहेरमे फिरकर एक क्षत्री भाइ खबर करते थें सो क्षत्री

कौन था और किस तरह रागी बना सो ब्यान सुनलो यह क्षत्री तीन सो रुपयेकी तनखाह (नोकरी) पाता है जो एक डौंडी जैसे मामुली कामको महाराज साहिबपर अनुराग होनेसे स्वीकारता था इनका नाम क्षेरातीराम है एक दिन महाराजजी साहिब उपाश्रयमें व्याख्यान दे रहे थें उस वक्त पूर्वोक्त भाइ अपने कामकाजके लिये नीचेसे जा रहे थें महाराज साहिब एक श्लोक बोल रहे थें उस श्लोकका अवाज उनके कानमें पडा तो वो खडे हो गये और श्लोककी व्याख्या सुननेको ठहर गये श्लोक अध्यात्मिक विषयका था सुनकर उपर चले आये और बाकी रहा हुआ व्याख्यान सुना करीबन आधा घंटे का वक्त मिला दुसरे दिन शुरुआतसेही आ गये इस तरहसे अति अति अनुराग खूब बढ गया अनुराग बढ गया इतना ही नहीं बल्के जैन धर्ममें श्रद्धालु भि थें चतुर्मासमें निरन्तर कथा श्रवण करते रहे पुर्वोक्त श्रीमान खेरातीराम बेंड बाजेके साथ तमाम शहेरमे फिरकर भजनमें मजनून सुनाकर शहेर के लेकोको भाषण सुननेके लिये उत्साही बनाते थें पेस्तर लिखा गया है (पुर्व में लिखा है) कि एक आर्या ने माहाराज साहिबसे श्रुति संख्या प्रश्न किये थें वोही आर्या लेकचरके दुसरे दिन पाच सात आदमीयोंको लेकर महाराज साहिबकी पास पहुचा और गरबड मचानी शुरु किई माहाराज साहिबने शास्त्रार्थका उसका पराजय किया तब उसने कहा

संस्कृतसे मैं लंबी वाकफीयत नही रखताहुं इसलीये मैं आपके साथ वादमें उत्तीर्ण नहीं हो शकता हुं लेकिन मैं लाहोरसे अच्छे अच्छे आर्योंको तार देकर बोलाउंगा. तब महाराज साहिबने जवाब दिया बेशक आप तार देकर विद्वानोको बुलावे हम बडे खुश हैं बरा. उसी वक्त उस्ने तार दे दिया कंइ एक आर्य विद्वान दुसरे दिन उपस्थित हुए और प्रथम मुलाकात लेनेको आये. आकर संस्कृत बोलना शुरु किया माहाराज साहिबने जानकर साधारण शब्दोमें उत्तर दिया तब वो खूब तेजीसे कहने लगे कि आपने वेदकी श्रुतियोंसे जैनकी प्राचिनता सिद्ध किइथी सो बिल्कूल गलत अर्थ किया है. अगर आप ताकत रखते है तो हमें सिद्ध कर दिखलावें महाराज साहिबने जवाब दिया अच्छा अगर आपकी मरजी होतो आप जाहिर सभा भरें. देखो उस वक्त जो फेसला होना होगा सो हो जायगा. इस बातको सून कर आर्य लोक बहोत खुश हुअे क्योंकि महाराज साहिबने साधारण संस्कृत में नरमसा उत्तर दियाथा. इस लिये इनोनें समझाकि हम अपने मनोरथ सिद्ध करेंगे बस उसी वक्त मुकरर हो गयाकि कल रोज एक बजेसे चार बजे तक सभा कायम रहेगी. उसमें पूर्व पक्ष उत्तर पक्ष वादी प्रतिवादी की तरफसे किया जायगा दुसरे दिन उक्त वक्त पर शहरके अच्छे अच्छे मध्यस्थ विद्वान आगये उनको मध्यस्थ रखकर वादविवाद करना शुरु किया.

पासमें एक घडी रखीथी उस्को थाणेदार देख रहाथा दश मिनट सवालके लिये और वीश मिनट जवाबके लिये वक्त मुकरर किया गयाथा इससे अधिक वक्त किसीके लिये न है मिलताथा वार्तालाप संस्कृतम हुआ. उस दिन भानुदत्त=अभिधान चिन्तामणि शब्द स्तोम महानिधि वगेरा ग्रंथोसे अपने किये हुअे अर्थकी सिद्धिकर वेद श्रुतियोंसें जैन मतकी प्रा.चिनताका पुन. समर्थन किया आर्य पंडित अर्थ उठाने लगे थे मगर नहि उठाग के इस तरह अलादा अलादा विषयमे तीन रोज जाहेर सभा फिड गइ-ओंर इसी तरहसे पंडितजीको लागवान कर्ते रहे. पंडितजी-कइ एक-आदमीओंके पास कहने लगे कि यह क्या बात हुइ पेस्तर मुलाकात लेनेको गयेथे तो यह एक साधारणसे मालूम होतथे अवतो शेरकी तरह गर्जते हैं अगर पहिलेसे एसा मालूम होजाता तों हम कभी सभा नहीं करते उन पुरुषोंने जवाब-दिया पंडितजी जैसे आप छलजाती निग्रहस्थान वगेरेको पढतेहो इस तरह इनोनेभी येह तत्व देखे ह मतलब अक्षपाद निर्मित व्रततावाले तत्व आपवत् इनोनेभी देखे हैं. इस समामें जो मध्यस्थ पंडित थे उनोने सूरीश्वरजीका चोमासा मुकाम झंडीयालामें था उनकेपर पत्र पाया जिसमें श्री मुनि लब्धिविजयजीकी फते हुइ एसा लिखाथा. मध्यस्थोंके हस्ताक्षरोंसे मुनि लब्धि विजयजीकी तारीफ सूनकर सूरीश्वरजी बहोतही प्रसन्न हुए.

इस शहरमें एक दो ज्योतिष शास्त्रोंके अतिरीक्त किसी नवीन ग्रंथको मुनि लब्धिविजयजी कंठ नहीं कर शके थे यहांपर—आचारांग सूत्र—सुगडांग सूत्र—नंदी सूत्र—वगेरे जैन सूत्रोंकी विचारणाभी करते रहे. इस तरहकी धामधूमसे कसूरमें चोमासा समाप्त किया और यहांसे विहार कर जीरेमें आये सूरीश्वरजीभी कइ दीन पेस्तर यहां आये हुएथे पंद्रह १५ दिन एकठे रहे और पंडितोंके साथ जाहेर सभामें पूर्व पक्ष स्थापा और उत्तर पक्ष क्या था उसका अक्षरसह विचार मुनिराज श्री लब्धिविजयजीने गुरुजीको सुनाया बादमें सूरिकमल महाराज साहिबने जीरासे विहार कर बिकानेर जानेका इरादा किया मुनि लब्धिविजयजीभी इनके साथ तयार हो गये तब महाराज साहिबके पास पंजाबी भाइओंने बहोत विनति जोरशोरसे किइ की आप इन महात्माओंको छोड जाओ यह यहां पर रह जायगे तो हमारे लोगोंके लिये आप ही बैठे है आपने अपना अपूर्व वक्त व्यय-करके इनको तैयार किया है, सो-आप दो सालके लिये इनको बक्षिस करें-महाराज-साहिब करुणा-सागर है इसलिये इनकी विनती मान कर मुनि लब्धिविजयजीको दो सालके लिये फरमा गये, बाद महाराज साहिब बिकानेर गये और मुनि लब्धिविजयजी-जीरेमें-रहे. कुछ दिन के बाद यहांसे विहार कर शहेर रायकोट जाना हुआ इस शहरमें अपने जैनीभाइयोंके

सिरफ पाच घर हैं ढुंढीयोंका जोर है लेकिन भक्तिके अंगमें उजेरे बहोत आदिक है जीस दिन शहेरमें प्रवेश होनेंका था कि बहोत हि धामधुम हुइथी लुधिआने वगेरे शहेरोमें जाकर बहोत सामग्री एकठ्ठी कि हुइथी पाच घर होने पर इस तरहकि धामधुम का करना स्तुति पात्र है यहांपर जीतने व्याख्यानमें अन्य मतीभाइ आते है इतने शायदही दुसरी जगह जाते होगें यहाके प्रतिष्ठित लाला गुज्जरमल हमेशह व्याख्यानमें आया करते थें व्याख्यान शुनकर एक दिन पूछने लगे कि महाराज साहेब आपका व्याख्यान यह बतलाता है कि यह एक आला दर्जेके लेक्चरर हैं सो आप क्या लेक्चर तो नहीं देते. महाराज साहेबनें जबाब दीया हा कभी मौका मिलनेपर दे देते है तब उनांने जीव दया पर लेक्चर सनातन सभामें आकर देवे उसमे गौशालाकी बाबत लेक्चर देवेतो अच्छी बात है. महाराज साहिबने दिलमें सोच लियाकि हमारे वास्ते सब जीव एक सार हैं मगर इन लोगोंका गौरक्षापर ज्यादा ख्याल है तो क्या हरकत है और नहीतो गौरक्षाही सही. असा विचार कर यह बात मंजुर करली. इस शहेरमें जाहेर खबर लगाइ और दुसरेदिन जब लेक्चर देनेको जानाथा उस वक्त लिये पेशवाइके तीनसों सनातनी (वैष्णव) संप्रदायके लोग बाजे झुंडे निशान फुलबाडीयें-और

भजन मंडळीयोंके साथ महाराजको लेने के लिये आये. जैन=जैन मुनियोंकि इस कदर भक्ति भावसे वैष्णव लोग जयकारा बोलाते हुए पेसवाइ में हाज़र रहे शायद मै भुलता नहुंतो यह प्रथमही मोका था ॥ महाराज साहिबने स्वदया और परदया इस विषयमें लेकचर दिया. गौशाळा बडे जोरशोरसे उसी दिन कायम कर दीइ और. महाराज साहिबके कहेनेसे और किसमके पशुओकोभी हम दाखील करेंगे एसा मंजुर किया है लेकचरमें करीबन–बारासो (१२००) आदमी– और सातसो (७००) बाइये मोजुदथी और सरकारी लोक उसमतके पेरोकात ठाणेदार–कपतान–तसीलदार–नयाब तसीलदार वगेरा वगेरा एलकार लोग अच्छे अच्छे मोजुदथे. और पोलीसी इन्तजाम पुरापुरा था. इस तरहके आनंदसे आठ (८) दीन खतम हुए. बस लेकचर होनेके दुसरे दीन ही वीहार कर नगर कोटलेमे गये यहांपर बाइस (२२) दीन तक खुब धर्मकि रोनक बनी रही ओर आत्म कमल जैन पाठशाळा स्थापन करवाइ जीस्मे कइ एक अन्यमतिभी लाभ लेते है यहांसे विहारकर महाराज साहेब शहेर समाणे पधारेथे वहांपरभी रायकोट कि तरह अन्यमतावलंबीयोकी तरफसे मान अछा

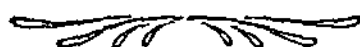
मीलाथा यहापरभी लेकचरको विषय वोही था सिरफ फर्क इतनाही था कि वो बाजारके मध्यमें अेक बना हुआ बहोत भारी खुबसुरत मकान था और समाणामें खास बाजारमें एक ओटला उपर खडे होकर दो घंटो (२) तक लेकचर दिया था बाकीकी बाते रायकोटकी तरह समझ लेवें बाद यहासे विहारकर शहेर नाभेमें गये यहांपर अच्छे अच्छे महाराज हीरासींगके रीयास्ती पंडीतोंसे मुलाखात हूइ माहाराज साहीबका सस्कृतमे न्याययुक्त वार्त्तालाप सुनकर पंडित लोग बडे खुश हुए वहासे विहारकर हुशियारपुर वगेरा शहेरोमे घुमते हुए संवत १९६६ का चतुर्मास शहेर लुधियानेमें किया इस चोमासेमें शाकटायन व्याकर्ण कंठस्थ किया ओर इसके मतलबको खुब शका समाधानपूर्वक एक साक्षर पंडित धर्मचंदजीसे समझते रहे और गदाधरी निष्कर्ष कल्पित कोटी नामका पुस्तक जो कि एक नवीन न्याय मिश्रीत है इसको पढा नवीन न्याय शास्त्रोमे गदाधरी के उपर और कोइ पुस्तक नहीं है और एक अंग्रेजी के बी ए पास लडकेको कौमुदी पढाते रहे तेसे ही एक मुसल्मान बडे अछे ख्यालात वाला हुआ था उसको नवकार मन्त्र सिखाकर संस्कृतमें सारस्वत तक पढाया कुछ एक दिन चतुर्मासमें बैठने बाकी था कि तब महाराज साहिबकि बहादुरी सुनकर श्री रामनगरके एमेपास और सन्कुलके अछे आत्मा महाराजको मीलनेको

लिये आये सिरफ एक घंटा महाराज साहिबके साथ गुफत-गूह किइ एसा जैन मतानुरागी हुआ कि जैनीसेभी चढ गयाथा बस उस रोजसे लगाकर हमेशह व्याख्यान सुनते रहे एसे एसे विद्वान जब व्याख्यान में आने लगे तब महाराज साहीबने व्याख्यानमे नंदी सूत्रकी पीठीका वांचनी शुरु किइ जीसको अच्छा नैयायिक लगा सकता है इस फिलॉसुफीको सुन-कर एमेश्री राम तथा बीए पास जो कि हमारी पास कौमुदी पढते थें यह दो जने खूब खुश होते थे बाकिके साधारण आदमीयों को भी स्थूल द्रष्टांत देकर समझाते थे एक दिन शास्त्रीजी पंडित धनीरामजी के साथ बहोत काल तक वेद इश्वरोक्त है इस विषय में चर्चा वार्ता होति रही यहां पर हुशीयारपुर से श्री मुनी लब्धिविजयजी महा-राज साहिबके दर्शन करने को संघ निकलाथा बडे आडंबर के साथ श्री संघके आनेसे श्री मुनि लब्धिविजयजी कि मशहुरी ओरभी बढ गइ ओर बहोतसे मतमतांतर वालोंने इनसे मुला-खात लिइ ओर प्रबल युक्तिको सुनकर अपने अपने स्थानको चले गये थे बाडि रौनकसे चोमासा समाप्त किया यहांसे विहारकर चार महिनेमें रोपड वगेरे स्थलो मे फिरकर जो काम किये है सो जैन अकबारमें नारोवालके प्रवेशत कहालात छपचुके है इसके पीछे नारोवालमे जाहेर भाषण वगेरा दिये गये है सोभी जैन अकबारमें छप गये है बाद जंबुमे जो उप-

कार हुआ सो बाबु माणेकचंदजीके लेखसे हर एकको मालूम होगया है शहेर जम्मूसें विहारकर सनखतरेमे आये इस शहेरमें-**हस्तिना ताडय मानोपि नगच्छेज्जैन मंदिरं**-एसे वाकयके बोलनेवाले दुश्चिद जैसे कठीन हृदयवाले क्षत्रियोको बहोत अनुरागी बनाये है प्रिय पाठक जनो संवत (१९६७) का वैशाक शुदि पुर्णीमा तकका मुकसर हाल लिखा गया है-**नोट जीवनसार.**

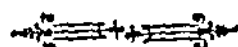
पजाब देशमें जैन धर्मकी रोशनी करनेके लिये उर्दुमे किताबे बनाकर छपवानेका काम इनही महात्माने शुरु कीया अेक दयानद कुतर्क तिमिर नामका पुस्तक इनकि तरफसें छपकर बहार पडा है अेक सततत्त्व दिग्दर्शन किताब लिखी गइ है छापनेकी तैयारीपर है ओर मूर्ति मडन रसाला नामका पुस्तक हालमें लिख रहे है पजाब देशके लोगोको उर्दुमें छपे हुए ग्रंथ बडे उपकारी होते है पजाब देशमें जाहेर भाषण की प्रथा भी इनोनेही निकाली है-इति समाप्त

॥ लेखक मुनि-गंभीर-विजय ॥
॥ पंजाब-मुकाम-नारोवाल ॥
॥-जीला स्यालकोट-॥
॥ ॐ शांतिः ! शांतिः ! शांतिः ! ॥



अर्हम्.

ગ્રન્થકાર શ્રી જિનદત્તસૂરિ.



અણહિલપુર પાટણ પાસે વાયુદેવતાધિષ્ઠિત વાયટનામે એક મહાસ્થાન છે તેજ વાયટ સ્થાન ઉપરથી ‘વાયટ’ અથવા ‘વાયડ’ ગચ્છ ઉત્પન્ન થયેલો છે વાયડગચ્છમા મૂળ પુરૂષ કોણ હતો તે જાણી શકાતુ નથી, પણ શ્રી જિનદેવસૂરિ હોય એમ અનુમાન કરી શકાય છે, કેમકે તે પૂર્વેનો જોઇએ તેવો ઇતિહાસ સમ્પાદન થઈ શકતો નથી વાયડગચ્છની ઉત્પત્તિ અને મૂળ પુરૂષ આ મુજબ જાણ્યા બાદજ શ્રી જિનદત્તસૂરિ માટે જાણવુ તે વધારે યોગ્યજ લેખાશે

ગ્રન્થાતે જણાવેલ શ્રી રાશિલ્લસૂરીન્દ્ર અને શ્રીજીવદેવસૂરિ સમારી પણામા એજ વાયટમા મહીધર અને મહીપાલ નામે શ્રેષ્ઠી પુત્ર હતા મહીપાલે રમતગમતમા સમય ગુમાવી જરા પણ અભ્યાસ કરેલો ન હોવાથી તેના પિતા ધર્મદેવે કાઢી મુકવાથી રાજગૃહમા દિગમ્બર મતાવલમ્બી શ્રુતકીર્તિગુરૂ પાસે દીક્ષા લઇ સુવર્ણકીર્તિઆચાર્ય થયો, અને ગુરૂ પાસે ‘પરકાયપ્રવેશ તથા ચક્રેશ્વરી વિદ્યા શિખ્યો મહીધર પણ તેના પિતાના અવસાન સમય બાદ આજ વાયટગચ્છના શ્રીજિનદેવસૂરિના સતાનમ શ્રી રાશિલ્લસૂરિ થયો ગજગૃહીથી આવત લોકોને મોઢેથી સુવર્ણ-

કીર્તિનો વૃત્તાન્ત સાંભળી તેની માતા ત્યાં ગઈ, અને બન્ને ભાઇઓને એકજ ધર્મ અંગીકાર કરવા સમજાવી 'વાયટ'માં લાવી ત્યાર પછી રસવતી પ્રયોગથી બન્ને ભાઇઓની પરીક્ષા કરી તેમાં વિશેષ શુદ્ધતા શ્વેતામ્બરોની દેખાવાથી દિગ્મ્બરને કહ્યું કે "શ્વેતામ્બરો શુદ્ધ છે, તું કર્મચિન્તા કરતો નથી, તે લોકો કહે છે તેજ પ્રમાણે પાળે છે, માટે તું એમને મલી સુખદુઃખના અંતની ઇચ્છા કર, વિગેરે." માતાનું વચન અંગીકાર કરી સુવર્ણકીર્તિએ શ્વેતામ્બર દીક્ષા લઇ પાંચસો શિષ્યનાં સમૂહવાળો શ્રી જીવદેવસૂરિ થયો, કે જેના કુળમાં 'ગન્થકાર શ્રી જિનદત્તસૂરિ આચાર્ય વર્ગમાં ખ્યાતિ ધરાવનાર છે.'

શ્રી જિનદત્તસૂરિ ચોકસપણે કયા વખતમાં હતાં તે જાણવું દુર્લભ છે. કારણ કે તેઓશ્રી અંતમાં તે બાબતોનો જરા માત્ર પણ ઇસારો સૂચવતાં નથી, એટલુંજ નહીં પણ આ 'વિવેક–વિલાસ' શિવાય તેઓની કૃતિનો બીજો કોઇ ગ્રન્થ પણ આપણને સાંપડી શકયો નથી, અને લોકવાયકા પણ એવીજ છે કે, તેઓનો કરેલો આ એકજ ગ્રન્થ છે. છતાં પણ એટલું તો અનુમાન ઉપરથી આપણે મેળવી શકીશું કે તેઓ વિક્રમના તેરમાં સૈકાના કેટલાંક વર્ષો વિત્યાબાદ હેયાતી ધરાવતા હતા.

આ અનુમાન ઉપર આવવાનું સાધન માત્ર એટલુંજ છે કે તેઓના શિષ્ય 'વેણી કૃપાણ અમર' અથવા અમરચંદ કવિ નામે " કાવ્ય કલ્પલતા, છન્દો રત્નાવળી, સૂક્તાવળી, કલાકલાપ, અને બાળભારતાદિ" વિગેરેના કર્ત્તા હતા.

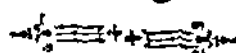
તે અમરચંદ કવિ, ગૂર્જરના રાજા વીસળદેવની કચેરીમાં તેના તેડાવવાથી ધોળકે આવ્યા હતા વીસલદેવે ગૂજરાત પર અણહિલવાડમા રહીને સંવત્ ૧૩૦૦થી ૧૩૧૭ સુધી રાજ્ય કર્યું તે પહેલા તે સં ૧૨૯૫ મા ધોળકાની ગાદી ઉપર આવ્યો હતો આ ઉપરથી આપણે જોઈ શકીશુ કે વીસળદેવના વખતમા શ્રી અમરકવિ ધોળકે આવ્યા હતા, અને શ્રી જિનદત્તસૂરિ તેઓના ગુરૂ થતા હતા તે ઉપરથીજ તેરમા સૈકાનુ અનુમાન આપણે શ્રીજીનદત્તસૂરિ માટે કાઢીશુ તો ખોટુ જણાશે નહી આથી વિશેષ ખાત્રી કરી શકાય તેવુ કોઈ સાધન આપણને જોવામા આવતુ નથી

વાયડગચ્છ હાલમા તો ગૂજરાતમા હયાતી ધરાવતો હોય તેવુ દેખાતુ નથી, પછી ભલે કદાચ મારવાડ વિગેરેમા કોઇ શ્રીપૂજ્ય અને ગોરજીઓ હયાત હોય ! અત્રે માટે આટલો ટુકોજ હેવાલ જણાવ્યા બાદ અત્રેથીજ વિરામ પામશુ

પ્રસિદ્ધકર્ત્તા



વિષયાનુક્રમ.



ઉલ્લાસ-પહેલો

પ્રથમ પહોર સુધીનો શ્રાવકાધિકાર.

ઉલ્લાસ-બીજો.

બીજા તથા ત્રીજા અર્ધા પ્રહરનો વિચાર.

ઉલ્લાસ ત્રીજો.

સૂર્યોદયથી ચોથા અર્ધ પહોર સુધી.

ઉલ્લાસ–ચોથો.

સૂર્યોદયથી બપોર સુધીના બે, તથા પછીના બે મળી ચાર અર્ધા પહોરોનુ કૃત્ય

ઉલ્લાસ-પાંચમો.

સૂર્યાસ્તથી રાત્રીનાં સાત ચોઘડિયાં સુધીનું કૃત્ય.

વધૂ લક્ષણ.

ઉલ્લાસ-છઠ્ઠો

છએ ઋતુના વિચાર.

ઉલ્લાસ—સાતમો.

પ્રતિવર્ષનાં કાર્યો.

ઉલ્લાસ—આઠમો.

જીંદગીમાં પગે પગે કરવા પડતાં કાર્યો.

છએ દર્શનોનો વિચાર.

વિશેષોપદેશક્રમ.

ઊલ્લાસ-નવમો.

ઊલ્લાસ-દશમો.

ઉલ્લાસ-અગીઆરમો.

ધ્યાન વિષય.

ઉલ્લાસ--બારમો.

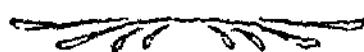


नमः श्रीसर्वज्ञाय



विवेकविलास.

गूर्जरभाषासहित



शाश्वतानन्दरूपाय, तमस्तोमैकभास्वते ॥
सर्वज्ञाय नमस्तस्मै, कस्मैचित्परमात्मने ॥१॥

(ग्रन्थकार श्री जिनदत्तसूरि प्रथम मंगलाचरण करे छे)

અર્થ—અવિનાશી આનંદ રૂપ, અજ્ઞાનરૂપ અંધકાર ને નાશ કરવાને અધ્યાત્મસૂર્યસમાન, લોકાલોકમાં રહેલી સર્વ વસ્તુના જાણ, વાણીથી જેનું વર્ણન કરી શકાય નહી, એવા અલૌકિક પરમાત્માને મારો નમસ્કાર થાઓ (૧)

सोमं स्वयंभुवं बुद्धं, नरकान्तकरं गुरुम् ॥
भास्वन्तं शंकरं श्रीदं, प्रणौमि प्रयतो जिनम् ॥२॥

અર્થ—જે શાન્તિના ધારણ કરનાર અને આનંદકારી હોવાથી સાક્ષાત્ ચંદ્રમા કહેવાય છે કે જેના ઉપદેશ વડે પોતાની મેળે જ બોધ પામેલ, માટે જે સ્વયંભૂ (બ્રહ્મ) કહેવાય છે કેવળજ્ઞાની હોવાથી બુદ્ધ કહેવાય છે નરક

કર્મપ્રકૃતિની સાથે નરકગતિનો પણ નાશ કરનારા માટે જે
નરકનામા દૈત્યને મારી નાખનાર સાક્ષાત્ વિષ્ણુ કહેવાય
છે. અલૌકિક બુદ્ધિશાળી હોવાથી જે બૃહસ્પતિ કહેવાય
છે. કેવળજ્ઞાનથી લોકાલોકને પ્રકાશિત કરનાર હોવાથી જે
સૂર્ય કહેવાય છે. આસન્ન ભવ્યને મુક્તિસુખના દાતાર હો-
વાથી જે શંકર કહેવાય છે. સ્વર્ગની તથા મોક્ષની લક્ષ્મી
આપે છે તેથી જે કુબેર કહેવાય છે. એવા શ્રીજિન મહા-
રાજની હું મન વચન કાયાયે પવિત્ર થઇને સ્તુતિ કરૂં છું. (૨)

जीवत्प्रतिभा यस्य, वचो मधुरिमाश्चितम् ॥
देहं गेहं श्रियस्तं स्वं, वन्दे सूरिवरं गुरुम् ॥३॥

...ગુરુનામ.)

...—જેમની બુદ્ધિ બૃહસ્પતિસમાન, વચન અમૃત
સમાન, અને શરીર તો જાણે સાક્ષાત્ લક્ષ્મીનું નિવાસ-
સ્થાનજ હોયની ! એવા મારા ગુરૂમહારાજ શ્રીજીવદેવસૂરિને
હું વંદના કરૂં છું. આ શ્લોકમાં ચારે ચરણના શરૂઆતના
અક્ષરથી જીવદેવ એવું ગુરૂનું નામ સૂચવ્યું. (૩)

ईप्सितार्थप्रदः सर्व-व्यापत्तापघनाघनः ॥
अयं जागर्तु विश्वस्य, हृदि श्रीधरणक्रमः ॥४॥

અર્થ—જેનાથી વાંછિત વસ્તુ પ્રાપ્ત થાય છે, જે સર્વ
આપદાઓનો તાપ દૂર કરવાને વરસતા મેઘસમાન છે અને
જે લક્ષ્મી પ્રાપ્ત કરવામાં સાધનભૂત છે, એવો આ ગ્રંથ
(વિવેકવિલાસ) સર્વ લોકોના હૃદયમા જાગૃત રહો. (૪)

चञ्चलत्वकलङ्कं ये, श्रियो ददति दुर्धियः ॥
ते मुग्धाः स्वं न जानन्ति, निर्विवेकमपुण्यकम् ॥५॥

અર્થ—જે દુર્બુદ્ધિ જનો લક્ષ્મી ઉપર ચચલપણાનું કલક મૂકે છે, તે ભોળા લોકો પોતાના વિવેકશૂન્યપણાને અને પુણ્યહીનપણાને જાણતા નથી (૫)

लक्ष्मीकल्पलतायै ये, वक्ष्यमाणोक्तिदोहदम् ॥
यच्छन्ति सुधियोऽवश्य, तेषामेषा फलेग्रहिः ॥६॥

અર્થ—જે બુદ્ધિશાળી પુરૂષો લક્ષ્મીરૂપી કલ્પવેલીને આ ગ્રથમા કહેલા વચનરૂપી દોહદ (દોહળો, ખાત) આપે છે, અર્થાત્ જે લોકો આ ગ્રથમા કહેલી યુક્તિથી ધન ઉપાર્જવાનો પ્રયત્ન કરે છે, તે લોકોને અવશ્ય આ કલ્પ-વેલી (લક્ષ્મી) ફળદાયક થાય છે (૬)

कार्यः सद्भिस्ततोऽवश्य-मस्यै तद्दातुमुद्यमः ॥
यद्दाने जायते दातु-र्भुक्तिर्मुक्तिश्च निश्चला ॥७॥

અર્થ—માટે, સત્પુરૂષોએ અવશ્ય લક્ષ્મીરૂપ કલ્પ-વેલીને આ ગ્રથમા કહેલા વચનરૂપ દોહદ દેવાનો ઉદ્યમ કરવો કેમકે, તેથી સ્વર્ગાદિ સુખની તથા અતે શાશ્વત મુક્તિની પ્રાપ્તિ થાય છે (૭)

ब्रवीमि सर्वशास्त्रेभ्यः सारमुद्धृत्य किंचन ॥
पुण्यमसवक्कृत्स्वर्गा-पवर्गफलपेशलम् ॥ ८ ॥

અર્થઃ—પૂર્વાચાર્યોએ રચેલા સર્વ શાસ્ત્રોમાંથી સાર કાઢીને જેથી પુણ્યની ઉત્પત્તિ અને સ્વર્ગની તથા મોક્ષનીપ્રાપ્તિ થાય, એવું કિંચિત્ માત્ર વચન હું કહું છું. (૯)

स्वस्यान्यस्यापि पुण्याय, कुप्रवृत्तिनिवृत्तये ॥
श्रीविवेकविलासाख्यो ग्रन्थः प्रारभ्यते मितः॥१०॥

અર્થઃ—પોતાને તથા બીજા પઢનાર વાંચનાર વિગેરે લોકોને સુકૃતની પ્રાપ્તિ થવાને અર્થે આ વિવેકવિલાસ નામનો ગ્રંથ સંક્ષેપ માત્ર હું આરંભું છું. (૧૦)

प्रवृत्तावत्र यो यत्नः, क्वचित्काश्चित्प्रदर्शितः॥
विवेकिनादृतः सोऽपि, निवृत्तौ पर्यवस्यति ॥१०॥

અર્થઃ—આ ગ્રંથમાં કોઈ ઠેકાણે જે કંઇ પ્રવૃત્તિમાર્ગ (વ્યવહારમાર્ગ) કહેવાનો પ્રયત્ન કર્યો છે, તેનો વિવેકી પુરૂષ આદર કરે તો અંતે તે માર્ગ નિવૃત્તિમાર્ગનેજ (પરમાર્થમાર્ગનેજ) જઇ મળશે. (૧૦)

अगदः पावकः श्रीदो, जगच्चक्षुः सनातनः ॥
एतैरन्वर्थतां यातु, ग्रन्थोऽयं पाठकैः सह ॥११॥

અર્થઃ—આ ગ્રંથ કર્મરૂપ રોગને ઔષધ સમાન, પઠન તથા શ્રવણ કરનારાઓને પવિત્ર કરનારો, લક્ષ્મીનો આપનારો, અજ્ઞાનરૂપ અંધકારનો નાશ કરવાને સૂર્યસમાન એવો થઇ આ જગત્માં ચિરકાલ રહો. તથા આ ગ્રંથના પઠન કરનારા લોકો પણ રોગરહિત, પવિત્ર, કુબેર સરખા ધનવંત, સૂર્યસમાન તેજસ્વી, અને પૂર્ણ આયુષ્યના ભોગવનારા થાઓ. (૧૧)

आलोक इव सूर्यस्य, स्वजनस्योपकारवत् ॥
ग्रन्थोऽयं सर्वसामान्यो, मान्यो भवतु धीमताम् १२

અર્થ —જેમ સૂર્યનો પ્રકાશ આપપરભાવ ન રાખતા સર્વ વસ્તુઓને પ્રકાશિત કરે છે, તથા જેમ સત્પુરૂષો પક્ષપાત ન કરતા સર્વ લોકો ઉપર એક સરખો ઉપકાર કરે છે, તેમ આ મારો ગ્રંથ જ્ઞાતિ જાતિનો અથવા બીજો કોઈ પણ ભેદ ન રાખતા મનુષ્યમાત્રના ઉપયોગમા આવો, અને વિદ્વજ્જનોને માન્ય થાઓ (૧૨)

(इति प्रस्तावना)

धर्मार्थकाममोक्षाणां, सिद्ध्यै ध्यात्वेष्टदेवताम् ॥
भागेऽष्टमे त्रियामाया, उत्तिष्ठेदुद्यतः पुमान् ॥१३॥

અર્થ —ઉદ્યમવંત પુરૂષે ધર્મ, અર્થ, કામ અને મોક્ષ આ ચારે પુરૂષાર્થની પ્રાપ્તિ થવા માટે ઇષ્ટ દેવતાનુ ધ્યાન કરી રાત્રિનો આઠમો ભાગ (લગભગ સાડાચાર) બાકી રહે ત્યારે બિછાનામાથી ઉઠવુ (૧૩)

सुस्वप्नं प्रेक्ष्य न स्वप्यं, कथ्यमह्नि च सद्गुरोः ॥
दुःस्वप्नं पुनरालोक्य,कार्यः प्रोक्तविपर्ययः ॥१४॥

અર્થ —શુભ સ્વપ્ન જોયા પછી ફરીથી સુઈ રહેવુ નહિ સૂર્યોદય થયા પછી તે ગુરૂની જોગવાઇના અભાવે ભગવાન સન્મુખ અગર ગાયના કાનમા કહેવુ જો સદ્ગુરૂની જોગવાઇ મળે તો સદ્ગુરૂ આગળ કહેવુ, અને અશુભ સ્વપ્ન આવે તો પાછુ સુઇ રહેવુ, તથા તે સ્વપ્ન કોઇ આગળ પણ કહેવુ નહિ (૧૪)

समधातोः प्रशान्तस्य, धार्मिकस्यापि नीरुजः ॥
स्यातां पुंसो जितार्क्षस्य, स्वप्नौ सत्यौ शुभाशुभौ ॥१५॥

અર્થઃ—જેના શરીરમાં કફ, વાત્ પિત્તનો પ્રકોપ નહિ થયો હોય, જેને કોઇપણ જાતનો રોગ ન હોય, તથા જેણે પોતાની સર્વ ઇંદ્રિયો વશ રાખી હોય, એવો શાંત અને ધાર્મિક જે પુરૂષ હોય, તેનેજ આવેલાં શુભ અથવા અશુભ સ્વપ્નો સાચાં પડે છે. (૧૫)

अनुभूतः श्रुतो दृष्टः, प्रकृतेश्च विकारजः ॥
स्वभावतःसमुद्भूत–श्चिन्तासंततिसंभवः ॥१६॥
देवताद्युपदेशोत्थो,धर्मकर्मप्रभावजः ॥
पापोद्रेकसमुत्थश्च, स्वप्नः स्यान्नवधा नृणाम् ॥१७॥

અર્થઃ—૧ કંઇ અનુભવેલી વાત મનમાં રહેવાથી, ૨ કંઇ સાંભળેલી વાતથી, ૩ પ્રત્યક્ષ દીઠામાં આવેલી વાત ચિત્તમાં રહેવાથી, ૪ અજીર્ણાદિ વિકારથી, ૫ સ્વભાવથી, ૬ એક સરખી ચિંતાથી, ૮ દેવતાદિના ઉપદેશથી, ૮ ધર્મ-કૃત્યના પ્રભાવથી, ૯ અને પાપકર્મની અતિશય વૃદ્ધિ થવાથી એવાં નવ કારણોથી નવ પ્રકારનાં સ્વપ્ન મનુષ્યને આવે છે. (૧૬–૧૭)

प्रकारैरादिमैः षड्भि-रशुभश्च शुभोऽपि च ॥
दृष्टो निरर्थकः स्वप्नः, सत्यश्च त्रिभिरुत्तरैः ॥१८॥

અર્થઃ—ઉપર કહેલા પ્રકારમાંથી પહેલા ૭ કારણોથી દીઠેલું શુભ અથવા અશુભ સ્વપ્ન નિરર્થક છે. અર્થાત શુભ હોય તો તેનું શુભ ફળ નહિ, અને અશુભ હોય તો તેનું

અશુભ ફળ પણ નહિ પણ છેલ્લા ત્રણ કારણોથી અર્થાત્ દેવતાના ઉપદેશથી, ધર્મકૃત્યના પ્રભાવથી અને પાપની વૃદ્ધિથી આવેલુ શુભ અથવા અશુભ સ્વપ્ન સત્ય હોય છે અર્થાત્ તે શુભાશુભ ફળ દે છે (૧૮)

रात्रेश्चतुर्षु यामेषु, दृष्टः स्वप्नः फलप्रदः ॥
मासैर्द्वादशभिः षड्भि-स्त्रिभिरेकेन च क्रमात् ॥१९॥

निशान्त्यघटिकायुग्मे, दशाहात्फलति ध्रुवम् ॥
दृष्टः सूर्योदये स्वप्नः, सद्यः फलति निश्चितम् ॥२०॥

અર્થ—રાત્રિના પહેલા પહોરે દીઠેલુ સ્વપ્ન એક વર્ષે, બીજે પહોરે દીઠેલુ છ માસે, ત્રીજે પહોરે દીઠેલુ ત્રણ માસે, ચોથે પહોરે દીઠેલુ એક માસે, રાત્રિની છેલ્લી બે ઘડીએ દીઠેલુ દશ દહાડે અને સૂર્યોદયને સમયે દીઠેલુ તુરત ફળ આપે છે (૧૯—૨૦)

मालास्वप्नोऽह्नि दृष्टश्च, तथाधिव्याधिसम्भवः ॥
मलमूत्रादिपीडोत्थः, स्वप्नः सर्वो निरर्थकः ॥२१॥

અર્થ—એક ઉપર એક આવેલુ, દીવસે દીઠેલુ, મનની ચિંતાથી તથા શરીરની વ્યાધિથી આવેલુ અને મળ તથા મૂત્રના રોકાવાને લીધે થએલી પીડાથી આવેલુ આ સર્વે સ્વપ્ન નિષ્ફળ (ફોગટ) છે. (૨૧)

अशुभः प्राक् शुभः पश्चात्, शुभो वा प्रागथाशुभः ॥
पाश्चात्यः फलदः सर्वो, दुःस्वप्ने शान्तिरिष्यते ॥२२॥

અર્થ—પહેલા અશુભ તથા પછી શુભ અથવા પહેલા શુભ અને પછી અશુભ આવે તો તેમા પાછળથી આવેલુ

સ્વપ્ન શુભ અથવા અશુભ ફળ આપે છે. કદાચિત્ દુઃસ્વપ્ન આવે તો જપ પૂજા વિગેરે શાન્તિકર્મ કરવું જોઇએ. (૨૨)

(अथ स्वरविचारः)

प्रविशत्पवनापूर्ण-नासिकापक्षमाश्रितम् ॥
पादं शय्यास्थितो दद्यात्, प्रथमं पृथिवीतले ॥२३॥

અર્થઃ—નાસિકાના જમણા અથવા ડાબા જે ભાગમાં પવન પેસતો હોય તે ભાગનો પગ બીછાનામાંથી ઉઠી જતાં પ્રથમ ભૂમિપર મૂકવો. (૨૩)

अम्भोभूतत्त्वयोर्निद्रा-विच्छेदः शुभहेतवे ॥
व्योमवाय्वग्नितत्त्वेषु, स पुनर्दुःखदायकः ॥२४॥

અર્થ—પૃથ્વી, આપ [પાણી], તેજ, વાયુ, અને આકાશ એવાં પાંચ તત્વો શ્વાસોચ્છ્વાસની અંદર આવે છે. તેમાં પૃથ્વી અથવા આપ તત્ત્વ શ્વાસોચ્છ્વાસમાં વહેતું હોય ત્યારે જાગ્રત થવું એ શુભ જાણવું, અને બીજાં તેજ, વાયુ અને આકાશ આ તત્વો વહેતાં હોય ત્યારે જાગ્રત થવું અશુભ સમજવું. (૨૪)

शुक्लप्रतिपदो वायु-श्चन्द्रेऽथार्के त्र्यहं त्र्यहम् ॥
वहन् शस्तोऽनया रीत्या, विपर्यासे तु दुःखदः ॥२५॥

અર્થઃ—શુક્લપ્રતિપદાથી (અજુવાળા પડવાથી) માંડી પહેલા ત્રણ દિવસ ચંદ્રનાડીમાં વાયુતત્ત્વ, પછી બીજા ત્રણ દિવસ સૂર્યનાડીમાં વાયુતત્ત્વ એમ પખવાડીયું પૂર્ણ થાય ત્યાં સુધી ચાલે તો શુભ સમજવું, પણ એથી ઉલટું

એટલે પહેલા ત્રણ દિવસ સૂર્યનાડીમા વાયુતત્ત્વ અને પછીના ત્રણ દિવસ ચદ્રનાડીમા વાયુતત્ત્વ એમ હોય તો અશુભ જાણવુ (૨૫)

सार्धं घटीद्वयं नाडि-रेकैकार्कोदयाद्वहेत् ॥
अरघट्टघटीभ्रान्ति-न्यायान्नाड्यः पुनः पुनः ॥२६॥

અર્થ —જેમ રહેટના ઘડાઓ એક પછી એક અનુક્રમે પાણીથી ભરાય છે, અને ખાલી થાય છે, તેમ સુર્યોદયથી માડીને ચદ્રનાડી અને સૂર્યનાડી અઢી અઢી ઘડી સુધી વહે છે (૨૬)

शतानि तत्र जायन्ते, निश्वासोच्छ्वासयोर्नव ॥
२१६००
ख-ख-षट्-त्रु-कर' सख्या-हारात्रे सकले पुनः ॥२७॥

અર્થ —ને અઢી ઘડીની અદર નવસે શ્વાસોચ્છ્વાસ થાય છે તેમજ સપૂર્ણ અહોરાત્રમા (આઠ પ્રહરમા) એકવીસ હજાર છસો (૨૧૬૦૦) શ્વાસોચ્છ્વાસ થાય છે (૨૭)

षट्त्रिंशद्गुरुवर्णानां या वेला भणने भवेत् ॥
सा वेला मरुतो नाड्या, नाड्यां सचरतो भवेत् ॥२८॥

અર્થ —છત્રીસ ગુરૂ અક્ષરનો ઉચ્ચાર કરતા જેટલો વખત લાગે તેટલો વખત પવનને એક નાડી સુધી બીજી નાડીમા જતા લાગે છે (૨૮)

प्रत्येकं पञ्च तत्त्वानि, नाड्योश्च वहमानयोः ॥
वहन्त्यहर्निशं तानि, ज्ञातव्यानि जितात्मभिः ॥२९॥

અર્થ —વહેતી સૂર્ય તથા ચદ્રનાડીમા પાચ તત્ત્વો

અહોરાત્ર વહે છે, તે બુદ્ધિમંત પુરૂષોએ એવી રીતે જાણવાં. (૨૯)

ऊर्ध्वं वह्निरधो वारि, तिरश्चीनः समीरणः ॥
भूमिर्मध्यपुटे व्योम, सर्वगं वहते पुनः ॥ ३० ॥

અર્થઃ—અગ્નિ ઉંચે વહે છે, જળ નીચે વહે છે, વાયુ વાંકો વહે છે, ભૂમિ નાસિકાના મધ્યમાંજ વહે છે, અને આકાશ સર્વત્ર વહે છે. (૩૦)

वायोर्वह्नेरपां पृथ्व्या, व्योम्नस्तत्त्वं क्रमाद्वहेत् ॥
वहन्त्योरुभयोर्नाड्यो-र्ज्ञातव्योऽयं क्रमः सदा ॥३१॥

અર્થઃ—બંને નાડીમાં પ્રથમ વાયુ પછી અગ્નિ, જળ, પૃથ્વી અને આકાશ આ તત્ત્વો અનુક્રમે વહે છે. એ અનુક્રમ સદાનો સમજવો. (૩૧)

पृथ्व्याः पलानि पञ्चाश-च्चत्वारिंशत्तथाम्भसः ॥
अग्नेस्त्रिंशत्पुनर्वायो-र्विंशतिर्नभसो दश ॥३२॥

અર્થઃ—પૃથ્વી તત્ત્વ પચાશ પળ, જળ તત્ત્વ ચાળીશ પળ, અગ્નિ તત્ત્વ ત્રીશ પળ, વાયુ તત્ત્વ વીસ પળ તથા આકાશ ત-ત્વ દશ પળ વહે છે. (૩૨)

प्रवाहकालसंख्येयं, हेतुर्वह्नल्पयोरथ ॥
पृथ्वी पञ्चगुणा तोयं, चतुर्गुणमथानलः ॥३३॥
त्रिगुणो द्विगुणो वायु-र्वियदेकगुणं भवेत् ॥
गुणं प्रति दश पला-न्युर्व्याः पञ्चाशादित्यतः ॥३४॥
एकैकहानिस्तोयादे-स्ते च पञ्चगुणाः क्षितौ ॥
गन्धो रसश्च रूपं च, स्पर्शः शब्दः क्रमादमी ॥३५॥

અર્થ —પાચે તત્ત્વો કેટલા વખત સુધી વહે છે તે કહ્યુ હવે પાચે તત્ત્વોની સ્થિતિ ઓછી વધારે છે તેનુ કારણ કહે છે પૃથ્વીતત્વના ગન્ધ, રસ, રૂપ, સ્પર્શ અને શબ્દ એ પાચ ગુણ છે જળ તત્ત્વના રસ, રૂપ, સ્પર્શ, અને શબ્દ એ ચાર ગુણ છે અગ્નિ તત્ત્વના રૂપ, સ્પર્શ અને શબ્દ એ ત્રણ ગુણ છે વાયુ તત્ત્વના સ્પર્શ અને શબ્દ એ બે ગુણ છે, અને આકાશ તત્ત્વનો શબ્દ એ એકજ ગુણ છે પ્રત્યેક ગુણની દસ પળ સ્થિતિ છે, તેથી પૃથ્વી તત્વની સ્થિતિ પચાશ પળ છે બીજા તત્ત્વોમા અનુક્રમે એકેક ગુણ ઓછો હોવાથી દશ પળ ઓછી ગણિયે તો, જળ તત્ત્વની ચાળીશ, અગ્નિ તત્ત્વની ત્રીશ, વાયુ તત્ત્વની વીશ અને આકાશ તત્વની દશ પળ સ્થિતિ થાય (૩૩) (૩૪) (૩૫)

तत्त्वाभ्या भूजलाभ्या स्या-च्छान्ते कार्ये फलोन्नतिः
दीप्तास्थिरादिके कृत्ये, तेजोवाय्वम्बरैः शुभम् ॥ ३६॥

અર્થ —કઇ સૌમ્ય કાર્ય કરવુ હોય તો પૃથ્વી તત્વ અથવા જળ તત્વ લેવુ, તેથી સારા ફળની પ્રાપ્તિ થાય છે અને ઉગ્ર અસ્થિર એવુ કાર્ય કરવુ હોય તો અગ્નિ, વાયુ અથવા આકાશ તત્વ લીધાથી શુભ ફળ થાય છે (૩૬)

पृथ्व्यप्तेजोमरुद्व्योम-तत्त्वाना चिह्नमुच्यते ॥
आद्ये स्थैर्य स्वचित्तस्य, शैत्यकामोद्भवौ परे ॥३७॥
तृतीये कोपसंतापौ, तुर्येऽस्य चञ्चलात्मता ॥
पञ्चमे शून्यतैव स्या-दथवा धर्मवासना ॥३८॥

અર્થ —હવે પૃથ્વી આદિ પાચે તત્વોમા કયુ તત્વ શરીરમા છે તે જાણવા માટે પાચેના લક્ષણ કહે છે

પૃથ્વી તત્ત્વ શરીરમાં હોય તો ચિત્તની સ્થિરતા રહે છે જળ તત્ત્વ હોય તો શીતળતા તથા કામવિકારની ઉત્પત્તિ થાય છે. અગ્નિ તત્ત્વ હોય તો ક્રોધ અને સંતાપ થાય છે. વાયુ તત્ત્વ હોય તો ચિત્ત ચંચળ થાય છે. અને આકાશ તત્ત્વ હોય તો મનમાં શૂન્યપણું રહે છે, અથવા ધર્મ કરવાની વાસના થાય છે. (૩૭) (૩૮):

श्रुत्योरङ्गुष्ठकौ मध्या–ङ्गुल्यौ नासापुटद्वये ॥
सृक्किणोः प्रान्त्यकोपान्त्या–ङ्गुली शेषे दृगन्तयोः ॥३९॥

न्यस्यान्तर्भ्रु पृथिव्यादि–तत्त्वज्ञानं भवेत्क्रमात् ॥
पीतश्वेतारुणश्यामै–र्बिन्दुभिर्निरुपाधि खम् ॥४०॥

અર્થઃ—કાનમાં બે અંગુઠા, નાકના બે છિદ્રમાં હાથની વચલી આંગળી, આંખપર અંગુઠા પાસેની બે હાથની આંગળી અને હોઠની બે બાજુએ બંને હાથોની છેલ્લી અને તેની પાસેની એવી બે આંગળીઓ રાખી ભ્રકુટીની અંદર જોવાથી પાંચે તત્ત્વોનું જ્ઞાન થાય છે. તે આવી રીતેઃ—પીળું બિંદુ દેખાય તો પૃથ્વી તત્ત્વ, સફેદ દેખાય તો જળ તત્ત્વ લાલ દેખાય તો અગ્નિ તત્ત્વ, કાળું દેખાય તો વાયુ તત્ત્વ અને કંઈ ન દેખાય તો આકાશ તત્ત્વ જાણવું. (૩૯)(૪૦)

पीतः कार्यस्य संसिद्धिं, बिन्दुः श्वेतः सुखं पुनः ॥
भयं संध्यारुणो ब्रूते, हानिं भृङ्गसमद्युतिः ॥४१॥

અર્થઃ—ઉપર કહેલી રીતે જોતાં પીળું બિંદુ દેખાય તો કાર્યની સિદ્ધિ, ધોળું દેખાય તો સુખ, રાતું દેખાય

તો ભયની ઉત્પત્તિ અને ભ્રમર સરખુ શ્યામવર્ણુ દેખાય તો હાનિ થાય છે (૪૧)

जीवितव्ये जये लाभे, सस्योत्पत्तौ च वर्षणे ॥
पुत्रार्थे युद्धपृच्छायां, गमनागमने तथा ॥४२॥
पृथ्व्यप्तत्त्वे शुभे स्यातां, वह्निवातौ च नो शुभौ ॥
अर्थसिद्धिः स्थिरोर्व्यां तु, शीघ्रमम्भसि निर्दिशेत्॥४३॥

અર્થ—આજીવિકા, જય, લાભ, ધાન્યની ઉત્પત્તિ, વૃષ્ટિ [વરસાદ], પુત્રની પ્રાપ્તિ, સગ્રામની પૃચ્છા, ગમન [જવુ] તથા આગમન [આવવુ] એટલા કાર્યોમા પૃથ્વી તત્ત્વ અને જળ તત્ત્વ શુભ જાણવા, પણ અગ્નિતત્ત્વ અને વાયુતત્ત્વ ઉપર કહેલા કાર્યોમા શુભ ફળ દેનાર નથી, પૃથ્વી તત્ત્વ ધીરે ધીરે શુભ ફલ આપે છે, અને જલતત્ત્વ તુરત આપે છે (૪૨) (૪૩)

(ઇતિ સ્વરવિચાર.)

निष्ठीवनेन दद्रवादि- मलं कुर्यान्निघर्षणम् ॥
अङ्गरक्षार्थं पाणिभ्यां, मन्त्रीकरणमाचरेत् ॥४४॥

અર્થ—ઉઠી દાદર, ખસ વિગેરે થઇ હોય તો તે ઉપર થુક ઘસવુ, અને શરીરની રક્ષાને અર્થે બે હાથે શરીર મસળવું. (૪૪)

बालनामस्तमाचम्य, पातव्यमथवा पयः ॥
अम्भसः प्रसृतीरष्टौ, पेया. केचिद्वदन्त्यपि ॥४५॥

અર્થ—પ્રાતઃકાળના જળ બહુ બળ દેનાર છે તેથી

તે વજ્ર નામથી કહેવાય છે. માટે 'વજ્ર' એ નામેં ઓળખાતું જળ કંઠ સૂધી એટલે ખુબ ધરાઇને પીવું. કેટલાક તો આઠ પસલી પાણી પીવું એમ પણ કહે છે. (૪૫)

न स्वप्यान्नान्यमायासं, कुर्यात्पीत्वा जलं सुधीः ॥
आसीनो हृदि शास्त्रार्थान्, दिनकृत्यानि च स्मरेत् ॥४६॥

અર્થઃ—જલપાન કરીને પાછું સુવું નહીં, તથા આયાસ ઉપજાવે એવું કંઇ કામ પણ કરવું નહીં. પણ સ્વસ્થ બેસી શાસ્ત્રમાં કહેલી વાતોનો મનમાં વિચાર કરવો અથવા દિવસે જે શુભ કૃત્ય કરવા ધાર્યું હોય તે ચિંતવવું. (૪૬)

प्रातः प्रथममेवाथ, स्वपाणिं दक्षिणं पुमान् ॥
पश्येद्वामं च वामाक्षी, निजपुण्यप्रकाशकम् ॥४७॥

અર્થઃ—પુરૂષે પોતાના પુણ્યનો પ્રકાશ કરનારો જમણો હાથ સવારમાં પ્રથમજ જોવો, અને સ્ત્રીએ પોતાનો ડાબો હાથ જોવો. (૪૭)

मौनी वस्त्रावृतः कुर्या-द्दिने संध्याद्वयेऽपि च ॥
उदङ्मुखः शकृन्मूत्रे, रात्रौ याम्याननः पुनः ॥४८॥

અર્થઃ—પછી વસ્ત્ર પહેરી, મૌન રહી મલમૂત્રનો ઉત્સર્ગ [ઝાડો અને પેશાબ] કરવો. તે કરતી વખતે દિવસ અથવા સવાર સાંજ હોય તો ઉત્તર દિશાએ અને રાત્રિ હોય તો દક્ષિણ દિશાએ મુખ કરીને બેસવું. (૪૮)

नक्षत्रेषु समस्तेषु, भ्रष्टतेजस्सु भास्वतः ॥
यावदर्धोदयस्ताव-त्प्रातःसंध्याभिधीयते ॥४९॥

અર્થ —જ્યારે સર્વે નક્ષત્રો નિસ્તેજ એટલે નજરે દેખાતા બંધ પડી જાય છે, અને સૂર્યના બિંબનો અર્ધો ઉદય થએલો દેખવામા આવે છે, ત્યારે પ્રાત સધ્યાનો સમય થયો એમ કહેવાય છે (૪૮)

भस्मगोमयगोस्थान—वल्मीकशकृदादिमत् ॥
उत्तमद्रुमसस्यार्चि—र्मार्गनीराश्रयादि च ॥५०॥
स्थान चितादिविकृत, तथा कूलकपातटम् ॥
वर्जनीय प्रयत्नेन, वेगाभावेऽन्यथा नतु ॥ ५१ ॥

અર્થ —રાખ અથવા છાણ જ્યા પડયુ હોય, જ્યા ગાયો રહેતી હોય અથવા બધાતી હોય, જ્યા વલ્મીક (રાફડો), વિષ્ટા વિગેરે મલિન વસ્તુ, ઉત્તમ વૃક્ષ અથવા અગ્નિ હોય, જે આવવા જવાનો માર્ગ, પાણીનુ સ્થાનક અથવા વિસામો લેવાની જગ્યા હોય, અને સ્મશાન અથવા નદીનો કાંઠો હોય, એવે ઠેકાણે બહુ ઉતાવળ ન હોય તો મલમૂત્રોત્સર્ગ [ઝાડો અને પેશાબ] કરવો નહિ અને ઉતાવળ હોય તો કઈ હરકત નથી (૫૦-૫૧)

वेगाश्च धार्यवात—विण्मूत्रक्षुतनृपाम् ॥
निद्राकासश्रमश्वास—जृम्भाश्रुच्छर्दिरेतसाम् ॥५२॥

અર્થ —અધોવાત, વિષ્ટા, મૂત્ર, તૃષા, છીક, ઉટકી, નિદ્રા ખાસી, મહેનત કરવાથી વધેલો શ્વાસોચ્છ્વાસ, બગાસુ, આસુ, ઉલટી તથા વીર્ય એ બધાવધી મનાય તો તેની ગતિ અટકાવવી નહિ (૫૨)

गन्धवाहप्रवाहस्य, निजं पृष्ठमनर्पयन् ॥
स्त्रीपूज्यागोचरे लोष्ट—द्वयन्यस्तपदः सुधी ॥
मन्दं मन्दं ततः कृत्वा, निरोधस्य विमोचनम् ॥
निःशल्याद्दुष्टमृत्पिण्डे—नोन्मृज्यं च गुदान्तरम् ॥५४॥

અર્થઃ—બુદ્ધિશાલી પુરૂષે મલમૂત્ર કરવા બેસતી વખતે પવનનો પ્રવાહ જે બાજુથી આવતો હોય તે બાજુએ પોતાની પૂઠ ન કરવી, સ્ત્રીઓની અથવા પોતાને પૂજવા લાયક પુરૂષોની દૃષ્ટિ વર્જવી. અને પત્થર ઉપર બે પગ મૂકવા, એવી રીતે બેસી ધીરે ધીરે મલમૂત્રનો ત્યાગ કરી જેમાં કાંટો કાંકરો ન હોય એવી માટી લઇ મલદ્વારની શુદ્ધિ કરવી. (૫૩) (૫૪)

क्षुतशुक्रशकृन्मूत्रं, जायते युगपद्यदि ॥
तत्र मासे दिने तत्र, वत्सरान्ते मृतिर्भवेत् ॥५५॥

અર્થઃ—જો છીંક, ધાતુ, મલ અને મૂત્ર એ ચારે સાથે થાય, તો એક વર્ષને છેડે તેજ મહીનામાં અને તેજ દિવસે તે મનુષ્યનું મરણ થાય. (૫૫)

विमुच्यान्याः क्रियाः सर्वा, जलशौचपरायणः ॥
गुदं लिङ्गं च पाणी च, पूतया शोधयेन्मृदा ॥५६॥

અર્થ—જળશુદ્ધિ તરફ લક્ષ આપનારા પુરૂષોએ બીજાં સર્વ કામ મુકી દઈ ગુદા (મલદ્વાર), પુરૂષચિન્હ અને હાથ શુદ્ધ માટીથી સાફ કરવા. (૫૬)

श्लेष्मादिवेन कर्तव्यो, व्यायामस्तु दिनादिवः ॥
ज्वलिते जाठरेऽग्नौ च, न कार्या निर्दिरता ॥५७॥

અર્થ—જેના શરીરમાં કફ વધારે હોય, તેણે કફ નાશને અર્થે વ્યાયામ (કુસ્તી અથવા કોઈપણ જાતની કસરત.) કરવો પણ પેટમાં જઠરાગ્નિ પ્રદીપ્ત થયો હોય તો અર્થાત્ ઘણી ભૂખ લાગી હોય તો બિલકુલ વ્યાયામ કરવો નહીં (૫૭)

गतिशक्त्यर्धमेवासौ, क्रियमाणः सुखावहः ॥
गात्रवेदादिकस्त्वत्र, सोऽश्व नाश्विव नोचितः ॥५८॥

અર્થ—ચાલવાની જેટલી શક્તિ હોય તે કરતાં અર્ધો વ્યાયામ કરવો, તેજ સુખકારી છે પણ હદઉપરાંત શરીર ઉપર કરીને વળી એવો ઘોડાની પેઠે વ્યાયામ કરવો ઉચિત નથી (૫૮)

गजाश्ववाहनैर्देरत्, व्यायामो दिनोदये ॥
अमृतोपम एवासौ, मनुष्ये च शिशिना ॥५९॥

અર્થ—સૂર્યોદયની વેળાએ હાથી, ઘોડા વિગેરે વાહન ઉપર બેસીને વ્યાયામ કરવો તે અમૃતસમાન સુખદાયી છે વળી તેથી હાથી ઘોડા વિગેરે જનાવરોને પણ ચાલવાની સારી શિક્ષા મળે છે (૫૯)

(अथ दन्तधावनविधिः ।)

[illegible]पार्श्व कर्तव्या, [illegible] ॥
आस्ये[illegible] कुर्या—[illegible] ॥६०॥

અર્થઃ—દાંત મજબૂત કરવાને અર્થે પ્રથમ ટચલી આંગળીથી દાંતનાં પેઢિયાં ઘસવાં, અને પછી સાચવીને દાતણ કરવું. (૬૦)

यद्यायवाःरिगण्डूषा—द्विन्दुरेकः प्रधावति ॥
कण्ठे तदा नरैर्ज्ञेयं, शीघ्रं भोजनमुत्तमम् ॥६१॥

અર્થઃ—જો દાતણ કરતાં પહેલા કોગળાનો એક બિંદુ ગળામાં ઉતરી જાય તો મનુષ્યોએ જાણવું કે, આજે શીઘ્ર અને સારૂં ભોજન મળશે. (૬૧)

अवक्राग्रन्थिसत्कूर्चं, सूक्ष्माग्रं द्वादशाङ्गुलम् ॥
कनिष्ठाग्रसमस्थौल्यं, ज्ञातवृक्षं सुभूमिजम् ॥६२॥
कनिष्ठिकानामिकयो–रन्तरे दन्तधावनम् ॥
आदाय दक्षिणां दंष्ट्रां, वामां वा संस्पृशंस्तले ॥६३॥
तल्लीनमानसः स्वस्थो, दन्तमांसमपीडयन् ॥
उत्तराभिमुखः प्राची–मुखो वा निश्चलासनः ॥६४॥
दन्तान्मौनपरस्तेन, घर्षयेद्वर्जयेत्पुनः ॥
दुर्गन्धं शुषिरं शुष्कं, स्वाद्वम्लं लवणं च तत् ॥६५॥

અર્થઃ—સીધું (વાંકું નહીં એવું), ગાંઠ વિનાનું, જેનો સારો કૂચો થાય એવું, જેનો અગ્રભાગ (ટૂંક) કોમળ છે એવું બાર આંગળ લાંબું, ટચલી આંગળી જેટલું જાડું, જાણીતા વૃક્ષનું તથા સારી ભૂમિમાં થયેલા વૃક્ષનું એવું દંતકાષ્ઠ (દાતણ) ટચલી આંગળી અને તેની જોડેની આંગળી એ બેની વચ્ચે પકડીને જમણી અથવા ડાબી દાઢે પ્રથમ ઘસવું

દાત ઘસતી વખતે સ્વસ્થ થઇ ઘસવામાજ બરાબર ચિત્ત રાખવુ દાતની આજુ બાજુના માસને પીડા ન થાય એમ ઘસવુ ઉત્તર અથવા પુર્વ દિશા તરફ મુખ કરી નિશ્ચળ બેસવુ અને મૌન પણે રહેવુ દુર્ગંધવાળુ, અદરથી પોલુ, સૂકુ, મીઠુ, ખાટુ અને ખારૂ એવુ દતકાષ્ઠ (દાતણ) વર્જવુ. (૬૨) (૬૩) (૬૪) (૬૫)

व्यतीपाते रवेर्वारे, सङ्क्रान्तौ ग्रहणे न तु ॥

दन्तकाष्ठं नवाष्टैक-भूतपक्षान्तषट्सु ॥६६॥

અર્થ—વ્યતિપાતનો દિવસ, રવિવાર, સક્રાતિનો દિવસ, ગ્રહણનો દિવસ, નવમી, અષ્ટમી, પ્રતિપદા, ચતુર્દશી, પૂર્ણિમા અમાવાસ્યા અને પષ્ઠી એટલા દિવસે દતકાષ્ઠ (દાતણ) કરવુ નહી (૬૬)

अभावे दन्तकाष्ठस्य, मुखशुद्धिविधिः पुनः ॥

कार्यो द्वादशगण्डूषै—र्जिह्वोल्लेखस्तु सर्वदा ॥६७॥

અર્થ—દતકાષ્ઠ (દાતણ) મળી શકે નહી તો બાર કોગળા કરી મુખશુદ્ધિ કરવી પણ જીભ ઉપરનો મેલ તો હમેશા ચાળીને ઉતારવો (૬૭)

विलिख्य रसना जिह्वा—निर्लेखिन्या शनैः शनैः ॥

शुचिप्रदेशे प्रक्षाल्य, दन्तकाष्ठं पुनस्त्यजेत् ॥६८॥

અર્થ—પછી દાતણ ફાડી તેના કકડાથી ધીરે ધીરે જીભ ઉપરનો મળ ઉતારવો, અને દાતણ ધોઇ આગળ શુદ્ધ ભૂમિ ઉપર નાખી દેવુ (૬૮)

संमुखं पतितं स्वस्य, शान्तानां ककुभां च यत् ॥
ऊर्ध्वस्थं सुखदं तत्स्या–दन्यथा दुःखहेतवे ॥ ६९ ॥

અર્થઃ—તે દંતકાષ્ઠ જો આપણી સામું પડે, શાંત દિશામાં પડે, અથવા ઉંચુ પડે તો તે સુખકારી સમજવું. અને એથી ઉલટી રીતે પડે તો દુઃખનું કારણ જાણવું. (૬૯)

ऊर्ध्वं स्थित्वा क्षणं पश्चा–त्पतत्येव यदा पुनः ॥
मिष्टाहारस्तदादिष्ट–स्तद्दिने शास्त्रकोविदैः ॥ ७० ॥

અર્થઃ—થોડીવાર ઉંચુ રહીને જો પાછું જમીન ઉપર પડે, તો તે દિવસે મિષ્ટાન્નની પ્રાપ્તિ થાય એમ શાસ્ત્રના જાણ પુરૂષો કહે છે. (૭૦)

कासश्वासज्वराजीर्ण–शोकतृष्णास्यपाककृत् ॥
नच कुर्याच्छिरोनेत्र–हृत्कर्णामयवानपि ॥ ७१ ॥

અર્થઃ—ખાંસી, શ્વાસ, જ્વર, અજીર્ણ, સોજો, તૃષા, મુખ પાક (મોઢું આવવું) માથાનો, નેત્રનો, હૃદયનો તથા કાનનો દુખાવો એટલામાં ગમે તે રોગ જેને હોય તે રોગિયે દાતણ કરવું નહીં. (૭૧)

प्रातः शनैः शनैर्नस्ये, रोगहृच्छुद्धवारिणा ॥
शूत्कृतो नासया तोयं, गजा गर्जन्ति नीरुजः ॥७२॥

અર્થઃ—સવારમાં ધીરે ધીરે નાક વાટે ચોખ્ખું પાણી પીવું. તેથી રોગનો નાશ થાય છે. હાથીઓ નાક વાટે પાણી પિએ છે તેથી નિરોગી થઈ ગર્જારવ કરે છે. (૭૨)

उक्तंच॥ सुगन्धवदनाः स्निग्धनिस्वना विमलेन्द्रियाः ॥
निर्वलीपलितव्यङ्गा, जायन्ते नस्यशीलिनः ॥७३॥

અર્થ —વૈદ્યશાસ્ત્રમાં કહ્યું છે કે, “ જે પુરૂષો હમેશાં નસ્ય (નાક વાટે શાસ્ત્રોક્ત વસ્તુનું સેવન કરવું) કરે છે તેમના મુખે સુગંધિ રહે છે, સ્વર સ્નિગ્ધ રહે છે, ઇંદ્રિયો નિર્મળ રહે છે, અને શરીર ઉપર કરચલી વિગેરે પડતી નથી.” (૭૩)

आस्यशोषाधरस्फोट-स्वरभङ्गनिवृत्तये ॥
पारुष्यदन्तरुक्शिरस्त्वक्स्नेहगण्डूषमुद्वहेत् ॥७४॥

અર્થ —મુખમાં શોષ પડતો હોય, હોઠ ફાટી ગયા હોય, સાદ બેસી ગયો હોય, ચામડી બરછટ થઈ હોય, દાંતમાં દુખાવો થતો હોય, તો તેને મટાડવા માટે ઘીનો અથવા તેલનો કોગળો કરવો (૭૪)

केशप्रसाधनं नित्यं, कारयेदथ निश्चलः ॥
कराभ्यां युगपत्कुर्यात् स्वोत्तमाङ्गे स्वयं न तत् ॥७५॥

અર્થ —પછી સ્થિર બેસી કોઈ પાસે પોતાના માથાના વાળ સાફ કરાવવા. પોતાના માથાના વાળ પોતાનેજ સાફ કરવા હોય તો તે સાથે બે હાથથી સાફ કરવા નહીં (૭૫)

तिलकं द्रष्टुमादर्शे, मङ्गलाय च वीक्ष्यते ॥
दृष्टे देहे शिरोहीने, मृत्युः पञ्चदशेऽहनि ॥७६॥

અર્થ —તિલક જોવા માટે અથવા મંગળીકને અર્થ આરિસામાં જોતું કદાચિત જો માથા વગર એકલું પોતાનું ધડજ દેખાય તો તે દિવસથી પંદરમે દિવસે પોતાનું મરણ જાણવું (૭૬)

दानधर्मविशुद्धानां, तपस्यां करोति यः ॥
तीर्थयात्राफलं तस्य, तत्रागोऽस्मिन् दिने दिने ॥७७॥

અર્થઃ—મા, બાપ વિગેરે વૃદ્ધ પુરૂષોને જે નમસ્કાર કરે છે, તેને તીર્થયાત્રાનું ફળ મળે છે. માટે દરરોજ તેમને નમસ્કાર કરવો. (૭૭)

उक्तं च ॥मातापित्रोरभक्तः, क्रियामुद्दिश्य याचकः ॥
मृतशय्याप्रतिग्राही, न भूयः पुरुषो भवेत् ॥७८॥

અર્થઃ—કહ્યું છે કે, "જે મનુષ્ય પોતાના માબાપનું ભરણ પોષણ ન કરે, કંઇ ધર્મક્રિયા ઉદ્દેશીને એટલે ફલાણું ધર્મકૃત્ય કરવું છે, એમ કહીને યાચના કરે, અને મરી ગયા મનુષ્યનું શય્યાદાન લે, તેને ફરીથી મનુષ્ય ભવ મળવો દુર્લભ છે. (૭૮)

वृद्धौ च मातापितरौ, साध्वी भार्या सुतः शिशुः ॥
अप्यकार्यशतं कृत्वा, भर्तव्या मनुरब्रवीत् ॥७९॥

અર્થઃ—આપણાં વૃદ્ધ થયેલાં માબાપ, શીલવતી સ્રી અને અજ્ઞાત પુત્ર એમનું પોષણ સેંકડો અકાર્યો કરીને પણ કરવું, એમ મનુ ઋષિ કહે છે. (૭૯)

अनुपासितवृद्धाना-मसेवितमहीभुजाम् ॥
अवारमुख्यासुहृदां, दूरे धर्मार्थतुष्टयः ॥८०॥

અર્થઃ—જે લોકો સ્થવિરની સેવા કરતા નથી તેમનાથી ધર્મ વેગળો રહે છે, જે રાજાઓની સેવા કરતા નથી તેમનાથી દ્રવ્ય વેગળું રહે છે, અને જે ગણિકાની મૈત્રી[1] રાખતા નથી તેમનાથી વિષયસંતોષ વેગળો રહે છે. (૮૦)

૧ ગણિકાના દોષ દેખીને વૈરાગ્ય થવાથી વિષય ઉપર સંતોષ થાય છે. એ ભાવાર્થ સમજવો.

ततः स्नात्वा शिरःकण्ठा–वयवेषु यथोचितम्॥
पवित्रयेतुमात्मानं, जलैर्मन्त्रक्रमेण वा ॥८१॥
वस्त्रशुद्धिमनःशुद्धिं, कृत्वा त्यक्त्वा च दूरतः ॥
नास्तिकादीनाः क्षिप्त्वा, पुष्प पूजागृहान्तरे ॥८२॥
आश्रयन्दक्षिणा शाखा–मर्चयन्नथ देहलीम् ॥
तामस्पृशन्प्रविश्यान्त–र्दक्षिणेनाङ्घ्रिणा ततः ॥ ८३ ॥
सुगन्धमधुरैर्द्रव्यैः, प्राङ्मुखो वाप्युदङ्मुखः
वामनाड्या प्रवृत्ताया, मौनवा देवमर्चयेत् ॥ ८४ ॥

અર્થ —પછી દેશ, કાળ તથા આપણી પ્રકૃતિને ઉચિત લાગે તેમ બાહ્ય શુદ્ધિને અર્થે શિર સ્નાન (માથા ઉપરથી ન્હાવુ), કંઠ સ્નાન (કંઠ સુધી ન્હાવુ), અવયવસ્નાન(હાથ, પગ વિગેરે ધોવા) કરવુ જળે કરીને સ્નાન કરવુ એવો નિયમ છે, પણ તેમ કરવાને હરકત હોય તો મંત્ર વડે સ્નાન કરવુ પછી શુદ્ધ વસ્ત્ર પહેરી, મન શુદ્ધ કરી તથ નાસ્તિક, વ્યસની વિગેરે લોકોની દ્રષ્ટિથી વેગળા રહી પૂજા ગૃહની અંદર ફૂલ વિગેરે સામગ્રી બનાવવા ભણી બારની જમણી બાજુએ ઉભા રહી બારના ઉંબરાનુ પૂજન કરવુ પછી, ઉંબરાને પગે સ્પર્શ ન કરતા જમણો પગ આગળ મૂકીને અંદર જવુ અને ચંદ્રનાડી (ડાબી નાસિકા) વહેતા થકા પૂર્વ અથવા ઉત્તર દિશા તરફ મુખ કરીને સુગંધી તથા મધુર વસ્તુથી, મૌન રહીને, દેવની પૂજા કરવી (૮૧) (૮૨) (૮૩) (૮૪)

गृहे प्रविशता वामभागे, शुस्थानसंस्थितम् ॥
देवतायतनं कुर्या-त्सार्द्धहस्तोर्ध्वभूमिषु ॥८५॥

અર્થઃ—ઘરમાં પ્રવેશ કરતાં ડાબા હાથપર દેવમંદિર કરવું, તેની રચના સારી હોવી જોઇયે, અને ઘરની ભૂમિથી મંદિરની ભૂમિ દોઢ હાથ ઉંચી જોઇયે. (૮૫)

नीचैर्भूमिस्थितं कुर्या-द्देवतावसथं यदि ॥
नीचैर्नीचैस्ततोऽवश्यं, संतत्यादि तदा भवेत् ॥८६॥

અર્થઃ—જો નીચી ભૂમિ ઉપર દેવ મંદિર કરે, તો તે પુરૂષની સંતતિ વિગેરે અવશ્ય નીચ અવસ્થામાં રહે. (૮૬)

पूजकः स्याद्यथा पूर्व-मुखो वाप्युत्तरामुखः ॥
दक्षिणादिदिशो वर्ज्या, विदिग्वर्जनमेव च ॥ ८७ ॥

અર્થઃ—પૂજા કરનારા પુરૂષે પૂર્વ અથવા ઉત્તર દિશા તરફજ મુખ કરીને બેસવું. દક્ષિણ, પશ્ચિમ, અગ્નિ, નૈઋત્ય વાયવ્ય અને ઈશાન્ય એ છ દિશા પૂજામાં અવશ્ય વર્જવી. (૮૭)

पश्चिमाभिमुखः पूजां, जिनमूर्तेः करोति चेत् ॥
चतुर्थसंततिच्छेदो, दक्षिणस्यामसंततिः ॥८८॥

અર્થઃ—જો કોઇ પશ્ચિમ દિશા તરફ મુખ કરીને જિન પ્રતિમાની પૂજા કરે, તો તેની સંતતિનો ચોથી પેઢીએ વિચ્છેદ થાય. અને દક્ષિણ દિશા તરફ મુખ રાખે તો સંતતિ વધેજ નહીં. (૮૮)

आग्नेय्या च यदा पूजा धनहानिर्दिने दिने ॥
वायव्यां संततिर्नैव, नैऋत्या च कुलक्षयः ॥८९॥

અર્થ—આગ્નેયી દિશામા મુખ કરીને પૂજા કરે તો દિવસે દિવસે ધનની હાનિ થતી જાય, વાયવ્ય દિશામા મુખ કરે તો સતતિ ન થાય અને નૈઋત્ય દિશામા મુખ કરે તો કુળનો ક્ષય થાય (૮૯)

ईशान्यां कुर्वतां पूजा, संस्थितिर्नोपजायते ॥
अंघ्रिजानुकरांसेषु, मूर्ध्नि पूजा यथाक्रमम् ॥९०॥

અર્થ—ઈશાન દિશામા મુખ કરીને બેસે તો પૂજા કરનારની સ્થિતિ સારી રહેતી નથી પૂજા કરનારે પ્રથમ બે પગોએ પછી અનુક્રમે બે જાનુએ, બે હાથે, બે ખભાએ અને મસ્તકે પુજા ચઢાવવી (૯૦)

श्रीचंदनं विना पूजा, नैव कार्या जिनेशितुः ॥
भाले कण्ठे हृदम्भोजे, उदरे तिलकं क्रमात् ॥९१॥

અર્થ—ઉત્તમ ચદન વગર જીનપ્રતિમાની પુજા કોઇ કાળેપણ કરવી નહી કપાળ, કઠ, હૃદય, ઉદર વિગેરે નવ સ્થાનક ઉપર અનુક્રમે તિલક કરવુ (૯૧)

नवभिस्तिलकैः पूजा, करणीया निरन्तरम् ॥
प्रभाते प्रथमं वास-पूजा कार्या विचक्षणैः ॥९२॥

અર્થ—હમેશા નવ તિલક કરીને જિન પ્રતિમાની પુજા કરવી વિદ્વાન પુરૂષોએ પ્રભાત કાળમા પ્રથમ વાસપૂજા કરવી (૯૨)

मध्याह्ने कुसुमैः पूजा, संध्यायां धूपदीपतः ॥
अर्हतो दक्षिणे भागे, दीपस्याथ निवेशनम् ॥९३॥

અર્થઃ—બપોરે સુગંધી ફુલોથી જિન પ્રતિમાની પૂજા કરવી. અને સંધ્યાકાળે ધૂપદીપથી પુજા કરવી. જિન પ્રતિમાની દક્ષિણ બાજુએ દીવો રાખવાનું સ્થાનક કરવું. (૯૩)

वामांशे धूपदहन-मग्रे कूरं तु संमुखम् ॥
ध्यानं तु दक्षिणे भागे, चैत्यानां वन्दनं तथा ॥९४॥

અર્થઃ—ભગવાનની ડાબી બાજુએ ધૂપધાણું મૂકવું. આગળ નૈવેદ્ય રાખવું, સામું બેસી ધ્યાન કરવું, તથા ચૈત્યવંદન દક્ષિણ ભાગે કરવું. (૯૪)

गन्धधूपाक्षतैः सद्भिः, प्रदीपैर्बलिवारिभिः ॥
शान्तौ श्वेतं तथा पीतं, लाभे श्यामं पराभवे ॥९५॥
मङ्गलार्थे तथा रक्तं, पञ्चवर्णं तु सिद्धये ॥
पञ्चामृते तथा शान्तौ, दीपः स्याच्च गुडैर्घृतैः ॥९६॥

અર્થઃ—સત્પુરૂષોએ ચંદન, અક્ષત, ધૂપ, દીપ, બલિ અને જળ આ વસ્તુથી ભગવાનની પૂજા કરવી. શ્વેત પુષ્પ (ધોળું ફૂલ) શાંતિકારક છે, પીતપુષ્પ (પીળું ફુલ) લાભકારક છે, શ્યામપુષ્પ (કાળું પુલ) પરાભવ કરનારૂં છે, રક્તપુષ્પ (રાતું ફુલ) મંગલિક છે, અને પંચવર્ણી ફુલ સિદ્ધિદાયક છે. પંચામૃત પુજા અથવા શાંતિ હોય તો ગોળનો અને ઘીનો દીવો કરવો. (૯૫) (૯૬)

पद्मासनसमासीनो, नासाग्रन्यस्तलोचनः ॥
मौनी वस्त्रावृतास्योऽथ, पूजां कुर्याज्जिनेशितुः ॥९७॥

અર્થ —સત્પુરૂષે પદ્માસને બેસી નાસિકાના અગ્રભાગ ઉપર દૃષ્ટિ રાખી, મૌન રહી, અને શુદ્ધ વસ્ત્રથી મુખકોશ બાંધી જિનેશ્વર મહારાજની પુજા કરવી (૯૭)

स्नानं पूर्वमुखीभूय, प्रतीच्यां दन्तधावनम् ॥
उदीच्या श्वेतवासांसि, पूजा पूर्वोत्तरामुखी ॥९८॥

અર્થ —પૂર્વ દિશાએ મુખ કરીને સ્નાન કરવુ, પશ્ચિમ દિશાએ મુખ કરીને દાતણ કરવુ, ઉત્તર દિશાએ મુખ કરીને શુદ્ધ વસ્ત્ર પહેરવા, અને પૂર્વ અથવા ઉત્તર દિશા તરફ મુખ કરીને દેવપુજા કરવી (૯૮)

(ઇતિ પૂજાવિધિ.)

(अथ जपविधिः ।)

सकुल्याद्विजने भव्यः, सशब्दान्मौनवान्शुभः ॥
मौनजान्मानसः श्रेष्ठो, जपः श्लाघ्यः परः परः ॥९९॥

અર્થ —માણસના સમૂહમા જપ કરવા કરતા એકાતમા કરવો પ્રશસ્ત છે જપના અક્ષર લોકોથી સભળાય એવા બોલવા તે કરતા મૌન રાખી ગણવા એ સારૂ તથા મૌન રાખી અક્ષર ગણવા તે કરતા મનમાજ મત્રાક્ષરની પક્તિનુ અર્થસહિત ચિતવન કરવુ એ ઉત્તમ છે ઉપર કહેલા ત્રણ પ્રકારના જપમા પહેલા કરતા બીજો શ્રેષ્ઠ અને બીજા કરતા ત્રીજો શ્રેષ્ઠ જાણવો (૯૯)

(अथ प्रश्नविचारः)

पूजाद्रव्यार्जनोद्वाहे, दुर्गादिसरिदाक्रमे ॥
गमागमे जीविते च, गृहक्षेत्रादिसंग्रहे ॥१००॥
क्रयविक्रयणे वृष्टौ, सेवाकृषिविषे जये ॥
विद्यापट्टाभिषेकादौ, शुभेऽर्थे च शुभः शशी ॥१०१॥

અર્થઃ—પૂજા કરવી, દ્રવ્ય કમાવું, વિવાહ કરવો, કિલ્લા ઉપર ચઢવું, નદી ઉતરવી, જવું, આવવું, જીવવું, ઘર, ક્ષેત્ર વિગેરે લેવું, કોઇ વસ્તુની ખરીદી અથવા વેચાણ કરવું, વૃષ્ટિ થવા માટે કોઈ પણ જાતનો પ્રયત્ન કરવો, સેવા કરવી, ખેતી કરવી, વિષના સંબંધમાં કંઇ કામ કરવું, કોઇને જીતવું, વિદ્યાનો આરંભ કરવો, રાજાદિકને પટ્ટાભિષેક કરવો, ઇત્યાદિ કાર્યમાં તથા કોઇપણ શુભ કાર્યમાં ચંદ્રનાડી શુભ જાણવી. (૧૦૦) (૧૦૧)

अग्रस्थो वामगो वापि, ज्ञेयः सोमदिशि स्थितः ॥
पृष्ठस्थो दक्षिणस्थश्च, विज्ञेयः सूर्यभागभाक् ॥१०२॥

અર્થઃ—આગળ અથવા ડાબે પડખે ઉભેલો માણસ ચંદ્ર દિશામાં જાણવો, અને પછવાડે અથવા જમણી બાજુએ ઉભેલો સૂર્ય દિશામાં જાણવો. (૧૦૨)

प्रश्ने प्रारम्भणे वापि, कार्याणां वामनासिका ॥
पूर्णा वायोः प्रवेशश्चे—त्तदा सिद्धिरसंशयम् ॥१०३॥

અર્થઃ—કોઇ કાર્યનો પ્રશ્ન અથવા આરંભ કરતી વખતે ડાબી નાસીકામાં જો પૂર્ણ વાયુ ભરાય અર્થાત્ જો

એવો સ્વપ્ન આવ્યો હોય તો નિશ્ચયથી કાર્યસિદ્ધિ જાણવી (૧૦૩)

[illegible] ॥
[illegible] ॥१०४॥

અર્થ—[illegible] અને [illegible] હોય, અને [illegible] વહેની હોય તો [illegible] અને [illegible] અર્થનાડી વહેતી હોય તો [illegible] (૧૦૪)

[illegible] ॥
[illegible] ॥१०५॥

અર્થ—[illegible] અને [illegible] સાથે વહેતી હોય તો [illegible] અને [illegible] (૧૦૫)

[illegible] ॥
[illegible] ॥१०६॥

અર્થ [illegible] (૧૦૬)

नामग्राहे द्वयोः प्रश्ने, जयाजयविधौ वदेत् ॥
पूर्वोक्तस्य जयः पूर्णे, पक्षे रिक्ते परस्य च ॥१०७॥

અર્થઃ—સામસામા પક્ષવાળા બે મનુષ્યોનાં નામ લઇને તેમના જયપરાજયનો કોઈ પ્રશ્ન કરે તો પ્રશ્ન કરનાર માણસ જે બાજુએ ઉભો હોય, તે બાજુનો આપણો સ્વર વહેતો હોય તો પહેલા જેનું નામ લીધું હોય તેનો જય કહેવો, અને તે બાજુ ખાલી હોય તો પછવાડેથી જેનું નામ લીધું હોય તેનો જય કહેવો. (૧૦૭)

रोगिप्रश्ने च गृह्णीया—त्पूर्वं नान्यभिधां यदि ॥
पश्चाद्व्याधिमतो नाम, तज्जीवति स नान्यथा ॥१०८॥

અર્થઃ—કોઇ રોગીના સંબંધમાં પ્રશ્ન કરે, અને તેમાં જો પ્રથમ જેને પ્રશ્ન કરવો હોય તે નિમિત્તીનું નામ લે, અને પછી રોગીનું નામ લે, તો રોગી જીવે, નહીં તો નહીં. (૧૦૮)

बद्धानां रोगितानां च, भ्रष्टानां निजात्पदात् ॥
प्रश्ने युद्धविधौ वैरि—संगमे सहसा भये ॥१०९॥
स्नाने पानेऽशने नष्टा—न्वेषे पुत्रार्थमैथुने ॥
विवाहे दारुणेऽर्थे च, सूर्यनाडी प्रशस्यते ॥ ११० ॥

અર્થઃ—બંદીખાને પડેલા, રોગથી પીડાયલા અને પોતાના અધિકારથી ભ્રષ્ટ થયેલા એ ત્રણેમાં ગમે તેના સંબંધમાં પ્રશ્ન કરવો હોય, સંગ્રામ કરવો હોય, શત્રુની મુલાકાત લેવી હોય, અચાનક ભય આવી પડયો હોય, ન્હાવું, ખાવું, પીવું, ખોએલી વસ્તુની શોધખોળ કરવી, પુત્ર પ્રાપ્તિને અર્થે

સ્ત્રીસંગ કરવો, વિવાહ કરવો અને કોઇપણ ક્રુરકર્મ કરવું હોય તો સૂર્યનાડી સારી સમજવી (૧૦૯)

नासाया दक्षिणाया तु, पूर्णायामपि वायुना ॥
प्रश्नाः शुभस्य कार्यस्य, निष्फलाः सकला अपि॥१११॥

અર્થ —જો પુછનારની દક્ષિણ નાસિકા પુર્ણ વહેતી હોય તો તે વખતે કરેલા શુભ કાર્યના સર્વે પ્રશ્નો નિષ્ફળ જાણવા (૧૧૧)

[ઇતિ પ્રશ્નોપયોગી સ્વરવિચાર]

यथा शक्ति ततश्चिन्त्य, तपो नित्यं तदग्रतः ॥
यस्य प्रभावतः सर्वाः, संभवन्ति विभूतयः॥११२॥

અર્થ —પૂજા કરી રહ્યા પછી પોતાની શક્તિ માફક કઇ તપસ્યા કરવી હોય તો તેનો જિનપ્રતિમા આગળ વિચાર કરવો કારણ, તપસ્યાના પ્રભાવથી સર્વ સંપદાઓની પ્રાપ્તિ થાય છે (૧૧૨)

धर्मशोकभयाहार—निद्राकामकलिक्रुधः ॥
यावन्मात्रा विधायन्ते, तावन्मात्रा भवन्त्यमी ॥११३॥

અર્થ —ધર્મ, શોક, ભય, આહાર, નિદ્રા, કામ કલહ અને ક્રોધ એ આઠે વસ્તુ જેટલી વધારીએ તેટલી વધે છે, અને જેટલી ઓછી કરીએ તેટલી ઓછી થાય છે (૧૧૩)

अपत्योत्पादने स्वामि— सेवाया पोष्यपोषणे ॥
धर्मकृत्ये च नो कर्तुं, युज्यन्ते प्रतिहस्तकाः ॥११४॥

અર્થ —આપણી સ્ત્રીને વિષે પુત્ર ઉત્પન્ન કરવો, આપ

ણા ધણીની સેવા કરવી, માબાપ બઇરાં છોકરાં વિગેરેનું પોષણ કરવું, ધર્મકૃત્ય કરવું, આ ચાર કાર્યોમાં પ્રતિહસ્તક (મુખત્યાર ચાલે નહીં. એ તો પોતેજ કરવાં યોગ્ય છે. (૧૧૪)

संवृताङ्गः सभाव्यायां, प्रायः पूर्वोत्तराननः ॥
स्थिरासने समासीत, संवृत्य चतुरोऽञ्चलान् ॥११५॥

અર્થઃ—ન્યાય સભામાં બેસવું હોય તો સારાં વસ્ત્ર પહેરવાં, અને સભામાં જઇ સ્થિર આસન ઉપર પ્રાયઃ પુર્વ તથા ઉત્તર દિશા તરફ મુખ કરી તથા વસ્ત્રનાં ચારે છેડાં સમેટી બેસવું. (૧૧૫)

अधमर्णारिचौराद्या, विग्रहोत्पातिनोऽपि च ॥
शून्याङ्गे स्वस्य कर्तव्याः, सुखलाभजयार्थिभिः॥११६॥

અર્થઃ—સુખ, લાભ તથા જયના અર્થી પુરૂષોએ ન્યાય સભામાં પોતાના લેણદારને, શત્રુને, ચોરને, પોતાની ઉપર તોહમત મૂકનારને તથા બીજા પણ એવા પુરૂષોને પોતાની શૂન્ય બાજુએ એટલે જે ભાગની નાસિકા વહેતી ન હોય, બંધ પડેલી હોય તે ભાગે રાખવા. (૧૧૬)

स्वजनस्वामिगुर्वाद्या, ये चान्ये हितचिन्तकाः ॥
जीवाङ्गे ते ध्रुवं कार्या, वाञ्छितार्थं विधित्सुभिः ॥११७॥

અર્થઃ—વાંછિત કાર્ય કરવા ધારનારા પુરૂષોએ પોતાના સ્વજનોને, સ્વામીને, ગુરૂને તથા બીજા પણ જે આપણું હિત વાંછતા હોય તે સર્વે મનુષ્યોને આપણી જે તરફની નાસિકા પૂર્ણ વહેતી હોય, તે તરફ રાખવા. (૧૧૭)

आचार्याणां यतीनां च, पण्डितानां कलाभृताम् ॥
समुत्थानः सदानन्दैः, कुलीनेन यथायथम् ॥११८॥

અર્થ —કુલીન મનુષ્યે આચાર્યોને, સાધુઓને, પંડિતોને તથા કલાવાન્ પુરૂષોને યોગ્યતા પ્રમાણે આદરમાન આપી રાજી રાખવા [૧૧૮]

विशेषज्ञानमधुना, कलिकालवशाद्गतम् ॥
नित्यमेव ततश्चिन्त्यं, बुधैश्चन्द्रबलादिकम् ॥११९॥

અર્થ —ભવિષ્યનું જે વિશેષ જ્ઞાન પુર્વે હતું તે હમણાં કળિકાળના જોરથી જતું રહ્યું છે માટે ડાહ્યા પુરૂષોએ ચંદ્રબળ, તારાબળ વિગેરેનો અવશ્ય હમેશાં વિચાર કરવો ૧૧૯

न निमित्तद्विषां क्षेमं, नायुर्वैद्यकविद्विषाम् ॥
न श्रीर्नीतिद्विषामेक-मपि धर्मद्विषां नहि ॥१२०॥

અર્થ —જ્યોતિષ, સામુદ્રિક વિગેરે આઠ પ્રકારના નિમિત્તશાસ્ત્રનો જે દ્વેષ કરે છે, તેનું કલ્યાણ થતું નથી, વૈદ્યકશાસ્ત્રનો દ્વેષ કરે તે દીર્ઘ આયુષ્ય પામતો નથી, નીતિશાસ્ત્રનો દ્વેષ કરે તે લક્ષ્મી પામતો નથી, અને ધર્મનો દ્વેષ કરે તે તો કલ્યાણ, દીર્ઘ આયુષ્ય અને લક્ષ્મી એ ત્રણેમાંથી એકે પણ પામતો નથી [૧૨૦]

निरन्नकुक्षिणा स्नानं निद्रा, वारिपानं च मैथुनम् ॥
एतानि विशुद्धानि, वर्जनीयानि यत्नतः ॥१२१॥

અર્થ —ખાધા વિના ખાલી પેટ હોય ત્યારે મનુષ્યોએ સ્નાન, નિદ્રા, જળપાન અને સ્ત્રીનું સેવન એટલા વાનાં ... યત્નથી વર્જવા ... [૧૨૧]

सुकृताय न तृप्यन्ति, सन्तः संततमप्यहो ॥
विस्मर्तव्या न धर्मस्य, समुपास्तिस्ततः क्वचित्॥१२२॥

અર્થઃ—સત્પુરૂષો હમેશાં સુકૃતનાં કામો કરે તોપણ તે કામો કરવામાં ધરાતા નથી. માટે ધર્મની સેવા કરવામાં કોઇ કાળે પણ ભૂલવું ન જોઇએ. [૧૨૨]

धर्मस्थाने ततो गम्यं, श्रीमद्भिः कृतभूषणैः ॥
प्राक्पुण्यं दृश्यतेऽन्येषां, स्वयं नव्यं ह्युपार्ज्यते ॥१२३॥

અર્થઃ—માટે સુખી પુરૂષોએ પણ સારાં વસ્ત્ર તથા આભૂષણ પહેરીને મંદિર, ઉપાશ્રય વિગેરે ધર્મને સ્થાનકે જવું. એમ કરવાથી પોતાનું પૂર્વભવનું પુણ્ય લક્ષ્મીના દર્શનથી બીજા લોકોની નજરે આવે છે, અને પોતે નવું પુણ્ય પણ ઉપાર્જન કરે છે. (૧૨૩)

नित्यं देवगुरुस्थाने, गन्तव्यं पूर्णपाणिभिः ॥
विधेयस्तत्र चापूर्व-ज्ञानाभ्यासो विवेकिभिः ॥१२४॥

અર્થઃ—હાથમાં ફળ, ફુલ, ચોખા વિગેરે કંઇપણ વસ્તુ લઇને હમેશાં મંદિરે અને ઉપાશ્રયે જવું. ઉપાશ્રયમાં ગુરૂ પાસે જે જ્ઞાન આવડતું ન હોય તે જ્ઞાનનો વિવેકી પુરૂષોએ અભ્યાસ કરવો. (૧૨૪)

आजन्म गुरुदेवाना-मर्चनं युज्यते सताम् ॥
रोगादिभिः पुनर्न स्या-द्यदि तन्नैव दोपकृत् ॥१२५॥

અર્થઃ—આ મનુષ્યભવ છે ત્યાં સુધી સત્પુરૂષોને દેવ પૂજા અને ગુરૂભક્તિ હમેશાં કરવી ઉચિત છે. પણ રોગાદિ કારણોથી તેમ ન બને તો કંઇ દોષ નથી. (૧૨૫)

कुप्रवृत्ति त्रिधा त्यक्त्वा, दत्त्वा तिस्रः प्रदक्षिणाः ॥
देवस्यार्चा त्रिधा कृत्वा, त ध्यायेत्सिद्धिदं सुधीः ॥१२६॥

અર્થ—ભવ્ય જીવે મનથી, વચનથી તથા કાયાથી કુપ્રવૃત્તિનો ત્યાગ કરી જિનપ્રતિમાને ત્રણ પ્રદક્ષિણા દેવી અને પછી જિનપ્રતિમાની મનવચનકાયાથી પૂજા કરવી અને સિદ્ધિદાયક અરિહંત ભગવાનનું ધ્યાન કરવું (૧૨૬)

मिथ्यादृष्टिभिरग्राह्यो, विश्वातिशयभासुरः ॥
निःससारविकारश्च, यो देवः स सता मतः ॥१२७॥

અર્થ—નાસ્તિક લોકોને જેનું જ્ઞાન થાય નહી, જે સર્વ અતિશયોથી વિરાજમાન છે અને સંસારરૂપ મળ જેને બીલકુલ છેજ નહિ એવા દેવ સત્પુરૂષોને માન્ય છે (૧૨૭)

(अथ प्रतिमाधिकार. ।)

उपविष्टस्य देवस्यो- र्ध्वस्य वा प्रतिमा भवेत् ॥
द्विविधापि युवावस्था, पर्यङ्कासनगादिमा ॥१२८॥

અર્થ—ભગવાનની બેઠી અથવા ઉભી બને પ્રકારની પ્રતિમા યૌવન અવસ્થામાંજ હોવી જોઇએ તેમાં પહેલી (બેઠી) પ્રતિમા પર્યંકાસનવાળી હોવી જોઇએ (૧૨૮)

वामो दक्षिणजङ्घोर्वो—रुपर्यङ्घ्रि करोऽपि च ॥
दक्षिणो वामजङ्घोर्वो—स्तत्पर्यङ्कासनं मतम् ॥१२९॥

અર્થ—પ્રથમ જમણી જાંઘ અને જમણા સાથળ ઉપર ડાબો પગ અને ડાબો હાથ સ્થાપન કરવો, પછી ડાબી

જાંઘ અને ડાબા સાથળ ઉપર જમણો પગ અને જમણો હાથ મૂકવો. એને જાણ પુરૂષો પર્યંકાસન કહે છે. (૧૨૯)

देवस्योर्ध्वस्य चार्चा स्या–ज्जानुलम्बिभुजद्वया ॥
श्रीवत्सोष्णीषयुक्ते द्वे, छत्रादिपरिवारिते ॥१३०॥

અર્થઃ—ભગવાનની પ્રતિમા ઉભી હોય તો તેના બે ભુજ ઢીંચણ સુધી લાંબા જોઇએ. બંને પ્રતિમાઓ શ્રીવત્સ, ઉષ્ણીષ, ત્રણ છત્ર ઇત્યાદિ પરિવાર, યુકત જોઇએ. (૧૩૦)

छत्रत्रयं च नासाग्रोत्तारि सर्वोत्तमं भवेत् ॥
नासाभालान्तयोर्मध्ये, कपोलवेधकृत्पुनः ॥१३१॥

અર્થઃ—નાસિકાના અગ્રભાગ ઉપર ત્રણ છત્રના અગ્ર ભાગની સમરેખા આવે તો તે ત્રણ છત્ર સર્વોત્તમ જાણવાં. તેમજ નાસિકા અને કપાળ એના મધ્યભાગમાં આડી રેખા થી કપોલનો વેધ થવો જોઇએ. (૧૩૧)

रक्षितव्यः परीवारे, दृष्टदां वर्णसंकरः ॥
न समाङ्गुलसंख्येष्टा, प्रतिमा मानकर्मणि ॥१३२॥

અર્થઃ—પ્રતિમાના પરિવારમાં પત્થરનો વર્ણસંકર થાય તેની સંભાળ રાખવી. તેમજ પ્રતિમાનું પ્રમાણ પણ બે, ચાર, છ, આઠ ઇત્યાદિ સમસંખ્યામાં હોય તો તે ઇષ્ટ ન જાણવું. (૧૩૨)

अन्योन्यजानुस्कन्धान्त–स्तिर्यक्सूत्रनिपातनात् ॥
केशान्ताञ्चलयोश्चान्तः, सूत्रैक्याच्चतुरस्रता ॥१३३॥

અર્થ—એકથી બીજા ઢીંચણ સુધી આડું એક સૂત્ર, જમણા ઢીંચણથી ડાબા ખભા સુધી બીજું સૂત્ર, ડાબા ઢીંચણથી જમણા ખભા સુધી ત્રીજું સૂત્ર અને નીચેથી મસ્તક સુધી ચોથું સૂત્ર એ ચારે સૂત્રોનું પ્રમાણ સરખું આવે તો પ્રતિમા સમચતુરસ્ત્ર કહેવાય (૧૩૩)

सूत्रं जानुद्वये तिर्यग्, दद्यान्नाभौ च कम्बिकाम् ॥
प्रतिमायाः प्रतिसरो, भवेदष्टादशाङ्गुलः ॥१३४॥

અર્થ—બે ઢીંચણની વચ્ચે આડું સૂત્ર દેવું, અને સૂત્રથી નાભિ સુધી એક કંબિકા રાખવી એ રીતે કરતા નાભિથી સૂત્ર સુધી અઢાર આગળનું પ્રમાણ જોઇએ (૧૩૪)

नवताल भवेद्रूप, तालश्च द्वादशाङ्गुलः ॥
अङ्गुलानि न कम्बाया', किं तु रूपस्य तस्य हि ॥१३५॥

અર્થ—પ્રતિમાનું ઊંચાઈનું પ્રમાણ નવતાલ જાણવું. બાર આગળનો એક તાલ થાય છે અહીં આગળા કંબાના ન લેતા પ્રતિમાના લેવા (૧૩૫)

ऊर्ध्वस्थप्रतिमामान-मष्टोत्तरशताङ्गतः ॥
आसीनप्रतिमामान, षट्पञ्चाशद्विभागतः ॥१३६॥

અર્થ—ઉભી પ્રતિમાનું પ્રમાણ એકસો આઠ અંશનું અને બેઠી પ્રતિમાનું છપ્પન અંશનું જાણવું (૧૩૬)

भालनासाहनुग्रीवा-हृन्नाभीगुह्यमूरुकौ ॥
जानुजङ्घाघ्रि चेत्येका-दशाङ्कस्थानकानि तु ॥१३७॥

અર્થ:—૧ કપાળ, ૨ નાસિકા, ૩ હડપચી, ૪ ગળું, ૫ હૃદય, ૬ નાભી, ૭ ગુહ્ય, ૮ સાથળ, ૯ ઢીંચણ, ૧૦ જંઘ (પેઢાં) અને ૧૧ પગ એ અંશનાં અગ્યાર સ્થાનક જાણવાં. (૧૩૭)

चतुःपञ्चचतुर्वह्नि–सूर्यार्कार्कजिनाव्ययः ॥
जिनाव्ययश्च मानाङ्का, ऊर्ध्वा ऊर्ध्वस्वरूपके ॥१३८॥

અર્થ:—કપાળે ચાર અંશ, નાસિકાએ પાંચ અંશ, હડપચીએ ચાર, કોટે ત્રણ, હૃદયે બાર, નાભીએ બાર, ગુહ્યને વિષે બાર, સાથળે ચોવીશ, ઢીંચણે ચાર, જાંઘને વિષે ચોવીશ અને પગે ચાર. એવા ઉભી પ્રતિમાનાં એકસો આઠ અંશ ઉંચાઇના જાણવાં. (૧૩૮)

भालनासाहनुग्रीवा–हृन्नाभीगुह्यजानुच ॥
अष्टावासीनबिम्बस्या–ङ्कानां स्थानानि पूर्ववत् ॥१३९॥

અર્થ:—કપાળે ચાર, નાસિકાએ પાંચ, હડપચીએ ચાર, કોટે ત્રણ, હૃદયે બાર, નાભીએ બાર, ગુહ્યને વિષે બાર અને ઢીંચણે ચાર. એવાં બેઠી મૂર્તિનાં આઠ સ્થાનક અને છપ્પન અંશ છે. (૧૩૯)

अतीताब्दशतं यत्स्या–च्च स्थापितमुत्तमैः ॥
तद्व्यङ्गमपि पूज्यं स्या–द्बिम्बं, तन्निःफलं न हि ॥१४०॥

અર્થ:—જેની પ્રતિષ્ઠા સો વર્ષ પહેલાં થઇ હોય, અથવા જે કોઇ ઉત્તમ આચાર્યે સ્થાપિત હોય, તે જિનપ્રતિમા વ્યંગ હોય તો પણ પૂજા કરવા યોગ્ય છેજ. કારણ કે, તેની પૂજા નિઃષ્ફલ થાય નહિ. (૧૪૦)

धातुलेपादिजं बिम्बं, व्यङ्ग संस्कारमर्हति ॥
काष्ठपाषाणनिष्पन्नं, संस्कारार्हं पुनर्नहि ॥१४१॥

અર્થ —ધાતુની, લેપની અથવા બીજી એવી પ્રતિમા કદાચિત્ ખંડિત થાય તો તે પાછી સમરાવી શકાય છે, પણ કાષ્ઠની અથવા પાષાણની પ્રતિમા હોય તો તે સમરાવવા લાયક નથી (૧૪૧)

नखाङ्गुलीबाहुनासा-ङ्घ्रीणां भङ्गेष्वनुक्रमात् ॥
शत्रुभिर्देशभङ्गश्च, बन्धः कुलधनक्षयः ॥१४२॥

અર્થ —પ્રતિમાના નખ ખંડિત થાય તો શત્રુથી ભય, આંગળી ખંડિત થાય તો દેશભંગ, બાહુ ખંડિત થાય તો બંધન, નાસિકા ખંડિત થાય તો કુળક્ષય અને પગ ખંડિત થાય તો ધનહાનિ એવા અનુક્રમે ફળ જાણવા (૧૪૨)

पीठयानपरीवार-ध्वंसे सति यथाक्रमम् ॥
स्थानवाहनभृत्यानां, नाशो भवति निश्चितम् ॥१४३॥

અર્થ —પ્રતિમાનું સિંહાસન ખંડિત થાય તો સ્થાનનો નાશ, બેસવાના વાહન ખંડિત થાય તો (હાથી, ઘોડા વિગેરે) વાહનનો નાશ અને પ્રતિમાનો પરિવાર ખંડિત થાય તો ચાકરનો નાશ જાણવો (૧૪૩)

आरभ्यैकाङ्गुलाद्बिम्बा-द्यावदेकादशाङ्गुलम् ॥
गृहेषु पूजयेद्बिम्ब-मूर्ध्वं प्रासादगं पुनः ॥१४४॥

અર્થ —એક આંગળથી અગ્યાર આંગળ સુધી ઉંચી પ્રતિમા ઘરમાં પૂજવી પણ તે કરતાં મોટી હોય તોતે મંદિરમાં રાખીનેજ પુજવી જોઇયે (૧૪૪)

प्रतिमा काष्ठलेपाश्म-दन्तचित्रायसां गृहे ॥
मानाधिका परीवार-रहिता नैव पूज्यते ॥१४५॥

અર્થઃ—કાઠની, લેપની, પત્થરની, દાંતની, ચિત્રામણની અથવા લોઢાની પ્રતિમા અથવા અગ્યાર આંગળ કરતાં વધારે હોય, કિંવા પરીવારરહિત હોય તો તે પણ ઘરમાં પુજાય નહીં. (૧૪૫)

रौद्रा निहन्ति कर्तार—मधिकाङ्गा तु शिल्पिनम् ॥
कृशा द्रव्यविनाशाय, दुर्भिक्षाय शशोदरा ॥१४६॥
वक्रनासातिदुःखाय, ह्रस्वाङ्गा क्षयकारिणी ॥
अनेत्रा नेत्रनाशाय, स्वल्पास्या भोगवर्जिता ॥१४७॥
जायते प्रतिमा हीनकटि-राचार्यघातिनी ॥
जङ्घाहीना भवेद्भ्रातृ-पुत्रमित्रविनाशिनी ॥१४८॥
पाणिपादविहीना तु, धनक्षयविनाशिनी ॥
चिरपर्युषिता या तु, नाद्र्तव्या यतस्ततः ॥१४९॥

અર્થઃ—જિન પ્રતિમા ઉગ્ર હોય તો તે પોતાના કરાવનારનો નાશ કરે છે, અધિક અંગવાળી હોય તો કારિગરનો નાશ કરે છે, કૃશ હોય તો દ્રવ્યનો નાશ થાય છે, અને સસલા જેવા ઉદરની હોય તો દુર્ભિક્ષને ઉત્પન્ન કરનારી થાય છે. વાંકા નાકની હોય તો ઘણું દુઃખ ઉપજાવે છે, ટુંકા અવયવની હોય તો ક્ષય કરનારી થાય છે, ચક્ષુ વિનાની હોય તો ચક્ષુનો નાશ કરે છે, સાંકડા મુખની હોય તો ભોગવર્જિત હોય છે, નાની કેડની કે કેડ વિનાની હોય તો આચાર્યનો નાશ કરે છે, નાની જાંઘની અથવા જંઘાર-

'હિત હોય તો ભાઈ, પુત્ર અને મિત્ર એમનો નાશ કરે છે, ટુકા હાય પગની અથવા હાય પગ વિનાની હોય તો ધનનો ક્ષય કરે છે, પૂજા વગર ઘણો કાળ એમને એમ પડેલી પ્રતિમા જ્યા ત્યાથી ગ્રહણ કરવી નહી (૧૪૬) (૧૪૭) (૧૪૮) (૧૪૯)

अर्थहृत्प्रतिमोत्ताना, चिन्ताहेतुरधोमुखी ॥
आधिप्रदा तिरश्चीना, नीचोच्चस्था विदेशदा ॥ १५०॥

અર્થ —પ્રતિમા ચત્તી હોય તો દ્રવ્યનો નાશ કરનારી થાય છે, નીચા મુખની હોય તો ચિંતા ઉત્પન્ન કરાવનારી જાણવી, વાંકી હોય તો મનમા દુ ખાદિ ઉપજાવે અને નીચી ઉંચી હોય તો પરદેશ મોકલનારી સમજવી (૧૫૦)

अन्यायद्रव्यनिष्पन्ना, परवास्तुदलोद्भवा ॥
हीनाधिकाङ्गी प्रतिमा, स्वपरोन्नतिनाशिनी ॥ १५१ ॥

અર્થ —પ્રતિમા જો અન્યાયથી ઉપાર્જેલુ દ્રવ્ય વાપરી કરેલી હોય, બીજા કોઈએ પરકામ સારૂ લાવેલા પત્થરની બનાવેલી હોય, અથવા ઓછા કિંવા અધિક અવયવની હોય તો તે (પ્રતિમા), પૂજાદિકથી થનારી પોતાની ઉન્નતિનો અને પ્રતિષ્ઠા કરનાર પાનીને કંઇ વસ્તુની પ્રાપ્તિથી થનારી ઉન્નતિનો પણ નાશ કરે છે (૧૫૧)

प्रासादतुर्यभागस्य, समाना प्रतिमा मता ॥
उत्तमायकृते सा तु, कार्यैकोनाधिकाङ्गुला ॥ १५२ ॥

અર્થ —પ્રાસાદના ચોથા ભાગ જેટલી પ્રતિમા કરવી. પણ ઉત્તમ લાભ પ્રાપ્તિને અર્થે તે ચોથા ભાગમા એક આગુળ ઓછી અથવા વધારે કરવી. (૧૫૨)

अथवा स्वदशांशेन, हीनस्याप्यधिकस्य वा ॥
कार्या प्रासादपादस्य, शिल्पिभिः प्रतिमा समा ॥१५३॥

અર્થઃ—અથવા પ્રાસાદના ચોથા ભાગનાં દશ ભાગ કરવાં, અને તે દશિયો એક ભાગ પ્રાસાદના ચોથા ભાગમાં ઓછો કરી અથવા તેમાં એક દશિયો ભાગ ઉમેરી તેટલા પ્રમાણની પ્રતિમા કારિગરોએ કરવી. (૧૫૩)

सर्वेषामपि धातूनां, रत्नस्फटिकयोरपि ॥
प्रवालस्य च बिम्बेषु, चैत्यमानं यदृच्छया ॥ १५४ ॥

અર્થઃ—સર્વે ધાતુઓની, રત્નની, સ્ફટિકની અથવા પ્રવાલની પ્રતિમા હોય તો ત્યાં પ્રતિમાના પ્રમાણ ઉપર પ્રાસાદનું પ્રમાણ ન લેતાં ઇચ્છા માફક લેવું. (૧૫૪)

प्रासादगर्भगेहार्द्धे, भित्तितः पञ्चधा कृते ॥
यक्षाद्याः प्रथमे भागे, देव्यः सर्वा द्वितीयके ॥ १५५ ॥
जिनार्कस्कन्दकृष्णानां, प्रतिमाः स्युस्तृतीयके ॥
ब्रह्मा तु तुर्यभागे स्या–ल्लिङ्गमीशस्य पञ्चमे ॥ १५६ ॥

અર્થઃ—ગભારાના અર્ધભાગના પાંચ ભાગ ભિત્તિથી કરવાં. તેમાં પ્રથમ ભાગમાં યક્ષાદિકની સ્થાપના કરવી, બીજા ભાગમાં સર્વે દેવીઓની સ્થાપના કરવી, ત્રીજા ભાગમાં જિન, સૂર્ય, કાર્તિકેય તથા કૃષ્ણ એમની પ્રતિમા સ્થાપન કરવી, ચોથા ભાગમાં બ્રહ્માની પ્રતિમા અને પાંચમા ભાગમાં શિવલિંગની પ્રતિમા રાખવી. (૧૫૫) (૧૫૬)

ऊर्ध्वदृग्द्रव्यनाशाय, तिर्यग्दृग्भोगहानये ॥
दुःखदा स्तब्धदृष्टिश्चा–धोमुखी कुलनाशिनी ॥ १५७ ॥

અર્થ—પ્રતિમાની દૃષ્ટી ઉંચી હોય તો દ્રવ્યનો નાશ કરે, તિરછી હોય તો ભોગનો નાશ કરે, સ્તબ્ધ દૃષ્ટિ હોય તો દુખ આપે અને નીચી દૃષ્ટિ હોય તો કુળનો નાશ કરે (૧૫૭)

द्वारशाखाष्टभिर्भागै—रधःपक्षाद्विभीयते ॥
मुक्त्वाष्टमविभाग च, यो भागः सप्तमः पुनः ॥१५८॥
तस्यापि सप्तमे भागे, गजांशस्तत्र संभवेत् ॥
प्रासादे प्रतिमादृष्टि—र्नियोज्या तत्र शिल्पिभिः ॥१५९॥

અર્થ—બારણા દ્વારની શાખના નીચેથી આઠ ભાગ કરવા. તેમા જે આઠમો ભાગ બધા કરતા ઉપર આવેલો તે મૂકી દેવો અને તેની નીચેનો જે સાતમો ભાગ તેના પાછા નીચેથી સાત ભાગ કરવા તથા તે સાતમાના છ ભાગ મૂકી દેવા, અને ઉપરનો જે સાતમો ભાગ રહ્યો, તેમા ગજાંશ (અષ્ટમાંશ) સંભવે છે તે ગજાંશને વિષે કારીગરોએ પ્રાસાદની અંદર રહેલી પ્રતિમાની દૃષ્ટિ રાખવી (૫૮) (૧૫૯)

(अथ भूमिपरीक्षा ।)

अदृप्ता मूग्दिग्मूढा, चतुरस्रा शुभाकृतिः ॥
त्र्यहर्बीजोद्गमा धन्या, पूर्वेशानोत्तरप्लवा ॥१६०॥

અર્થ—જે ઠેકાણે મંદિર બાંધવુ હોય તે ભૂમિ ગોળ આકારની તથા દિશાનો ભ્રમ ઉત્પન્ન કરનારી નહી જોઇએ પણ ચતુષ્કાણ (ચોખંડી) સારા આકારની, વાવેલા ધાન્યને ત્રણ દિવસમા ઉગાડનારી અને પુર્વ, ઉત્તર અથવા ઈશાન દિશા તરફ ઉતરતી એવી હોય તો તે શ્રેષ્ઠ જાણવી (૧૬૦)

व्याधिं वल्मीकिनी नैःस्व्यं, सुषिरा स्फुटिता मृतिम् ॥
दत्ते भूः शल्ययुग्दुःखं, शल्यज्ञानमथोच्यते ॥१६१॥

અર્થઃ—રાફડા (બાંબલા) વાળી ભૂમિ વ્યાધિ ઉપન્ન કરે છે, પોલાણવાળી હોય તો દરિદ્રપણું ઉપજાવે, ફાટેલી હોય તો મરણ દેનારી છે, અને શલ્યવાળી હોય તો દુઃખ આપે છે. માટે ભૂમિની અંદર રહેલું શલ્ય શી રીતે જાણવું તે કહેછે. (૧૬૧)

(अथ शल्यविचारः ।)

वकवतैहसपयान्, क्रमाद्वर्णानिमान्नव ॥
नवकोष्ठीकृते भूमि—भागे प्राच्यादितो लिखेत् ॥१६२॥

અર્થઃ—ભૂમિ ઉપર એક ચતુષ્કોણ શલ્યોદ્ધારયંત્ર [ચોખંડું] યંત્ર લખવું. તેમાં નવ કોઠા કરવા. ચતુષ્કોણની બાજુ ઉપર પૂર્વથી માંડી ઈશાન સુધી આઠે દિશાઓ લખવી. અને વચલા નવ કોઠામાં અનુક્રમે બ, ક, વ, ત, એ, હ, સ, પ અને ય આ નવ અક્ષર લખવાં (૧૬૨)

ઈ.		પૂર્વ.		અ.
	પ	બ	ક	
ઉ.	સ	ય	વ	દ.
	હ	ઓ	ત	
વા		પ.		નૈ.

प्रश्ने वः स्याद्यदि प्राच्यां, नरशल्यं तदादिशेत् ॥
सार्धहस्तप्रमाणेन, तच्च मानुषमृत्यवे ॥ १६३ ॥

અર્થઃ—પ્રશ્નમાં જો 'બ' આવે, તો કહેવું કે પુર્વ દિશામાં ભૂમિની અંદર દોઢ હાથ નીચે મનુષ્ય શલ્ય (માણસનાં હાડકાં વિગેરે) છે, તેથી મનુષ્યનું મરણ નીપજે (૧૬૩)

अग्नेर्दिशि तु कः प्रश्ने, खरशल्यं करद्वये ॥
राजदण्डो भवेत्तस्मिन्, भयं नैव निवर्तते ॥१६४॥

અર્થ —પ્રશ્નમા જો 'ક' આવે તો અગ્નિકોણમા ભૂમિની અંદર બે હાથ નીચે ગર્દભશલ્ય (ગધેડાના હાડકા વિગેરે) છે, એમ જાણવુ તે શલ્યથી રાજદંડ થાય, અને ભય કદીપણ દૂર થાય નહી (૧૯૪)

याम्याया दिशि वः प्रश्ने, नरशल्यमधो भवेत् ॥
तद्गृहस्वामिनो मृत्युं, करोत्याकटिमंम्थितम् ॥१९५॥

અર્થ —પ્રશ્નમા જો 'વ' આવે તો દક્ષિણ દિશામા ભૂમિની અંદર કેડ જેટલુ ઉંડુ મનુષ્યશલ્ય (માણસના હાડકા વિગેરે) છે, એમ સમજવુ તેથી ગૃહસ્વામિનુ (ઘરધણીનુ) મરણ થાય (૧૯૫)

नैऋत्या दिशि तः प्रश्ने, सार्धहस्तादधस्तने ॥
शुनोऽस्थि जायते तत्र, डिम्भानां जनयेन्मृतिम् ॥१९६॥

અર્થ —પ્રશ્નમા જો 'ત' આવે, તો નૈઋત્ય દિશામા ભૂમિની અંદર દોઢ હાથ નીચે શ્વશલ્ય (કુતરાના હાડકા વિગેરે) છે એમ જાણવુ તે શલ્ય બાળકોનુ મરણ ઉપજાવે. (૧૯૬)

ए प्रश्ने पश्चिमायां च, शिशोः शल्यं प्रजायते ॥
सार्धहस्ते प्रवासाय, सदनस्वामिनः पुनः ॥१९७॥

અર્થ —પ્રશ્નમા જો 'એ' આવે, તો પશ્ચિમ દિશામા ભૂમિની અંદર દોઢ હાથ નીચે બાલશલ્ય [બાળકના હાડકા વિગેરે] છે, એમ સમજવુ. તેથી ગૃહસ્વામી [ઘર ધણી] પરદેશ જતો રહે. (૧૯૭)

वायव्यां दिशि हः प्रश्ने, नराङ्गाराश्चतुःकरे ॥
कुर्वन्ति मित्रनाशं ते, दुःस्वप्नस्य प्रदर्शनात् ॥ १६८ ॥

અર્થઃ— પ્રશ્નમાં જો 'હ' આવે તો વાયવ્ય દિશામાં ભૂમિની અંદર ચાર હાથ નીચે માણસના અંગારા છે, એમ જાણવું. તેથી માઠાં સ્વપ્ન જોવામાં આવ્યાથી મિત્રનો નાશ થાય. [૧૬૮]

उदीच्यां दिशि सः प्रश्ने, विप्रशल्यं कटेरधः ॥
तच्छीघ्रं निर्धनत्वाय, प्रायो धनवतोऽप्यदः ॥१६९॥

અર્થઃ— જો પ્રશ્નમાં 'સ' આવે, તો ઉત્તર દિશામાં ભૂમિની અંદર કેડ જેટલું ઉંડું વિપ્રશલ્ય (બ્રાહ્મણનાં હાડકાં) છે એમ જાણવું. તેથી ગૃહસ્વામિ ધનવાન્ હોય તોપણ પ્રાયે નિર્ધન થઇ જાય. (૧૬૯)

ऐशान्यां दिशि पः प्रश्ने गोशल्यं सार्धहस्ततः ॥
तद्गोधनस्य नाशाय, जायते गृहमेधिनाम् ॥१७०॥

અર્થઃ—જો પ્રશ્નમાં 'પ' આવે, તો ઇશાન દિશામાં ભૂમિની અંદર દોડ હાથ નીચે ગોશલ્ય [ગાયનાં હાડકાં વિગેરે] છે, એમ જાણવું. તેથી ગૃહસ્વામિના ગોધનનો (ગાય વિગેરેનો) નાશ થાય. (૧૭૦)

मध्यकोष्ठे च यः प्रश्ने, वक्षोमात्रे तदा ह्यधः ॥
केशाः कपालं मर्त्यस्य, भस्मलोहे च मृत्यवे ॥१७१॥

અર્થઃ--વચલા કોઠામાં 'ય' છે તે જો પ્રશ્નમાં આવે તો ભૂમિના મધ્ય ભાગમાં છાતી જેટલા ઉંડાણમાં માણસ

ના કેશ (વાળ), કપાળ (ખોપરી), ભસ્મ તથા લોહુ છે એમ જાણવુ તેથી મરણ નીપજે (૧૭૧)

श्वभ्रस्थितामसृत्पात्रे, कृते दीपचतुष्टये ॥
यद्दिग्दीपश्चिरं दीप्रः सा तद्वर्णस्य भूः शुभा ॥१७२॥

અર્થ —ખાણની કાચી માટીનુ કોડિયુ કરી તેમા ચાર દિવા કરવા જે દિશાનો દિવો ઘણીવાર પ્રકાશિત રહે, તે ભૂમિ તે વર્ણને સારી જાણવી (૧૭૨)

सूत्रच्छेदे च मृत्युः स्या—त्कीले चावाङ्मुखे रुजा ।
स्मृतिर्नश्यति कुम्भस्य, पुनः पतनभङ्गयोः ॥१७३॥

અર્થ —ભૂમિ માપતા સૂત્ર તૂટી જાય તો ગૃહસ્વામિ મરી જાય, ખીલો ઠોકતા જો વાકો વળે તો રોગ થાય, અને ઘરો પડે, અથવા ભાગે તો સ્મૃતિનો નાશ થાય [૧૭૩]

प्रासादगर्गापूरोऽम्बु—ग्रावकर्करकागतः ॥
विधिना तत्र सौवर्णीं वास्तुमूर्तिं नियोजयेत् ॥१७४॥

અર્થ —ઘરની ખાડ પૂરતા જયા પાણી, પત્થર અને કાકરા નીકળે ત્યા સોનાની વાસ્તુ દેવતાની મૂર્તિ વિધિથી સ્થાપન કરવી (૧૭૪)

उदयस्त्रिगुणः प्रोक्तः प्रासादस्य स्वमानतः ॥
प्रासादोच्छ्रयविस्तारा जगती तस्य चोत्तमा ॥१७५॥

અર્થ—સ્વકીય પ્રમાણથી પ્રાસાદનો ઉદય [ઉંચાઈ] ત્રણ ગણો કરવો અને પ્રાસાદની જેટલી ઉચાઇ હોય તેટલી વિસ્તારવાળી જગતી (કોટ) કરવી એ શ્રેષ્ઠ છે [૧૭૫]

मूलकोष्ठे चतुःकोणे वहिर्यः कुम्भकः स्थिरः ॥
प्रासादहस्तसंख्यानं तस्य कोणद्वयात्पुनः ॥१७६॥

અર્થઃ—ચોખંડો જે મૂળ કોઠો તેની બાહાર જે સ્થિર કુંભી હોય છે, તેના બે ખુણાથી પ્રાસાદના હસ્તની સંખ્યા જાણવી. [૧૭૬]

यः कोणो मूलरेखाया विस्तरस्तत्पृथुत्वतः ॥
कलशे विस्तरादैर्घ्यं पादोनं द्विगुणं पुनः ॥१७७॥

અર્થઃ—મૂળ રેખાના ખૂણામાં જેટલી પહોળાઇ હોય તેને અનુસરી કળશને વિષે પહોળાઈ લેવી, અને પહોળાઇથી લંબાઇ પોણા બે ગણી જાણવી.

प्रासादे ध्वजानिर्मुक्ते पूजाहोमजपादिकम् ॥
सर्वं विलुप्यते यस्मा-त्तस्मात्कार्यो ध्वजोच्छ्रयः ॥१७८॥
एकाहमपि प्रासादं ध्वजहीनं न धारयेत् ॥

અર્થઃ—પ્રાસાદ ઉપર ધ્વજા ચઢાવેલી ન હોય તો ત્યાં કરેલી પૂજા, હોમ, જપ વિગેરે સર્વ નિષ્ફળ થાય છે, માટે ધ્વજા અવશ્ય ચઢાવવી. પ્રાસાદ એક દિવસ પણ ધ્વજારહિત રાખવો નહીં. [૧૭૮]

दण्डः प्रकाशे प्रासादे प्रासादकरसंख्यया ॥
सान्धकारे पुनः कार्यो मध्यप्रासादमानतः ॥१७९॥

અર્થઃ—પ્રકાશિત પ્રાસાદ ઉપર ધ્વજાનો દંડ પ્રાસાદની હસ્તસંખ્યાને અનુસારે કરવો. અને અંધકારસહિત પ્રાસાદ ઉપર મધ્યપ્રાસાદના પ્રમાણથી ધ્વજાનો દંડ કરવો. [૧૭૯]

समाना शुकनासस्य घण्टिका गूढमण्डपे ॥
पन्तमानैव रङ्गाख्ये मण्डपे च वलानके ॥१८०॥

અર્થ—ગભારામા, રગ મડપમા, તથા વલાનકમા ઘટાનું પ્રમાણ શુકનાસા સમાન જાણવુ (૧૮૦)

गृहे देवगृहे वापि, जीर्णे चोद्धर्तुमीप्सिते ॥
मागद्वार ममाण च, वास्तुत्पादोऽन्यथाकृते ॥१८१॥

અર્થ—જીર્ણ થએલા ઘરનો અથવા દેવમદિરનો ઉદ્ધાર કરતા તેનુ દ્વાર તથા પ્રમાણ જો પહેલા માફક જ રાખ્યુ હોય તો નવી વાસ્તુ કરવાની જરૂર નથી, અને જો ફેરફાર કર્યો હોય તો નવી વાસ્તુ કરવી (૧૮૧)

स्तम्भपट्टादिवेधस्तु, यः मोक्तो गृहशाल्यके ॥
मासादेष्वपि स ज्ञेयः, संप्रदायाच्च शिल्पिनाम् ॥१८२॥

અર્થ—સ્તભ તથા પાટિયા વિગેરેનુ પ્રમાણ વાસ્તુ શાસ્ત્રમા જે કહ્યુ છે, તેજ મદિરના કામમા પણ કારીગરોના સપ્રદાયથી જાણવુ (૧૮૨)

(अथ प्रतिमार्थं पाषाणादिपरीक्षा ।)

निर्मलेनारनालेन, पिष्टया श्रीफलत्वचा ॥
विलिप्तेऽश्मनि काष्ठे वा, मकट मण्डल भवेत् ॥१८३॥

અર્થ—નિર્મળ આછણમા પીસેલી બિલીની છાલનો લાકડા ઉપર અથવા પત્થર ઉપર લેપ કરવાથી પ્રકટ મડળ (માટલ) થાય છે (૧૮૩)

मधुभस्मगुडव्योम-कपोतसदृशप्रभैः ॥
माञ्जिष्ठैररुणैः पीतैः, कपिलैः श्यामलैरपि ॥ १८४ ॥
चित्रैश्च मण्डलैरेभि-रन्तर्ज्ञेया यथाक्रमम् ॥
खद्योतो वालुका रक्त-भेकोऽम्बुगृहगोधिका ॥ १८५ ॥
दर्दुरः कृकलासश्च, गोधाखुसर्पवृश्चिकाः ॥
संतानविभवप्राण-राज्योच्छेदश्च तत्फलम् ॥ १८६ ॥

અર્થઃ—જેની પ્રતિમા કરવી હોય તે કાષ્ઠ ઉપર અથવા પાષાણ ઉપર પુર્વે કહ્યા પ્રમાણે લેપ કરવો. તે લેપથી જો મધ જેવું મંડલ પડે તો અંદર ખદ્યોત (ખજુઓ), રાખ સરખું પડે તો રેતી, ગોળ સરખું પડે તો રાતો દેડકો, આકાશ સરખા રંગનું પડે તો પાણી, કપોત સરખા રંગનું પડે તો ગિરોળી, મજીઠ સરખા રંગનું પડે તો દેડકો, રાતું પડે તો કાચંડો, પીળું પડે ગોધાખુ, તો કપિલવર્ણ પડે તો ઉંદર, કૃષ્ણવર્ણ પડે તો સર્પ અને ચિત્રવર્ણ પડે તો વીંછી અંદર છે એમ જાણવું. તેથી સંતતિ, સંપદા, પ્રાણ અને રાજ્ય એનો નાશ થાય છે. (૧૮૪) (૧૮૫) ૧૮૬)

कीलिकाच्छिद्रसुषिर-त्रसजालकसंधयः ॥
मण्डलानि च गारश्च, महादूषणहेतवे ॥ १८७ ॥

અર્થઃ—પ્રતિમાના કાષ્ઠમાં અથવા પાષાણમાં ખીલો, છિદ્ર, પોલાણ, જીવનાં જાળાં, સાંધા, મંડલાકાર રેખા તથા ગાર હોય તો મોટો દોષ સમજવો. (૧૮૭)

प्रतिमाया द्वरका, भेरेशुश्च क्व चन ॥
सदृग्वर्णा न दुष्यन्ति, वर्णान्यत्वेऽतिदूषिताः ॥ १८८ ॥

અર્થ —પ્રતિમાના કાષ્ઠમા અથવા પાષાણમા જે કોઇ પાણ રીતે લીસોટા (રેષા) પડેલા નજરે આવે તો તે જો મૂળ વસ્તુના જેવા રંગના હોય તો કંઈ દોષ નથી, અને જો મૂળ વસ્તુથી જુદા રંગના હોય તો દોષ જાણવો (૧૮૮)

(ઇતિ મન્દિર પ્રતિમાદ્યધિકાર.)

कृतदेवादिकृत्यः स-न्नुपदेश नत्र शुभम् ॥
श्रोतुकामो गुरोः पार्श्वे, गच्छेदच्छाशयः पुमान ॥१८९॥

અર્થ —ભવ્ય જીવે પૂર્વ કહેલી રીત પ્રમાણે ન્હાઇ ધોઇ તથા પૂજા કરી રહ્યા પછી મનમા શુભ પરિણામ રાખી નવો મંગલકારી ઉપદેશ સાભળવા માટે ગુરૂ મહારાજ પાસે (ઉપાસરે) જવુ, (૧૮૯)

कदाचित्कार्यतस्तस्य, पार्श्वमेति यदा गुरुः ॥
पर्युपास्तिस्तदा कर्तु-मेवं शिष्यस्य युज्यते ॥ १९० ॥

અર્થ —જ્યારે પોતાના કંઈ કામ માટે ગુરૂ શિષ્યની (શ્રાવકની) પાસે આવે, ત્યારે શિષ્યે ગુરૂની ઉપાસના (આદરમાન વિગેરે) એવી રીતે કરવી જોઇએ (૧૯૦)

अभ्युत्तिष्ठेद्गुरौ दृष्टे-ऽभिगच्छेत्त तदागमे ॥
उतमाङ्गेऽञ्जलिं न्यस्य, ढौकयत्स्वयमासनम् ॥१९१॥

અર્થ —ગુરૂને જોતાજ ઉભા થવુ, સામા જવુ, નમસ્કાર અંજલી કરવી, અને પોતે તે [illegible] આસન [illegible] આપવુ (૧૯૧

नमस्कुर्यात्ततो भक्त्या, पर्युपासीत चादरात् ॥
तद्याने त्वनुयायाच्च, क्रमोऽयं गुरुसेवने ॥ १९२ ॥

અર્થઃ—પછી ગુરૂ મહારાજને ભક્તિથી નમસ્કાર કરવો, આદરથી તેમની સેવા (પગ ચંપી વિગેરે) કરવી, અને તે જવા નીકળે ત્યારે તેમની પછાડી જવું. ગુરૂની સેવા કરવાનો એ ક્રમ જાણવો. (૧૯૨)

शुद्धप्ररूपको ज्ञानी, क्रियाभाक्तुपकारकः ॥
धर्मविच्छेदरक्षी च, गुरुर्गौरवमर्हति ॥ १९३ ॥

અર્થઃ—શુદ્ધ પ્રરૂપણા કરનાર, જ્ઞાની, ક્રિયાપાત્ર, ભવ્ય જીવ ઉપર ઉપકાર કરનારા અને ધર્મનો વિચ્છેદ થતો હોય તો તેનું રક્ષણ કરનારા એવા ગુરૂ પૂજવા લાયક છે. (૧૯૩)

विचारावसरे मौनी, लिप्सुर्लिप्सुश्च केवलम् ॥
सर्वत्र चाटुवादी च, गुरुर्मुक्तिपुरार्गला ॥ १९४ ॥

અર્થઃ—કોઇ પૂછે ત્યારે વિચાર પૂર્વક કહેવાને બદલે મૌન કરી બેસનાર, કેવળ ધનનો લોભી, અને પાખંડી એવો ગુરૂ મુક્તિપુરના દરવાજાની અર્ગલા (ભૂંગળ)—સમાન જાણવો. (૧૯૪)

इत्थं मया ब्राह्ममुहूर्तमादौ, कृत्वाभ्यधायि प्रहरस्य कृत्यम् ॥
यस्य प्रकाशेन खेरिवोच्चै—र्भवेदवश्यं कमलावबोधः ॥ १९५ ॥

इति श्रीजिनदत्तसूरि विरचिते विवेकविलासे दिनचर्यायां
प्रथम उल्लासः ॥ १ ॥

અર્થઃ—એવી રીતે બ્રાહ્મ મુહૂર્તથી માંડીને પહેલા પ્રહર

સૂધીનુ શ્રાવક કૃત્ય મે કહ્યુ જેમ રવિના પ્રકાશથી કમલનો બોધ (વિકાસ) થાય છે, તેમ આ શ્રાવક કૃત્યના પ્રકાશથી (જાણવાની તથા આચરવાથી) કમલાનો (લક્ષ્મીનો) બોધ (ઉદય) થાય (૧૯૫)

ઇતિ શ્રી વિવેક વિલાસની ગુર્જરભાષાનો પ્રથમ ઉલ્લાસ સંપૂર્ણ ॥ ૧ ॥

(अथ द्वितीय उल्लासः ।)

द्वितीया वर्जिता स्नाने, दशमी चाष्टमी तथा ॥
त्रयोदशीचतुर्दश्यो, षष्ठी पञ्चदशी कुहूः ॥१॥

અર્થ—દ્વિતીયા (બીજ), દશમી (દશમ), અષ્ટમી (આઠમ) ત્રયોદશી (તેરસ), ચતુર્દશી (ચૌદશ), ષષ્ઠી (છઠ) પૂર્ણિમા (પૂનમ) અને અમાવાસ્યા (અમાસ) એટલી તિથિઓ ન્હાવાને વિષે વર્જવી (૧)

आदित्यादिषु वारेषु, तापः कान्तिर्मृतिर्धनम् ॥
दारिद्र्यं दुर्भगत्वं च, कामाप्तिः स्नानतः क्रमात् ॥२॥

અર્થ—રવિ, સોમ, મંગળ, બુધ, ગુરૂ, શુક્ર અને શનિ એ સાતે વારને વિષે ન્હાઇએ તો અનુક્રમે તાપ, કાંતિ, મરણ, દ્રવ્ય, દરિદ્રીપણું, દુર્ભાગીપણું અને ઇચ્છિત વસ્તુ એમની પ્રાપ્તિ થાય (૨)

नग्नार्तप्रोपिताप्याताः, सुचेलो मुक्तभूषितः ॥
नैव स्नायादनुव्रज्य, बन्धून्कृत्वा च मङ्गलम् ॥३॥

અર્થઃ—નગ્ન, રોગી, મુસાફરી કરીને આવેલો, સારાં વસ્ત્ર તથા અલંકાર પહેરેલો, ભોજન કરી રહેલો, પોતાના સગાં વ્હાલાને વળાવીને આવેલો અને કંઇપણ મંગલિક કાર્ય કરી રહેલો એટલા લોકોએ ન્હાવું નહીં. (૩)

न पर्वसु न तीर्थेषु, न संक्रान्तौ न वैधृतौ ॥
न विष्टौ न व्यतीपाते, तैलाभ्यङ्गः प्रशस्यते ॥४॥

અર્થઃ—પર્વને દિવસે, તીર્થને વિષે, સંક્રાંતિને દિવસે, તથા વૈધૃતિ, વિષ્ટિ અને વ્યતીપાત એ ત્રણે દિવસોને વિષે તૈલાભ્યંગ (તેલનું શરીરે મર્દન) ન કરવો. (૪)

स्नानं शुद्धाम्भसा यत्त—न्न कदाचिन्निषिध्यते ॥
तिथिवारादिकं यत्तु, तैलाभ्यङ्गे तदीक्ष्यते ॥५॥

અર્થઃ— શુદ્ધ જળે ન્હાવાની કોઇ પણ દિવસે મનાઈ નથી. તિથિ વાર ઇત્યાદિક જે કહ્યું તે તૈલાભ્યંગ (શરીરે તેલનું મર્દન) કરવો હોય તો જોવું. (૫)

गर्भाशयामृतुमतीं, गत्वा स्नायात्परेऽहनि ॥
अनृतुस्त्रीगमे शौचं, मूत्रोत्सर्गवदाचरेत् ॥६॥

અર્થઃ—ગર્ભિણી અથવા ઋતુમતી સ્ત્રીને વિષે રાત્રે ગમન કર્યું હોય તો બીજે દિવસે ન્હાવું. અને ઋતુકાલ નહીં છતાં સ્ત્રીસંગ કર્યો હોય તો મૂત્ર કર્યા પછી જેમ શુદ્ધિ કરવામાં આવે છે તેવી રીતે કરવી. (૬)

रात्रौ स्नानं न शास्त्रीयं, केचिदिच्छन्ति पर्वणि ॥
तीर्थे स्नात्वान्यतीर्थाना, कुर्यान्निन्दास्तुती न च ॥७॥

અર્થ—રાત્રે ન્હાવુ એ શાસ્ત્રમા કહ્યુ નથી પણ કેટલાક લોકો પર્વ હોય તો રાત્રે પણ ન્હાવુ એમ કહે છે એક તીર્થમા ન્હાઇને ત્યા બીજા તીર્થની સ્તુતિ અથવા નિંદા ન કરવી (૭)

अज्ञाते दुःप्रवेशे च, चण्डालैर्दूषितेऽथवा ॥
तरुच्छन्ने सशैवाले, न स्नानं युज्यते जले ॥८॥

અર્થ—અજાણ્યુ, વિષમ માર્ગવાળુ, ચડાલોએ દૂષિત કરેલુ, વૃક્ષોથી ઢકાયલુ અને શેવાળવાળુ એવા પાણીમા ન્હાવુ એ ઠીક નથી (૮)

स्नानं कृत्वा जलैः शीतैर्भोक्तुमुष्णं न युज्यते ॥
जलैरुष्णैस्तथा शीतं, तैलाभ्यङ्गश्च सर्वदा ॥९॥

અર્થ—ઠડા પાણીથી ન્હાયા પછી તુરત ઉષ્ણ ગરમ ભોજન ન કરવુ અને ઉષ્ણ જળથી ન્હાયા પછી તુરત શીતળ ભોજન ન કરવુ તેમજ ગમે તેવા પાણીથી ન્હાયા પછી તૈલાભ્યગ (તેલનુ મર્દન) તો કોઇ કાળે પણ ન કરવો (૯)

स्नातस्य विकृता छाया, दन्तघर्षः परस्परम् ॥
देहे च शवगन्धश्चे-न्मृत्युस्तद्दिवसत्रये ॥१०॥

અર્થ—ન્હાએલા પુરૂપની છાયા જો છિન્ન ભિન્ન અથવા ઉલટી દેખાય દાત એક બીજા જોડે ઘસાય, તથા શરીરને મડદા જેવી દુર્ગંધ આવે તો ત્રણ દિનમા મરણ જાણવુ (૧૦)

स्नातमात्रस्य चेच्छोषो, वक्षस्यंघ्रिद्वयेऽपि च ॥
षष्ठे दिने तदा ज्ञेयं, पञ्चत्वं नात्र संशयः ॥ ११ ॥

અર્થઃ—ન્હાઇ રહ્યા પછી તુરતજ જો છાતી અને બે પગ સુકાઇ જાય તો છઠે દિવસે મરણ થાય એમાં સંશય નથી. (૧૧)

न शुक्रसोमयोः कार्यं, स्नानं रोगविमुक्तये ॥
पौष्णाश्लेषाध्रुवस्वाति-पुनर्वसुमघासु च ॥ १२ ॥

અર્થઃ—શુક્રવારે અથવા સોમવારે તથા રેવતી, આશ્લેષા રોહિણી, ત્રણ ઉત્તરા, સ્વાતિ, પુનર્વસુ અને મઘા એટલા નક્ષત્રને વિષે રોગવિમુક્તિને અર્થે ન્હાવું નહીં (૧૨)

रिक्ता तिथिः कुजार्कौ वा, क्षीणेन्दुर्लग्नमस्थिरम् ॥
द्वित्र्यष्टैकादशाः क्रूरा, नैरुज्यस्नानसिद्धिदाः ॥ १३ ॥

અર્થઃ—રિક્તા તિથિ (ચોથ, નવમ અને ચોદસ,) મંગળવાર અથવા રવિવાર, ક્ષીણ ચંદ્રમા, અસ્થિર (ચલ) લગ્ન, અને બીજે, ત્રીજે, આઠમે તથા અગ્યારમે સ્થાને ક્રૂર (પાપ) ગ્રહ એવો યોગ હોય તો રોગવિમુક્તિને અર્થે ન્હાવું ફળદાયક છે. (૧૩)

रते वान्ते चिताधूम-स्पर्शे दुःस्वप्नदर्शने ॥
क्षौरकर्मण्यपि स्नाया-द्गालितैः शुद्धवारिभिः ॥ १४ ॥

અર્થઃ—સ્ત્રીસંગ કરે, ઉલટી થાય, (સ્મશાનમાં) ચિતાનો ધૂમાડો લાગે, માઠું સ્વપ્ન આવે, અને ક્ષૌર કર્મ કરાવે તો ગળેલા શુદ્ધ જળથી ન્હાવું. (૧૪)

(अथ क्षौरकर्मविचारः ।)

चतुर्थी नवमी षष्ठी, चतुर्दश्यष्टमी तथा ॥
अमावास्या च दैवज्ञैः, क्षौरकर्माणि नेष्यते ॥१५॥

અર્થ—ચતુર્થી (ચોથ), નવમી (નવમ), ષષ્ઠી (છઠ), ચતુર્દશી (ચૌદશ), અષ્ટમી (આઠમ) અને અમાવાસ્યા (અમાસ) એ છ તિથિઓ ક્ષૌર કર્મ (હજામત) કરાવવુ હોય તો સારી નથી એવુ જ્યોતિષી લોકોનુ મત છે (૧૫)

दिवाकीर्तिप्रयोगे तु, वाराः प्रोक्ता मनीषिभिः ॥
सौम्यज्यशुक्रसोमाना, क्षेमारोग्यसुखप्रदाः ॥ १६ ॥

અર્થ—ક્ષૌર કર્મને વિષે બુધ, ગુરૂ, શુક્ર અને સોમ એ ચાર વાર ક્ષેમ, આરોગ્ય અને સુખના દાતાર છે એમ પંડિત લોકોએ કહ્યુ છે (૧૬)

क्षौर प्रोक्तं त्रिपात्रिहि-र्मृगे पुष्ये चरेषु च ॥
ज्येष्ठाश्विनीकरद्वन्द्व-रेवतीषु च शोभनम् ॥१७॥

અર્થ—મૃગ, પુષ્ય, ચરનક્ષત્ર (સ્વાતિ, શ્રવણ, ધનિષ્ઠા, શતતારકા), જ્યેષ્ઠા, અશ્વિની, હસ્ત, ચિત્રા અને રેવતી એટલા નક્ષત્રોને વિષે ક્ષૌર કર્મ કરાવવુ શુભ છે, એમ વિદ્વાન્ લોકોએ કહ્યુ છે (૧૭)

क्षौरे राजाज्ञया जाते, नक्षत्र नावलोक्यते ॥
तथिर्तीर्थे च शोके च, क्षौरमुक्त शुभार्थिभिः ॥१८॥

અર્થ—રાજાની આજ્ઞાથી ક્ષૌર કરાવવુ પડે તો નક્ષત્ર જોવાય નહી કેટલાક શુભાર્થી લોકોએ કહ્યુ છે કે તી-

ર્થને વિષે અથવા શોકને લીધે ક્ષાર કરાવવું હોય તોએ નક્ષત્ર જોવું નહીં. (૧૮)

रात्रौ संध्यासु विद्यादौ, क्षौरं नोक्तं तथोत्सवे ॥
भूषाभ्यङ्गाशनस्नान–पर्वयात्रारणेष्वपि ॥१९॥

અર્થઃ—રાત્રિએ, સંધ્યાકાલને વિષે, વિદ્યાના આરંભમાં, ઉત્સવમાં, ભૂષણ, અભ્યંગ (તેલ મર્દન), ભોજન અને સ્નાન કરી રહ્યા પછી, કોઇ પર્વને દિવસે તથા યાત્રાએ અથવા સંગ્રામને વિષે જતાં ક્ષાૈર કરાવવું નહીં. (૧૯)

कल्पयेदेकशः पक्षे, रोमश्मश्रुकचान्नखान् ॥
नचात्मदशनाग्रेण, स्वपाणिभ्यां नचोत्तमः ॥ २० ॥

અર્થઃ—પખવાડિયામાં એકવાર દાઢી, મુછ, માથાનાં વાળ તથા નખ કાઢવાં. પણ પોતાના હાથે પોતાનાં વાળ ન કાઢવા, તથા પોતાના દાંતથી, પોતાના નખ પણ ન કાઢવાં. (૨૦)

(अथ वस्त्राभूषणाधिकारः ।)

आत्मवित्तानुमानेन, कालौचित्येन सर्वदा ॥
कार्यो वस्त्रादिशृङ्गारो, वयसश्चानुमानतः ॥ २१ ॥

અર્થઃ—પોતાની પાસે જેટલું ધન હોય તેને શોભતો તથા શીતકાળાદિ સમય અને પોતાની ઉમરને અનુસરતો એવો વસ્ત્રાદિકનો શૃંગાર કરવો. (૨૧)

वारा नवीनवस्त्रस्य, परिधाने मताः शुभाः ॥
सौम्यार्कशुक्रगुरवो, रक्तवस्त्रे कुजोऽपि च ॥ २२ ॥

અર્થઃ—નવું વસ્ત્ર પહેરવું હોય તો બુધ, રવિ, શુક્ર

અને ગુરૂ એ ચાર વાર શુભ જાણવા તેમજ ફક્ત (રાતુ) વસ્ત્ર ધારણ કરવુ હોય તો મંગળવાર પણ શુભ જાણવો (૨૨)

धनिष्ठाध्रुवरेवत्यो–ऽश्विनीहस्तादिपञ्चकम् ॥

पुष्य पुनर्वसुश्चैव, शुभानि श्वेतवाससि ॥ २३ ॥

અર્થ—શ્વેત (સફેદ) વસ્ત્ર પહેરવુ હોય તો ધનિષ્ઠા, ધ્રુવનક્ષત્ર (રોહિણી અને ત્રણ ઉત્તરા), રેવતી, અશ્વિની, હસ્ત, ચિત્રા, સ્વાતી, વિશાખા, અનુરાધા, પુષ્ય, પુનર્વસુ એટલા નક્ષત્ર શુભ જાણવા (૨૩)

पुष्य पुनर्वसुश्चैव, रोहिणी चोत्तरात्रयम् ॥

कौसुम्भे वर्जयेद्वस्त्रे, भर्तृघातो भवेत्ततः ॥ २४ ॥

અર્થ—સ્રીને કુસુબી (રાતુ) વસ્ત્ર પહેરવુ હોય તો, પુષ્ય, પુનર્વસુ, રોહિણી, ઉત્તરાફાલ્ગુની, ઉત્તરાષાઢા અને ઉત્તરાભાદ્રપદા, એટલા નક્ષત્ર વર્જવા કારણ, એ નક્ષત્ર ઉપર રાતુ વસ્ત્ર પહેરે તો પતિનો નાશ થાય છે (૨૪)

रक्तवस्त्रप्रवालाना, धारण स्वर्णशङ्खयोः ॥

धनिष्ठाया तथाश्विन्या, रेवत्या करपञ्चके ॥ २५ ॥

અર્થ—ધનિષ્ઠા, અશ્વિની, રેવતી, હસ્ત, ચિત્રા, સ્વાતી, વિશાખા અને અનુરાધા એટલા નક્ષત્રોને વિષે રાતા વસ્ત્ર, પ્રવાલ, સુવર્ણ (સોનુ) અને શખ વિગેરે ધારણ કરવા (૨૫)

द्विजादेशे विवाहे च, स्वामिदत्ते च वाससि ॥

तिथिवारर्क्षयोगानां–विष्टयादि न विलोकयेत् ॥ २६ ॥

અર્થ—બ્રાહ્મણની આજ્ઞા હોય, વિવાહ હોય, અથવા

પોતાનો સ્વામી આપે તો તે વસ્ત્ર પહેરવામાં તિથિ, વાર, નક્ષત્ર, ચંદ્રમા, વિષ્ટિ ઇત્યાદિકનો વિચાર ન કરવો. (૨૬)

न धार्यमुत्तमैर्जीर्णं, वस्त्रं नच मलीमसम् ॥
विना रक्तोत्पलं रक्तं पुष्पं च न कदाचन ॥ २७ ॥

અર્થ—ઉત્તમ પુરૂષોએ જીર્ણ અથવા મલિન વસ્ત્ર ધારણ કરવું નહીં. તેમજ એક રાતા કમળ વગર બીજું રાતું ફૂલ કોઇ કાળે પણ ધારણ ન કરવું. (૨૭)

आकाङ्क्षन्नात्मनो लक्ष्मीं, वस्त्राणि कुसुमान्यपि ॥
पादत्राणानि चान्येन, विधृतानि न धारयेत् ॥ २८ ॥

અર્થઃ—લક્ષ્મીની ઇચ્છાવાળા પુરૂષે બીજાએ પહેરેલાં વસ્ત્ર, ફૂલ તથા પાદત્રાણ (પગરખા) પહેરવાં નહીં ૨૮.

नवभागीकृते वस्त्रे, चत्वारस्तत्र कोणकाः ॥
कर्णवृत्ति द्वयं द्वौ चा-ञ्चलौ मध्यं तथैककम् ॥ २९ ॥
चत्वारो देवताभागा, द्वौ भागौ दैत्यनायकौ ॥
उभौ च मानुषौ भागा-वेको भागश्च राक्षसः ॥ ३० ॥

અર્થ—વસ્ત્રનાં નવ ભાગ કરિયે, તેમાં ચાર ખૂણાનાં ચાર ભાગ, બે કિનારીના બે ભાગ, બે છેડાનાં બે ભાગ અને એક વચલો ભાગ એ નવ ભાગમાં પહેલાં ચાર ભાગ દેવતાનાં બીજા બે ભાગ દૈત્યના, ત્રીજા બે ભાગ મનુષ્યનાં અને ચોથો એક જ છે તે રાક્ષસનો જાણવો. (૨૯) (૩૦)

(વસ્ત્ર યંત્ર)

૧ દેવ.	૫ દૈત્ય.	૨ દેવ.
૭ મનુષ્ય.	૯ રાક્ષસ.	૮ મનુષ્ય.
૪ દેવ.	૬ દૈત્ય	૩ દેવ

पङ्काञ्जनादिभिर्लिप्तं, कुट्टितं मूषकादिभिः ॥
तुन्नितं पाटितं दग्धं, दृष्ट्वा वस्त्रं विचारयेत् ॥३१॥
उत्तमो देवते लाभो, दानवे रोगसम्भवः ॥
मानुषे मध्यमो लाभो, राक्षसे मरणं पुनः ॥३२॥

અર્થ—વસ્ત્ર કાદવમા અથવા અજનમા ખરડાએલુ, ઉંદરથી કરડાયલુ, રફુ કરેલુ ફાટેલુ, અથવા બળેલુ જોઇને વિચાર કરવો તે આ રીતે-દેવતાના ભાગમા કાદવથી ખરડાયલુ ફાટેલુ વિગેરે હોય તો ઉત્તમ લાભ થાય, દૈત્યના ભાગમા હોય તો રોગનો સભવ થાય, મનુષ્યના ભાગમા હોય તો મધ્યમ લાભ થાય, અને રાક્ષસના ભાગમા હોય તો મરણ થાય (૩૧) (૩૨)

(अथ ताम्बूलविचारः ।)

नागवल्लीदलास्वादो, युज्यते क्रमुकैः समम् ॥
एलालवङ्गकङ्कोल-कर्पूराद्यन्वितैरपि ॥३३॥

અર્થ—નાગરવેલનુ પાન, સોપારી, એલચી, લવગ, કંકોળ, કપૂર, ઇત્યાદિક વસ્તુની સાથે ભક્ષણ કરવુ (૩૩)

चूर्णक्रमुकपत्राणां-साम्ये चात्र मतिं क्रमात् ॥
दुर्गन्धमङ्गसौगन्ध्य-मङ्गरागान्विदुर्बुधाः ॥३४॥

અર્થ—જો પાનમા ચુનો વધારે હોય તો દુર્ગંધી થાય, સોપારી વધારે હોય તો રગ ન થાય, ચુનો જોઇયે તેટલોજ હોય તો સુગધી થાય, અને સોપારી જોઇયે તેટલી હોય તો બહુ રગ થાય, એમ પડિત પુરૂષો કહે છે (૩૪)

पित्तशोणितवातार्त–रूक्षक्षीणाक्षिरोगिणाम् ॥
तच्चापथ्यं विषार्तस्य, क्षीवशोषवतोरपि ॥३५॥

અર્થઃ—રક્તપિત્ત તથા વાતરોગ જેને થયો હોય તે, રૂક્ષ થએલાં ક્ષીણ થએલા, આંખના રોગી, વિષથી પીડાયલા, ઘેલા થએલા અને શોપક્ષય રોગવાળા એટલા રોગીને તાંબુલ ગુણકારી નથી. (૩૫)

कामदं षड्रसाधार–मुष्णं श्लेष्मापहं तथा ॥
कान्तिदं क्रिमिदुर्गन्ध–वातानां च विनाशनम् ॥३६॥
यः स्वादयति ताम्बूलं, वक्त्रभूपाकरं नरः ॥
तस्य दामोदरस्येव, न श्रीस्त्यजति मन्दिरम् ॥३७॥

અર્થઃ—કામની વૃદ્ધિ કરનારૂં, છએ રસનો આધાર, ઉષ્ણ, કાંતિ દેનારૂં તથા કફ, કૃમિ દુર્ગંધ અને વાયુ એમનો નાશ કરનારૂં, એવા મુખને શોભા ઉપજાવનારા તાંબુલને જે માણસ ખાય તેના ઘરને શ્રીકૃષ્ણના ઘરની પેઠે લક્ષ્મી છોડતી નથી. (૩૬) (૩૭)

स्वापान्ते वमने स्नाने, भोजनान्ते सदस्यपि ॥
तत्तु ग्राह्यमनल्पीयः, सुखदं मुखशुद्धिकृत् ॥३८॥

અર્થઃ—સુખ દેનારૂં અને મુખની શુદ્ધિ કરનારૂં તાંબુલ નિદ્રા, વાંતિ (ઉલટી), સ્નાન અને ભોજન કરી રહ્યા પછી તથા સભામાં ખૂબ ખાવું. (૩૮)

पर्णमूले वसेव्याधिः, पर्णाग्रे पापसंभवः ॥

चूर्णपत्र हरेदायु, शिरा बुद्धिविनाशिनी ॥३९॥

અર્થ —પાનના મૂળમા વ્યાધિ રહે છે અગ્રભાગમા પાપ નો સમૂહ રહે છે, સુકાઇને ચૂર્ણ થયેલુ પાન ખાવાથી આ યુષ્યનો નાશ થાય છે અને પાનની નસ બુદ્ધિનો નાશ કરે છે (૩૯)

(अथ द्रव्योपार्जनाधिकारः ।)

सुधीरर्थार्जने यत्न, कुर्यान्न्यायपरायणः ॥

न्याय एवानपायो य—दुपायः सर्वसंपदाम् ॥४०॥

અર્થ —ડાહ્યા પુરૂષે ન્યાય માર્ગનુ આલબન કરીનેજ દ્રવ્ય (પૈસો) ઉપાર્જવુ કારણ કે, ન્યાય એજ દ્રવ્ય ઉપાર્જવા નો શુદ્ધ ઉપાય છે (૪૦)

दत्तः स्वल्पोऽपि भद्राय, स्यादर्थो न्यायसंचितः ॥

अन्यायात्तः पुनर्दत्तः, पुष्कलोऽपि फलोज्झितः ॥४१॥

અર્થ —ન્યાયથી ઉપાર્જન કરેલુ દ્રવ્ય (ધર્મકૃત્યમા) થોડુ વાપરે તોએ પણ તે કલ્યાણને અર્થે છે અને અન્યાયથી ઉપાર્જન કરેલુ ઘણુ વાપરે તોએ તે નિષ્ફળ જાણવુ ·(૪૧)

धर्ममर्माविरोधेन, सत्त्वलोऽपि कुलोचितः ॥

निस्तन्द्रेण विधेयोऽत्र, व्यवसायः सुमेधसा ॥ ४२ ॥

અર્થ —બુદ્ધિશાળી માણસે ધર્મના તત્ત્વને વિરોધ ન આવે એવી રીતે કુલને ઉચિત વ્યાપાર આળસ રાખ્યા વિના કરવો. [૪૨]

प्रसूनमिव निर्गन्धं, तडागमिव निर्जलम् ॥
कलेवरमिवाजीवं, को निषेवेत निर्धनम् ॥ ४३ ॥

અર્થઃ—સુગંધિ વિનાના ફૂલ સરખા, જળ વિનાના તલાવ સરખા અને જીવ વિનાના કલેવર સરખા નિર્ધન માણસની કોણ સેવા કરે ? (૪૩)

अर्थ एव ध्रुवं सर्व-पुरुषार्थनिबन्धनम् ॥
अर्थेन रहिताः सर्वे, जीवन्तोऽपि शवोपमाः ॥ ४४ ॥

અર્થઃ—દ્રવ્ય જે છે તેજ સર્વ પુરૂષાર્થનું મૂળ કારણ છે. માટે દ્રવ્યથી રહિત સર્વે પુરૂષો જીવતાં છતાં પણ મુવા સરખા છે. (૪૪)

कृष्यादिभिः स चोपायै-र्भूरिभिः समुपार्ज्यते ॥
दयादानादिभिः सम्य-ग्धन्यैर्धर्माय स ध्रुवम् ॥ ४५ ॥

અર્થઃ—ધન્ય પુરૂષો ખેતી, વ્યાપાર પ્રમુખ ઘણા ઉપાયથી તે દ્રવ્યનું ઉપાર્જન કરે છે, અને અનુકંપાદાન, પાત્રદાન પ્રમુખ સત્કાર્ય કરીને સદ્ધર્મ તરફ તેનો વ્યય કરે છે. (૪૫)

वापकालं विजानाति, भूमिभागं च कर्षकः ॥
कृषिं साध्यां पथि क्षेत्रं, यश्चोज्झति स वर्धते ॥ ४६ ॥

અર્થઃ—જે ખેડૂત વાવવાનો અવસર, ભૂમીનો ભાગ તથા ભૂમિની અંદર કયો પાક આવે તે જાણે, અને માર્ગમાં આવેલા ખેતરને છોડી દે, તે ખેતીમાં લાભ પામે. (૪૬)

आरम्भोऽत्र महानेव, लक्ष्मीकार्मणकर्मणि ॥
सुतीर्थविनियोगेन, विना पापाय केवलम् ॥ ४७ ॥

અર્થ.—દ્રવ્યનુ ઉપાર્જન કરવાને અર્થે મોટો આરંભ કરવો પડે છે માટે ઉપાર્જન કરેલા દ્રવ્યનો સુપાત્રે વ્યય ન કરે તો કેવળ તેમાથી પાપ બધાય છે (૪૭)

पाशुपाल्यं श्रियो वृद्ध्यै, कुर्वन्नोज्झेद्दयालुताम् ॥
तत्कृत्येषु स्वयं जाग्र-च्छविच्छेदादि वर्जयेत् ॥ ४८ ॥

અર્થ --લક્ષ્મીની વૃદ્ધિને અર્થે ગાય, ભેંસ પ્રમુખ પશુઓનુ રક્ષણ કરવુ પડે, તોપણ દયા છોડવી નહિ તે કામમા પોતે જાગૃત રહેવુ, અને પશુઓના અંગ ચિન્હ પ્રમુખ છેદવા નહી' (૪૮)

श्रेयो धर्मात्स चार्थेन, सोऽप्यङ्गेन तदन्नतः ॥
तन्निष्पत्तिश्च सद्धान्यात्, कथं स्यात्तदसंग्रहे ॥ ४९ ॥

અર્થ —ધર્મથી કલ્યાણ થાય છે, દ્રવ્યથી ધર્મ થાય છે, શરીરથી દ્રવ્ય કમાવાય છે, અને તે શરીર અન્નથી જીવે છે માટે અનાજની ઉત્પત્તિ થતાંજ તેનો સંગ્રહ કરવો સંગ્રહ ન કર્યો હોયતો કેમ જીવાય ? (૪૯)

धान्येऽर्थोऽपि जायेत, मन्दार्थे तस्य विक्रयात् ॥
दुर्भिक्षे नोचितः सोऽपि लोकविग्रहकारणम् ॥ ५० ॥

અર્થ —અનાજનો સંગ્રહ કર્યો હોય તો વખતે તે વેચવાથી લાભ પણ થાય પણ તે દુકાળ વખતે વેચવુ નહી કારણ કે તેથી લોક સાથે વેર બંધાય છે (૫૦)

सर्वदा सर्वभाण्डेषु, नाणकेषु च शिक्षितः ॥
जानीयात्सर्वभाषावि–द्धस्तसंज्ञां वणिग्वरः ॥५१॥

અર્થઃ—સર્વ પ્રકારનું કરિયાણું તથા સર્વ પ્રકારનું નાણું જાણવાનો અભ્યાસ જેણે કર્યો છે એવો શ્રેષ્ઠ વણિક્ સર્વ ભાષા તથા હસ્તસંજ્ઞા પણ જાણે. (૫૧)

एकाद्वित्रिचतुःसंज्ञा–स्तर्जन्याद्यङ्गुलिग्रहे ॥
साङ्गुष्ठानां पुनस्तासां, संग्रहे पञ्च संस्थिताः ॥ ५२ ॥

અર્થઃ—તર્જની આંગળીથી માંડીને ચાર આંગળીઓ ગ્રહણ કરવાથી અનુક્રમે એક, બે, ત્રણ અને ચાર એવી સંજ્ઞા થાય છે. તથા તેની સાથે અંગુઠો લીધાથી પાંચની સંજ્ઞા થાય છે. (૫૨)

कनिष्ठादितले स्पृष्टे, षट् सप्ताष्टौ नव क्रमात् ॥
तर्जन्यां दश विज्ञेया, तदादीनां नखाहतौ ॥ ५३ ॥
एकाद्वित्रिचतुर्युक्ता, दश ज्ञेया यथाक्रमम् ॥
हस्तस्य तलसंस्पर्शे, पुनः पञ्चदश स्मृताः ॥ ५४ ॥

અર્થઃ—કનિષ્ઠા આંગળીથી માંડીને ચાર આંગળીઓના તળને સ્પર્શ કરવાથી અનુક્રમે છ, સાત, આઠ અને નવની સંજ્ઞા તથા તર્જનીને વિષે સ્પર્શ કરે તો દશની સંજ્ઞા જાણવી. તેજ આંગળીઓના નખોને સ્પર્શ કરવાથી અનુક્રમે અગ્યાર, બાર, તેર અને ચાદની સંજ્ઞા અને હાથેલીને સ્પર્શ કરવાથી પંદરની સંજ્ઞા જાણવી. (૫૩) (૫૪)

तले कनिष्ठिकादीनां, षट्सप्ताष्टनवाधिकाः ॥
क्रमशो दश विज्ञेया, हस्तसंज्ञाविशारदैः ॥ ५५ ॥

અર્થ—હસ્તસંજ્ઞા જાણવામા પંડિત એવા પુરૂષોએ કનિષ્ઠિકાદિ ચાર આગળીના તળે સ્પર્શ કરવાથી અનુક્રમે સોળ, સત્તર, અઢાર અને ઓગણીશની સંજ્ઞા થાય એમ જાણવુ (૫૫)

तर्जन्यादौ द्वित्रिचतुः–पञ्चग्राहे यथाक्रमम् ॥
विंशतिस्त्रिंशच्चत्वारि–शत्पञ्चाशत्प्रकल्पना ॥ ५६ ॥

અર્થ—તર્જની આદિ પાચ આગળીઓમા બે, ત્રણ, ચાર અને પાચનુ ગ્રહણ કરવાથી અનુક્રમે વીસ, ત્રીસ, ચાલીશ અને પચાસની સંજ્ઞા જાણવી (૫૬)

कनिष्ठाद्यङ्गुलितले, षष्टिसप्तत्यशीतयः ॥
नवतिश्च क्रमाज्ज्ञेया–स्तर्जन्यर्धग्रहे शतम् ॥ ५७ ॥

અર્થ—કનિષ્ઠાદિ ચાર આગળીના તળે અનુક્રમે સાઠ સિત્તેર, એંસી અને નેવુની સંજ્ઞા તથા અર્ધી તર્જનીનુ ગ્રહણ કરવાથી સોની સંજ્ઞા જાણવી (૫૭)

सहस्रमयुतं लक्ष, प्रयुतं चात्र विश्रुतम् ॥
मणिबन्धे पुनः कोटिं, हस्तसंज्ञाविदो विदुः ॥ ५८ ॥

અર્થ—તે પછી અનુક્રમે આગળીનો અર્ધ ભાગ ગ્રહણ કરવાથી હજાર દસ હજાર, લાખ અને દસ લાખની સંજ્ઞા થાય તથા મણિબંધ (કાંડુ) ગ્રહણ કરવાથી કોડની સંજ્ઞા થાય (૫૮)

अप्रमाणकोऽप्यदृष्टेषु, न सत्यकारमर्पयेत् ॥
दद्यान्न बहुभि, सार्ध, वाञ्छँल्लक्ष्मीं वणिग्वरः ॥ ५९ ॥

અર્થ—જે વ્યાપારી લક્ષ્મીની વાછા કરતો હોય તો તેણે કરિયાણુ દીઠા વિના બાનુ આપવુ નહિ, અને કરિ-

ચાણું દીઠા પછી પણ જો ખાતું આપવું પડે તો બીજા ઘણા વ્યાપારીની જોડે આપવું. (૫૯)

कुर्यात्तत्रार्थसंबन्ध-मिच्छेद्यत्र न सौहृदम् ॥
यदृच्छया न तिष्ठेच्च, प्रतिष्ठाभ्रंशभीरुकः ॥ ६० ॥

અર્થઃ—જ્યાં મિત્રાઇ કરવાની ઇચ્છા ન હોય, ત્યાં પૈસા સંબંધી લેવડદેવડનો સંબંધ રાખવો. પોતાની પ્રતિષ્ઠાના (આબરૂના) ભંગની બીક રાખી સ્વચ્છંદપણે પણ વર્તવું નહિ. (૬૦)

व्यापारिभिश्च विप्रैश्च, सायुधैश्च वणिग्वरः ॥
श्रियमिच्छन्न कुर्वीत, व्यवहारं कदाचन ॥ ६१ ॥

અર્થઃ—લક્ષ્મીની ઇચ્છા કરનાર ઉત્તમ વણિકે બ્રાહ્મણ વેપારી સાથે તથા શસ્ત્રધારી (હથિયારબંધ) લોકો સાથે કોઇ કાળે વ્યવહાર ન કરવો. (૬૧)

नटे पण्याङ्गनायां च, द्यूतकारे विटे तथा ॥
दद्यादुद्धारकं नैव, धनरक्षापरायणः ॥ ६२ ॥

અર્થઃ—જે વણિક પોતાનું ધન સાચવવા ઇચ્છતો હોય, તેણે નટ, વેશ્યા, જુગારી અને જાર પુરૂષ એમને ઉધાર વસ્તુ આપવી નહિ. (૬૨)

धर्मबाधाकरं यच्च, यच्च स्यादयशस्करम् ॥
भूरिलाभमपि ग्राह्यं, पण्यं पुण्यार्थिभिर्न तत् ॥ ६३ ॥

અર્થઃ—પુણ્યના અર્થી પુરૂષોએ ધર્મની હાનિ અથવા અપયશ કરે એવું કરિયાણું ગમે તેટલો લાભ થતો હોય તોએ ખરીદવું નહિ. (૬૩)

नर यत्रार्ज्यते किंचि-त्कूटमानतुलादिभिः ॥
नश्यत्तन्नैव दृश्येत तप्तपात्रेऽम्बुबिन्दुवत् ॥ ६४ ॥

અર્થ --જે માણસ ખોટા કાટલાં તથા ત્રાજના રાખીને થોડું ઘણું ધન કમાય છે, તેમનું તે ધન નાશ પામતા, તપાયલી તાવડી ઉપર પડેલા જળબિંદુની પેઠે દેખાતું નથી (૬૪)

गर्वं न्यासापहारं च, वणिक्पुत्रः परित्यजेत् ॥
अङ्गीकुर्यात्क्षमामेकां, भूपतौ दुर्गतेऽपि च ॥ ६५ ॥

અર્થ —વણિક્પુત્રે ગર્વ અને થાપણ મોસો એ બન્નેને મૂકી દેવા, અને રાજા તથા રંક બન્નેને વિશે એક ક્ષમા રાખવી (૬૫)

स्वच्छस्वभावा विश्वस्ता, गुरुनायकबालकाः ॥
देवा वृद्धाश्च न प्राज्ञै-र्वञ्चनीया कदाचन ॥ ६६ ॥

અર્થ —ડાહ્યા માણસોએ નિર્મળ સ્વભાવના અને પોતાની ઉપર વિશ્વાસ રાખનારા, પોતાના ગુરૂ, નાયક, બાળક, દેવ અને વૃદ્ધ માણસ એટલાને કોઈ કાળે પણ ઠગવા નહિ (૬૬)

भाव्यं प्रतिभुवा नैव, दाक्षिण्येन च साक्षिणा ॥
कोशपानादिकं चैव, न कर्तव्यं यतस्ततः ॥ ६७ ॥

અર્થ —ડાહ્યા પુરૂષે કોઈની દાક્ષિણતાથી જામીન અથવા સાક્ષી ન થવું તેમજ જ્યાં ત્યાંથી કોશપાન (સોગન્દ) પ્રમુખ ન કરવું (૬૭)

साध्वर्थे जीवरक्षार्थे, गुरुदेवगृहादिषु ॥
मिथ्याकृतैरपि नृणां, शपथैर्नास्ति पातकम् ॥ ६८ ॥

અર્થઃ—સાધુ, જીવરક્ષા, ગુરૂ, દેવ અને જીનમંદિર એમને અર્થે મિથ્યા સપથ (સમ) ખાય તો પણ તેમાં માણસને પાપ નથી. (૬૮)

असंपत्त्या स्वमात्मानं, नैवावगणयेद्बुधः ॥
किंतु कुर्याद्यथाशक्ति, व्यवसायमुपायवित् ॥ ६९ ॥

અર્થઃ—જાણ પુરૂષે નિર્ધનપણું હોય તોએ પોતાના આત્માની નિંદા ન કરવી. પણ ઉપાય શોધી જાણીશક્તિમાફક ધન ઉપાર્જવાને અર્થે ઉદ્યમ કરવો. (૬૯)

वृष्टिशीतातपक्षोभ–काममोहक्षुधादयः ॥
न घ्नन्ति यस्य कार्याणि, सोऽग्रणीर्व्यवसायिनाम् ॥७०॥

અર્થઃ—વૃષ્ટિ (વરસાદ), શીત (ટાઢ), આતપ (તડકો), ક્ષોભ (ક્રોધાદિકથી ચિત્તની ચંચલતા), કામ, મોહ, ક્ષુધા પ્રમુખ વિકાર જેનાં કાર્યને હરકત કરી શકતા નથી, તે પુરૂષ શ્રેષ્ઠ વ્યવસાયી જાણવો. (૭૦)

यो द्यूतधातुवादादि–संबन्धाद्धनमीहते ॥
स मषीकूर्चकैर्धाम–धवलीकर्तुमिच्छति ॥ ७१ ॥

અર્થઃ—જે પુરૂષ જુગારથી અથવા કિમિયાથી ધન મેળવવાની ઇચ્છા કરે છે, તે પોતાના ઘરને મસીની પીછીથી ધોળું કરવા ઇચ્છે છે એમ જાણવું. (૭૧)

अन्यायिदेवपाखण्डि–तद्धनानां धनेन यः ॥
वृद्धिमिच्छति मुग्धोऽसौ, विषमत्ति जिजीविषुः ॥७२॥

અર્થ —જે પુરૂષ અન્યાયી, દેવ, પાખંડી અને કૃપણ એમના ધનથી પોતે ધનવાન થવાની ઇચ્છા કરે, તે પુરૂષ જીવવાની ઇચ્છાથી ઝેર ખાય છે, એમ સમજવું (૭૨)

गोदेवकरणारक्ष-तलारर्तकपट्टकाः ॥
ग्राम्योत्तरश्च न प्रायः, सुखाय प्रभवन्त्यमी ॥ ७३ ॥

અર્થ —ગાય, દેવ અને ખેતર એમના રખવાલ, તલાર, પટેલ અને ગામડીયા એટલા લોકો પ્રાયે કોઇને સુખ દેતાજ નથી (૭૩)

अभिगम्यो नृभिर्योग-क्षेमसिद्धयर्थमात्मनः ॥
राजादिनायकः कश्चि-दिन्दुनेव दिवाकरः ॥ ७४ ॥

અર્થ —ચંદ્ર જેમ પોતાનું તેજ મેળવવા માટે સૂર્ય પાસે જાય છે, તેમ ડાહ્યા પુરૂષે પોતાના કલ્યાણની સિદ્ધિને અર્થે કોઇ રાજા પ્રમુખ નાયક પાસે જવું (૭૪)

निन्दन्तु मानिनः सेवा, राजादीना सुखैषिणः ॥
स्वजनास्वजनोद्धार-संहारौ न तया विना ॥ ७५ ॥

અર્થ —સુખની ઇચ્છા કરનાર અહંકારી પુરૂષો રાજા પ્રમુખની સેવાને ભલે નિંદો, તોપણ તે વિના સ્વજનનો ઉદ્ધાર અને વેરીનો સંહાર થતો નથી (૭૫)

अकर्णदुर्बल' शूरः कृतज्ञः सात्विको गुणी ॥
वदान्यो गुणरागी च, प्रभुः पुण्यैरवाप्यते ॥ ७६ ॥

અર્થ —કાનનો કાચો નહીં, કર્યા ઉપકારનો જાણ, સત્વશાલી, ગુણી, ઉદાર અને ગુણરાગી એવો પ્રભુ (માલીક) પુણ્યથીજ મળી શકે છે, (૭૬)

सुतज्ञः सुपवित्रात्मा, सेवकागमनस्पृहः ॥
औचित्यवित्क्षमी दक्षः, सलज्जो दुर्लभः प्रभुः ॥७७॥

અર્થઃ—શાસ્ત્રનો સારો જાણ, પવિત્ર ચિત્તવાળો, સેવકના આવવાની ઇચ્છા કરનારો, ઉચિત કર્તવ્યનો જાણ, ક્ષમાશીલ, દક્ષ અને શરમવાળો એવો પ્રભુ (માલીક) મળવો દુર્લભ છે. (૭૭)

विद्वानपि परित्याज्यो, नेता मूर्खजनावृतः ॥
मूर्खोऽपि सेव्य एवासौ, बहुश्रुतपरिच्छदः ॥७८॥

અર્થઃ—પ્રભુ ગમે તેવો વિદ્વાન્ હોય તો પણ તે જો મૂર્ખ લોકોનો પરિવાર રાખતો હોય તો તેને છોડી દેવો. અને જો પ્રભુ પોતે મૂર્ખ છતાં પણ પાસે વિદ્વાન્ તથા અનુભવી લોકોનો પરિવાર રાખતો હોય, તો તે (પ્રભુ) સેવવા યોગ્ય જાણવો. (૭૮)

स्वामि सभावित्तैश्वर्यः, सेव्यः सेव्यगुणान्वितः ॥
सुक्षेत्रबीजवत्काला—न्तरेऽपि स्यान्न निष्फलः ॥७९॥

અર્થઃ—જેનામાં સ્વામીના સર્વ ગુણ હોય, તથા જેને લક્ષ્મીપણ મળવાનો સંભવ હોય, એવા સ્વામીની સેવા કરવી. કારણ, સારા ક્ષેત્રમાં વાવેલા બીજની પેઠે કાલાંતરે પણ તેની સેવા નિષ્ફળ થાય નહીં. (૭૯)

स्वामिभक्तो महोत्साहः, कृतज्ञो धार्मिक शुचिः ॥
अकर्कशः कुलीनश्च, स्मृतिज्ञः सत्यभाषकः ॥ ८० ॥
विनीतः स्थुललक्षश्चा—व्यसनो वृद्धसेवकः ॥
अतन्द्रः सत्वसंपन्नः, प्राज्ञः शूरोऽचिरक्रियः ॥८१॥

राज्ञा परीक्षितः सर्वो–पधासु निजदेशजः ॥
राजार्थस्वार्थलोकार्थ–कारको निःस्पृहः शमी ॥ ८२ ॥
अमोघवचनः कल्पः, पालिताशेषदर्शनः ॥
पात्रौचित्येन सर्वत्र नियोजितपदक्रमः ॥ ८३ ॥
आन्वीक्षिकीत्रयीवार्ता–दण्डनीतिकृतश्रमः ॥
क्रमागतो वणिक्पुत्रः, सेव्यो मन्त्री नचापरः ॥ ८४ ॥

અર્થ —પોતાના સ્વામી ઉપર ભકિત કરનારો, ઘણો ઉત્સાહી, કર્યા ઉપકારનો જાણ, ધર્મ ઉપર શ્રદ્ધા રાખનારો, પવિત્ર, કોમળ, કુલીન, સ્મૃતિનો જાણ, સત્યવાદી, વિનયસંપન્ન, ઉદાર, વ્યસનથી દૂર રહેનારો, વૃદ્ધ પુરૂષોની સેવા કરનારો, આલસ્યરહિત, સત્વશાલી, બુદ્ધિશાળી, શુર, શીઘ્ર કાર્ય કરનારો, ભકિત, નિષ્કામ બુદ્ધિ, ધૈર્ય અને બ્રહ્મચર્ય એ ચાર વાતમાં રાજાએ સારી પેઠે પારખેલો, પોતાના દેશમાં થએલો, રાજાના પોતાના અને લોકોના કાર્ય શુંચવણુમાં ન પડતાં કરનારો, નિસ્પિહ, શાંત, બોલે તે પ્રમાણે કરનારો, સમર્થ, સર્વે દર્શનનું રક્ષણ કરનારો, પાત્રની યોગ્યતા જોઇને સર્વ ઠેકાણે પગ મૂકનારો, આન્વીક્ષિકી, ત્રયી, વાર્તા અને દંડ નીતિ એ ચારે નીતિમાં મોટો અભ્યાસ કરી રહેલો એવા વંશપરંપરાએ આવેલા વણિક્પુત્રને રાજાએ મંત્રી કરવો, બીજાને નહીં (૮૦) (૮૧) (૮૨) (૮૩) (૮૪)

अभ्यासी वाहने शास्त्रे, शस्त्रे च विजयी रणे ॥
स्वामिभक्तो जितायासः, सेव्यः सेनापति श्रिये ॥८५॥

અર્થ —વાહન, શસ્ત્ર અને શાસ્ત્ર એ ત્રણેનો અભ્યાસ

કરી રહેલો, સંગ્રામમાં વિજય મેળવનારો, સ્વામી ઉપર ભક્તિ રાખનારો અને ગમે તેટલો શ્રમ થાય તોએ કાયર ન થનારો એવો સેનાપતિ રાજાએ પોતાની ઋદ્ધિને અર્થે કરવો. (૮૫)

अवञ्चकः स्थिरः प्राज्ञः, प्रियवाग्विक्रमी शुचिः ॥
अलुब्धः सोद्यमो भक्तः, सेवकः सद्भिरिष्यते ॥८६॥

અર્થઃ—વંચના ન કરનારો, સ્વભાવનો ઠરેલો, બુદ્ધિશાળી, મધુર વચન બોલનારો, પરાક્રમી, પવિત્ર, નિર્લોભી, ઉદ્યમવંત અને સ્વામિ ઉપર ભક્તિ કરનારો એવો સેવક (ચાકર) ઉત્તમ પુરૂષોને માન્ય છે. (૮૬)

सेवकः सुगुणो नम्रः, स्वाम्याहूतो विशेत्सदा ॥
स्वमार्गेणोचिते स्थाने, गत्वा चासीत संवृतः ॥८७॥

અર્થઃ—ગુણવંત સેવકે સ્વામી પોતાને બોલાવે ત્યારે વિનયથી પોતાને ઉચિત એવે માર્ગે સ્વામી પાસે જઇ ઉચિત સ્થાનકે અંગોપાંગ ઢાંકીને બેસવું. (૮૭)

आसीनः स्वामिनः पार्श्वे, तन्मुखेक्षी कृताञ्जलिः ॥
स्वभावं चास्य विज्ञाय, दक्षः कार्याणि साधयेत् ॥८८॥

અર્થઃ—સ્વામીની પાસે ઉચિત સ્થાને બેસીને સેવક હાથ જોડી સ્વામીના મુખ તરફ જુવે, અને તેનો સ્વભાવ જાણી દક્ષતાથી કાર્ય સાધે. (૮૮)

नात्यासन्नो न दूरस्थो, न समोच्चासनस्थितः ॥
न पुरस्थो न पृष्ठस्थ–स्तिष्ठेत्स सदासि प्रभोः ॥८९॥

અર્થઃ—સેવકે સ્વામી પાસે તેનાથી બહુ દૂર, બહુ

નજીક, સરખા અથવા ઉંચા આસન ઉપર, તેના મુખ આગળ અથવા પાછળ પણ ન બેસવુ (૮૯)

आसन्ने स्यात्प्रभोर्बाधा, दुरस्थेऽप्यप्रगल्भता ॥
पुरःस्थितेऽन्यकोपोऽपि, तस्मिन्पश्चाददर्शनम् ॥९०॥

અર્થ —સેવક સ્વામી પાસે બહુ નજીક બેસે તો સ્વામીને હરકત થાય, બહુ દૂર બેસે તો ધ્યાન પહોચાડાય નહીં, આગળ ઉભો રહે તો બીજા લોકોને કોપ ઉપજે, અને પછવાડે બેસે તો દેખાય નહી. (૯૦)

प्रभुप्रिये प्रियत्वं च, तद्वैरिणि च वैरिता ॥
तस्यैवाव्यभिचारेण, नित्य वर्तेत सेवकः ॥९१॥

અર્થ —સેવકે પોતાના પ્રભુને જે માણસ પ્રિય હોય તેની જોડે પ્રીતિ રાખવી, અને પોતાના પ્રભુનો જે વેરી હોય તેની જોડે વૈર રાખવુ એ વાતમા ફેર ન પડે તેમ હમેશા ચાલવુ (૯૧)

प्रसादात्स्वामिना दत्त, वस्त्रालङ्करणादिकम् ॥
प्रीत्या धार्य स्वय देय, नान्यस्मै च तदग्रतः ॥९२॥

અર્થ —સેવકે સ્વામીએ ખુશી થઇ આપેલા વસ્ત્ર તથા આભરણ પ્રમુખ પ્રીતિથી પોતે પહેરવા પણ સ્વામીના દેખતા કોઇ બીજાને આપવા નહીં (૯૨)

स्वामिनोऽभ्याधिको वेषः, समानो वा न युज्यते ॥
स्रस्त वस्त्र क्षुत जृम्भा, नेक्षेतास्य स्त्रिय तथा ॥९३॥

અર્થ —સેવકને પોતાના સ્વામિ કરતા અધિક સારો અ

થવા તેના સરખો વેષ પહેરવા યોગ્ય નથી. તથા સ્વામીનું વ-સ્ત્ર સ્થાનકથી ખસી ગયું હોય, અથવા તે છીંક કિંવા બગાસું ખાતો હોય,તો તે તરફ જોવુ નહીં. તથા તેની સ્ત્રીને પણ જોવી નહીં. (૯૩)

विजृम्भणक्षुतोद्गार–हास्यादीन्पिहिताननः ॥
कुर्यात्सभासु नो नासा–शोधनं हस्तमोटनम् ॥९४॥

અર્થઃ—સેવકે સભામાં બગાસું, છીંક, ઓડકાર અને હાસ્ય એટલાં વાનાં મુખ ઢાંકીને કરવાં, તથા નાક ખોતરવું નહીં, અને હાથની આંગળી પ્રમુખ મોડવાં નહીં (૯૪)

कुर्यात्पर्यस्तिकां नैव, नच पादप्रसारणम् ॥
न निद्रां विकथां नापि, सभायां कुक्रियां नच ॥९५॥

અર્થઃ—સેવકે સભામાં પલાંઠી ન વાળવી, પગ પહોળાં ન કરવાં, અને નિદ્રા, વિકથા તથા કોઇ પણ કુચેષ્ટા ન કરવી. (૯૫)

श्रोतव्या सावधानेन, स्वामिवागनुजीविना ॥
भाषितः स्वामिना जल्पे–न्न चैकवचनादिभिः ॥ ९६ ॥

અર્થઃ—સેવકે સ્વામીની વાણી સાવધાન થઈ સાંભળવી. અને પાછો જવાબ દેતાં સ્વામીને તુકાર વચનથી ન બોલાવવા. (૯૬)

आज्ञालाभादयः सर्वे, यस्मिल्लोकोत्तरा गुणाः ॥
स्वामिनं नावजानीया–त्सेवकस्तं कदाचन ॥ ९७ ॥

અર્થઃ—જે સ્વામીમાં ઉચિત આજ્ઞા તથા લાભ પ્રમુખ સર્વે લોકોત્તર ગુણ વસતા હોય, તે સ્વામીની સેવકે કદીપણ અવજ્ઞા ન કરવી. (૯૭)

एकान्ते मधुरैर्वाक्यैः, सान्त्वयन्नाहितात्प्रभुम् ॥
वारयेदन्यथा हि स्या-द्देष स्त्वयमुपेक्षितः ॥ ९८ ॥

અર્થ —સેવકે સ્વામીને એકાંતે લઇ જઇ મીઠા વચને શાંત પાડી ખોટુ કામ કરતા અટકાવવા એમ ન કરે તો સ્વામીની ઉપેક્ષા કર્યાનો દોષ સેવકને માથે આવે છે (૯૮)

मौनं कुर्याद्यदा स्वामी, युक्तमप्यवमन्यते ॥
प्रभोरग्रे न कुर्याश्च, वैरिणा गुणकीर्तनम् ॥ ९९ ॥

અર્થ —જ્યારે સ્વામી યોગ્ય વાતને પણ ધિક્કારે, ત્યારે સેવકે મૌન કરી બેસવુ તથા તેની આગળ તેના વૈરીના ગુણ ગાવા નહી (૯૯)

प्रभोः प्रसादे प्राज्ञोऽपि, प्रकृतीर्नैव कोपयेत् ॥
व्यापारितश्च कार्येषु, याचेता यत्नपोषणम् ॥ १०० ॥

અર્થ —સેવકે સ્વામીની પોતાના ઉપર ઘણી કૃપા હોય તો પણ પ્રકૃતિને (-ાન્યના સાત અગને) કોપાવવી નહી તથા કોઇ કાર્ય કરવા સ્વામીએ પ્રેરણા કરી હોય તો પોતાના ઉપરીનુ બળ માગવુ (૧૦૦)

कोपप्रसादजैश्चिह्न-रंगिभिः सञ्ज्ञयाऽथवा ॥
अनुरक्तं विरक्तं वा, जानीयात्प्रभोर्मनः ॥ १०१ ॥

અર્થ —સેવકે કોપના તથા પ્રસાદના ચિન્હ ઉપરથી, વર્તણુંકથી અથવા બીજી કોઇ નિશાની સ્વામીનુ મન પ્રસન્ન છે કે અપ્રસન્ન છે તે જાણવુ (૧૦૧)

हर्षो दृष्टे धृतिः पार्श्वे, स्थिते वासनदायनम् ॥
स्निग्धोक्तिरुक्तकारित्वं, प्रसन्नप्रभुलक्षणम् ॥ १०२ ॥

અર્થઃ—સેવકને જોતાંજ હર્ષ પામે, પાસે રાખે, ઉભો હોય તો આસન દેવરાવે, સ્નેહયુક્ત વચન બોલે. કહેલું કામ કરે, એ પ્રસન્ન સ્વામીનાં લક્ષણ જાણવાં. (૧૦૨)

आपद्युपेक्षानालापो, मानहानिरदर्शनम् ॥
दोषोक्तिरप्रदानं च, विरक्तप्रभुलक्षणम् ॥ १०३ ॥

અર્થઃ—આપત્કાળ આવે ઉપેક્ષા કરે, બોલે નહિ, માન-હાનિ કરે, મુખ ન દેખાડે, દોષ બોલ્યા કરે, તથા કંઈ આપે નહિ, એ અપ્રસન્ન (ખફા) થએલા સ્વામીનાં લક્ષણ જાણવાં. (૧૦૩)

दोषेणैकेन न त्याज्यः, सेवकः सुगुणोऽधिपैः ॥
धूमदोषभयाद्वह्निः, किमु केनाप्यपास्यते ॥ १०४ ॥

અર્થઃ—સ્વામીએ માત્ર એકજ દોષથી ગુણવંત સેવકનો ત્યાગ ન કરવો. કારણ, ધુમાડાના દોષથી અગ્નિનો કોણ ત્યાગ કરે ? (૧૦૪)

बलादविचलः श्लाघ्यो, धनात्पुरुषसंग्रहः ॥
असदप्यर्ज्यते वित्तं, पुरुषैर्व्यवसायिभिः ॥ १०५ ॥

અર્થઃ—સેવક પ્રમુખનું બળ ઘણું હોવાથી જે કોઈથી ચલાયમાન થઇ શકે નહીં એવો હોય તે મનુષ્ય વખાણવા લાયક છે. બળવાન્ પુરૂષનો સંગ્રહ ધનથી કરાય છે, અને તે ધન પહેલાં ન હોય તોએ વ્યવસાયી પુરૂષોજ વ્યવસાયથી ઉપાર્જન કરી શકે છે. તાત્પર્ય, વ્યવસાય કરવાથી ધન મળે

છે, ધનથી સારા માણસ પાસે રખાય છે, અને સારા માણસનુ બળ હોય તો તેને કોઇ ચલાવી શકતો નથી, અને એવોજ પુરૂષ જગત્મા સ્તુતિપાત્ર છે (૧૦૫)

अनल्पैः किमहो जल्पै-र्व्यवसायः श्रियो मुखम् ॥
अर्ज्या श्रीः सा च या वृद्ध्यै, दानभोगकरी च या ॥१०६॥

અર્થ —ઘણુ શુ કહિએ ? વ્યવસાય (ઉદ્યમ) તે લક્ષ્મીનુ આવવાનુ દ્વાર છે માટે જે લક્ષ્મીથી દ્રવ્યની વૃદ્ધિ, દાન અને ભોગ એ ત્રણ વાના થાય છે, તે લક્ષ્મીનુ (વ્યવસાયથી) અવશ્ય ઉપાર્જન કરવુ (૧૦૬)

व्यवसाये निधौ धर्मे- भोगयोः पोष्यपोषणे ॥
चतुरश्चतुरो भागा-नायस्यैव नियोजयेत् ॥१०७॥

અર્થ --વ્યવસાય કરતા જે લાભ થાય તેના ચતુર પુરૂષે ચાર ભાગ કરવા તેમા એક ભાગ ભડારમા, બીજો ધર્મમા, ત્રીજો ભોગમા અને ચોથો કુટુબના પોષણમા લગાડવો (૧૦૭)

न लालयति यो लक्ष्मीं, शास्त्रीयाविधिनामुना ॥
सर्वथैव स निःशेष-पुरुषार्थबहिष्कृतः ॥१०८॥

અર્થ —જે મનુષ્ય શાસ્ત્રમા કહેલી વિધિ પ્રમાણે લક્ષ્મીને લડાવતો નથી, તે પુરૂષ ચારે પુરૂષાર્થની બહાર જાણવો (૧૦૮)

सा च संजायते लक्ष्मी-र्क्षीणा व्यवसायतः ॥
प्रावृषेण्यपयोवाहा-दिव काननकाम्यता ॥१०९॥

અર્થ —જેમ વર્ષાકાળના મેઘથી વનની શોભા અખુટ વધે છે તેમ વ્યવસાય (ઉદ્યમ) કરવાથી લક્ષ્મી અખુટ વધે છે (૧૦૯)

व्यवसायोऽप्यसौ पुण्य–नैपुण्यसचिवो भवेत् ॥
सफलः सर्वदा पुंसां, वारिसेकादिव द्रुमः ॥११०॥

અર્થઃ—જેમ પાણી સીંચવાથી વૃક્ષ સફળ થાય છે, તેમ પૂર્વભવના પુણ્યનું અને મનુષ્યની નિપુણતાનું સાહાય્ય મળવાથી વ્યવસાય સફલ થાય છે. (૧૧૦)

पुण्यमेव मुहुः केऽपि, प्रमाणीकुर्वतेऽलसाः ॥
निरीक्ष्य तद्वतां द्वारि, ताम्यतो व्यवसायिनः ॥१११॥

અર્થઃ—કેટલાએક આળસુ લોકો પુણ્યવંતને ઘરે રખડતા વ્યાપારીઓને જોઇને હમેશાં પુણ્યપરજ આધાર રાખે છે. (૧૧૧)

तदयुक्तं यतः पुण्य–मपि निर्व्यवसायकम् ॥
सर्वथा फलवन्नात्र, कदाचिदवलोक्यते ॥११२॥

અર્થઃ—તે વાત અયુક્ત છે. કારણ, પુણ્ય પણ સર્વથા ઉદ્યમ વિના સફળ થએલું આ લોકમાં કોઇ કાળે પણ દેખાતું નથી. (૧૧૨)

द्वावप्येतौ ततो लक्ष्म्या, हेतू ननु पृथक्पृथक् ॥
तेन कार्यो गृहस्थेन, व्यवसायोऽनुवासरम् ॥११३॥

અર્થઃ—પૂર્વભવનું પુણ્ય અને ઉદ્યમ એ બન્ને ભેગાં લક્ષ્મીનાં કારણ છે. પણ એમાં એક વગર બીજો સ્વતંત્રપણાથી લક્ષ્મીનું કારણ થઇ શકતો નથી. માટે ગૃહસ્થ મનુષ્યે પ્રતિદિન ઉદ્યમ કરવો. (૧૧૩)

कालेऽशनमुचितं वस्त्र- ममल सदन निजम् ॥
अर्थोऽर्थ्याप्यायकश्चैत-द्व्यवसायतरोः फलम् ॥ ११४ ॥

અર્થ—અવસર ઉપર ઉચિત ભોજન કરવુ, ઉચિત વસ્ત્રો પહેરવા, પોતાનુ ઘર ચોખ્ખુ રાખવુ, તથા યાચકોને સંતોષ થાય એટલુ દ્રવ્ય આપવુ, એ ઉદ્યમરૂપ વૃક્ષના ફળ જાણવા [૧૧૪]

इत्थं किल द्वितीय-तृतीयमहरार्धकृत्यमखिलमपि ॥
हृदि कुर्वन्तः सन्तः, कृत्यविधौ नात्र मुह्यन्ति ॥११५॥

इति श्रीजिनदत्तसूरिविरचिते विवेकविलासे दिनचर्यायां द्वितीय उल्लास ॥ २ ॥

અર્થ—એવી રીતે સંપૂર્ણ બીજા પ્રહરના તથા ત્રીજા અર્ધા પ્રહરના સમસ્ત કૃત્યો કહ્યા જે સત્પુરૂષો એ કૃત્યોને મનમા રાખે છે તે કરવા યોગ્ય કામમા કદી પણ મુંઝાતા નથી [૧૧૫]

ઈતિ શ્રીવિવેકવિલાસની ગુર્જરભાષાનો
દ્વિતીય ઉલ્લાસ સંપૂર્ણ.

अथ तृतीय उल्लासः ।

बहिःस्थोऽभ्यागतो गेह-मुपविश्य क्षण सुधीः ॥
कुर्याद्वस्त्रपरावर्तं, देहशौचादि कर्म च ॥१॥

અર્થ—ડાહ્યા પુરૂષે બહારથી ઘેર આવી ક્ષણમાત્ર બેસવુ. પછી પહેરેલા વસ્ત્રો બદલવા, અને દેહની શુદ્ધિને અર્થે સ્નાનાદિક કર્મ કરવા [૧]

स्थूलसूक्ष्मविभागेन, जीवाः संसारिणो द्विधा ॥
मनोवाक्काययोगैस्तान्, गृही हन्ति निरन्तरम् ॥२॥

અર્થઃ—સંસારી જીવ સ્થુલ અને સૂક્ષ્મ એવા બે પ્રકારના છે. તેમને ગૃહસ્થ મનુષ્ય હમેશાં મન, વચન અને કાયા એ ત્રણેના યોગથી હણે છે. (૨)

पेषणी कण्डनी चुल्ली, गर्गरी वर्धनी तथा ॥
अमी पापकराः पञ्च, गृहिणो धर्मबाधकाः ॥३॥

અર્થઃ—ઘંટી, ખાંડણી, ચૂલો, ગાગર અને સાવરણી એ પાંચે પાપકારક વસ્તુ ગૃહસ્થના ધર્મને બાધા કરનારી છે. (૩)

गदितोऽस्ति गृहस्थस्य, तत्पातकविघातकः ॥
धर्मः सविस्तरो बुद्धै–रश्रान्तं तं समाचरेत् ॥४॥

અર્થઃ—તે પાતકોનો નાશ કરનાર એક ધર્મજ છે. તે જ્ઞાની લોકોએ ઘણા વિસ્તાર સહિત કહ્યો છે. સત્પુરૂષોએ તે ધર્મ નિરંતર આચરવો. [૪]

दया दानं दमो देव–पूजा भक्तिर्गुरौ क्षमा ॥
सत्यं शौचं तपोऽस्तेयं, धर्मोऽयं गृहमेधिनाम् ॥५॥

અર્થઃ—દયા, દાન, ઇંદ્રિય દમન, દેવની પૂજા, ગુરૂ ઉપર ભક્તિ, ક્ષમા, સત્ય, પવિત્રતા, તપસ્યા અને ચોરી ન કરવી એ દસ પ્રકારનો ગૃહસ્થનો ધર્મ છે. (૫)

अनन्यजन्यं सौजन्यं, निर्माया मधुरा गिरः ॥
सारः परोपकारश्च, क्रमो धर्मविदामयम् ॥६॥

અર્થઃ—સર્વોત્તમ સજ્જનતા રાખવી, કપટરહિત મીઠાં વચન બોલવાં, અને સારભૂત પરોપકાર કરવો, એ ધર્મના જાણ પુરૂષોની રીતિ છે. (૬)

दीनोद्धरणमद्रोहो, विनयेन्द्रियसयमौ ॥
न्याय्या वृत्तिर्मृदुत्व च, धर्मोऽय पाप्मनाश्छेद् ॥७॥

અર્થ—દીન જનનો ઉદ્ધાર કરવો, કોઇની જોડે મત્સર ન કરવો, વિનય કરવો, ઇંદ્રિયો વશ રાખવી, ન્યાય માર્ગે ચાલવુ, અને કોમળતા રાખવી, એ ધર્મથી પાપનો નાશ થાય છે (૭)

कृत्वा माध्याह्निकीं पूजा, निवेद्यान्नादि भाजने ॥
नरः स्वगुरुदेवेभ्योऽन्यदेवेभ्यश्च ढौकयेत् ॥८॥

અર્થ—મનુષ્યે મધ્યાન્હ કાળની પૂજા કરી પાત્રમા અન્નાદિક મૂકી ઘરમા તથા મદિરમા રહેલી જિનપ્રતિમા આગળ નૈવેદ્ય ધરવુ (૮)

अनाहूतमविज्ञात, दानकालसमागतम् ॥
जानीयादतिथिं प्राज्ञ, एतस्माद्व्यत्यये परम् ॥९॥

અર્થ—જે અજાણ્યો મનુષ્ય બોલાવ્યા વિના દાન દેવાને અવસરે ઓચિતો આવીને ઉભો રહે, તેને જાણ પુરૂષે અતિથિ જાણવો એવો ન હોય તો પરોણો કહેવાય (૯)

अतिथीनर्थिनो दुःस्थान्, भक्तिशक्त्यनुकम्पनैः ॥
कृत्वा कृतार्थानौचित्या-द्भोक्तु युक्तं महात्मनाम् ॥१०॥

અર્થ—મહાત્મા પુરૂષોએ અતિથિને ભક્તિથી, યાચકને શક્તિ પ્રમાણે તથા દીનને દયાથી દેશકાળને અનુસરતુ દાન દઇને પછી પોતે ભોજન કરવુ યુક્ત છે (૧૦)

आर्तस्तृष्णाक्षुधाभ्यां यो, वित्रस्तो वा स्वमन्दिरम् ॥
आगतः सोऽतिथिः पूज्यो, विशेषेण मनीषिणा ॥११॥

અર્થઃ—સુજાણ પુરૂષે તૃષાથી તથા ક્ષુધાથી પીડાતા અને બીક પામેલા એવા પોતાને ઘરે આવેલા લોકોને અતિથિ જાણી તેમની વિશેષ પૂજા (આદરમાન) કરવી જોઇયે. (૧૧)

कोविदो वाथवा मूर्खो, मित्रं वा यदि वा रिपुः ॥
निदानं स्वर्गभोगाना–मशनावसरेऽतिथिः ॥१२॥

અર્થ—પંડિત અથવા મૂર્ખ, મિત્ર અથવા શત્રુ ગમે તે હોય, તોપણ તે જો ભોજનને અવસરે અતિથિ તરિકે આવે તો તે સ્વર્ગસુખનો આપનાર સમજવો. (૧૨)

न प्रश्नो जन्मनः कार्यो, न गोत्राचारयोरपि ॥
नापि श्रुतसमृद्धीनां, सर्वधर्ममयोऽतिथिः ॥१३॥

અર્થઃ—જે અતિથિ આવ્યો હોય તેને તેના જન્મનો, ગોત્રનો તથા સંપ્રદાયનો પ્રશ્ન ન કરવો. તેમજ તેના જ્ઞાનની પણ પૃચ્છા ન કરવી. કારણ, અતિથિ તરિકે આવ્યો તે સર્વ ધર્મમય હોય છે. (૧૩)

तिथिपर्वहर्षशोका–स्त्यक्ता येन महात्मना ॥
धीमद्भिः सोऽतिथिर्ज्ञेय, परः प्राघूर्णिको मतः॥१४॥

અર્થઃ—જે મહાપુરૂષે તિથિ, પર્વ, હર્ષ, શોક પ્રમુખ સંસારનાં કર્મ છોડયાં, તેને પંડિત પુરૂષોએ અતિથિ જાણવો. અને એથી અન્ય હોય તે તો પરોણો જાણવો. (૧૪)

मन्दिराद्विमुखो यस्य, गच्छत्यतिथिपुङ्गवः ॥
जायते महती तस्य, पुण्यहानिर्मनस्विनः ॥१५॥

અર્થઃ—અતિથિ નિરાશ થઇ જેના ઘેરથી પાછો જાય, તે

માણસ ગમે તેટલો જાણ હોય તોપણ તેના પુણ્યની મોટી હાનિ થાય છે (૧૫)

अतिथिर्यस्य भग्नाशो, गृहात्प्रतिनिवर्तते ॥
स तस्मै दुष्कृतं दत्वा, पुण्यमादाय गच्छति ॥१६॥

અર્થ —અતિથિ જેના ઘરથી આશાભંગ થવાને લીધે પાછો જાય છે, તે (અતિથિ) તે ઘરધણીને પાપ દઈ પુણ્ય લઈ જાય છે (૧૬)

एकतः कुरुते वाञ्छा, वासवः कीटिकान्यतः ॥
आहारय ततो दक्षै-र्दानं देय शुभार्थिभिः ॥१७॥

અર્થ —એક કોરથી ઇંદ્ર આહારની વાંછા કરે છે, અને બીજી કોરથી એક કીડી પણ આહારની વાછના કરે છે માટે શુભ ભાવના અર્થી દક્ષ પુરૂષોએ અવશ્ય દાન દેવું. (૧૭)

क्षुधाक्रान्तस्य जीवस्य, पञ्च नश्यन्त्यसंशयम् ॥
सुवासनेन्द्रियबलं, धर्मकृत्य रतिः स्मृतिः ॥१८॥

અર્થ —ક્ષુધાથી પીડાતા મનુષ્યની સારી વાસના, ઇંદ્રિયોનું બળ, ધર્મનું કૃત્ય, ચિત્તની સમાધિ અને સ્મૃતિ (યાદદાસ્તી) એ પાંચેનો નાશ થાય છે (૧૮)

देवसाधुपुरस्वामि-स्वजनव्यसनादिषु ॥
ग्रहणे च न भोक्तव्यं, सत्या शक्तौ विवेकिना ॥१९॥

અર્થ —વિવેકી પુરૂષે દેવ, સાધુ, નગરનો રાજા તથા પોતાના સ્વજન કઈ સંકટમાં આવી પડયા હોય, અથવા સૂર્ય-ચંદ્રનું ગ્રહણ થતું હોય તો ભોજન ન કરવું (૧૯)

पितुमातुः शिशूनां च, गर्भिणीवृद्धरोगिणाम् ॥
प्रथमं भोजनं दत्वा, स्वयं भोक्तव्यमुत्तमैः ॥२०॥

અર્થ:—ઉત્તમ પુરૂષોએ પિતા, માતા, બાળક, ગર્ભવતી સ્ત્રી, વૃદ્ધ માણસ અને રોગી એ સર્વેને ભોજન દઈને પછી પોતે જમવું. (૨૦)

चतुष्पदानां सर्वेषां, धृतानां च तथा नृणाम् ॥
चिन्तां विधाय धर्मज्ञः, स्वयं भुञ्जीत नान्यथा ॥२१॥

અર્થ:—ધર્મના જાણ મનુષ્યે પોતાના સર્વે પશુઓની તથા તાબાના માણસોની ખબર લીધા પછી પોતે ભોજન કરવું. તે વગર નહીં. (૨૧)

अग्नावुदीर्णे जातायां, बुभुक्षायां च भोजनम् ॥
आयुर्बलं च वर्णं च, संवर्धयति देहिनाम् ॥ २२ ॥

અર્થ:—જઠરાગ્નિ પ્રદીપ્ત થાય, અને ખાવાની ઇચ્છા થાય, ત્યારે ભોજન કરવાથી મનુષ્યનું આયુષ્ય, બળ અને શરીરની કાંતિ વધે છે. (૨૨)

अजीर्णे पुनराहारो, गृह्यमाणः प्रकोपयेत् ॥
वातं पितं तथा श्लेष्मं-दोषमाशु शरीरिणाम् ॥ २३ ॥

અર્થ:—ખાધેલું પચન થયા વગર ઉપરથી વળી આહાર કર્યો હોય, તો માણસના વાત, પિત્ત તથા કફ એ ત્રણે દોષનો પ્રકોપ થાય છે. (૨૩)

रोगोत्पत्तिः किलाजीर्णा-च्चतुर्धा तत्पुनः स्मृतम् ॥
रसशेषामविष्टब्ध-विपक्वादिविभेदतः ॥ २४ ॥

અર્થ—ખાધેલુ પચન ન થાય તે અજીર્ણ કહેવાય છે સર્વે રોગોની ઉત્પત્તિ અજીર્ણથી થાય છે તે અજીર્ણ રસશેષ, આમ, વિષ્ટબ્ધ અને વિપકવ એવા ચાર પ્રકારનુ છે વળી બીજા પણ અજીર્ણના પ્રકાર કહ્યા છે (૨૪)

रसशेषे भवेज्जृम्भा, समुद्गारस्तथामके ॥
अङ्गभङ्गश्च विष्टब्धे, धूमोद्गारो विपक्वतः ॥ २५ ॥

અર્થ—રસશેષ અજીર્ણ થયુ હોય તો બગાસા આવે, આમ અજીર્ણ થયુ હોય તો ઓડકાર આવે, વિષ્ટબ્ધ અજીર્ણ થયુ હોય તો શરીર તૂટે, અને વિપકવ અજીર્ણ થયુ હોય તો ધૂમાડો બાહર પડતો હોય એમ લાગી ઓડકાર આવે (૨૫)

निद्रानुवमनस्वेद–जलपानादिकर्मभिः
सदा पथ्यविदा तानि, शान्तिमायान्त्यनुक्रमात् ॥२६॥

અર્થ—રસશેષ અજીર્ણ હોય તો (ભોજન કરતા પહેલા) સુઇ રહેવુ, આમ અજીર્ણ હોય તો ઉલટી કરવી, વિષ્ટબ્ધ અજીર્ણ હોય તો પરસેવો કાઢવો, અને વિપકવ અજીર્ણ થયુ હોય તો જળપાન કરવુ સદા એ પથ્યના જાણ માણસોના ચારે પ્રકારના અજીર્ણ ઉપર કહેલા ઉપાયથી અનુક્રમે શાંતિ પામે છે (૨૬)

स्वस्थानस्थेषु दोषेषु, जीर्णेऽभ्यवहृते पुनः ॥
स्याता स्पष्टौ शकृन्मूत्र–वेगौ वातानुलोम्यतः ॥ २७ ॥

અર્થ—શરીરમા રહેલા કફ, વાત, અને પિત્ત એ ત્રણે જો પોત પોતાને ઠેકાણે રહેલા હોય, અને ખાધેલુ

પાચન થાય, ત્યારે કોઠામાં રહેલો વાયુ અનુલોમ (સીધી-ગતિવાળો) હોવાથી મળમૂત્રના વેગ ખુલ્લા આવે છે, એટલે મળમૂત્ર સાફ થાય છે. (૨૭)

स्रोतोमुखहृदुद्गारा, विशुद्धाः स्युः क्षणात्तथा ॥
पटुत्वल्लाघवे स्यातां, तथेन्द्रियशरीरयोः ॥ २८ ॥

અર્થઃ—અજીર્ણાદિ વિકાર ન હોય તો મળમૂત્ર ત્યાગ કરી રહ્યા પછી ક્ષણ માત્રમાં નાસિકા આદિક શરીરનાં છિદ્ર તથા હૃદય શુદ્ધ થાય, ઓડકાર દુર્ગંધરહિત તથા રસ વિનાના શુદ્ધ આવે છે, અને ઇંદ્રિયો તથા શરીર હલકાં અને પોતાનું કામ કરવાને દક્ષ થાય છે. (૨૮)

अतिप्रातश्च संध्यायां, रात्रौ कुत्सन्नथ व्रजन् ॥
सव्यांघ्रौ दत्तपाणिश्च, नाद्यात्पाणिस्थितं तथा ॥ २९ ॥

અર્થઃ—સવારમાં બહુ વહેલું, સંધ્યાકાળે, રાત્રિએ, અન્નની નિંદા કરતાં, રસ્તે જતાં, ડાબા પગ ઉપર હાથ મૂકીને તથા ખાવાની વસ્તુ ડાબા હાથ ઉપર લઇને ભોજન કરવું નહીં. (૨૯)

साकाशे सातपे सान्ध-कारे द्रुमतलेऽपि च ॥
कदाचिदपि नाश्नीया-दूर्ध्वीकृत्य च तर्जनीम् ॥ ३० ॥

અર્થઃ—તદ્દન ખુલ્લી જગ્યામાં, તડકામાં, અંધારામાં, ઝાડના તળે અને તર્જની (અંગુઠા પાસેની) આંગળી ઉંચી કરીને કોઇ સમયે પણ ભોજન કરવું નહીં. (૩૦)

अधौतमुखहस्तांघ्रि-र्नग्नश्च मलिनांशुकः ॥
सव्येन हस्तेनोपात्त-स्थालो भुञ्जीत न क्वचित् ॥ ३१ ॥

અર્થ—મુખ, હાથ અને પગ ધોયા વિના, નગ્ન અવસ્થામા, મલિન વસ્ત્ર પહેરીને તથા ડાબે હાથે થાળી પકડી ને કોઇ કાળે ભોજન કરવુ નહીં (૩૧)

एकवस्त्रान्वितश्चार्द्र-वासा वेष्टितमस्तकः ॥

अपवित्रोऽतिगार्द्ध्यश्च, न भुञ्जीत विचक्षणः ॥३२॥

અર્થ—વિચક્ષણ પુરૂષે એક વસ્ત્ર પહેરીને, અથવા ભીનુ વસ્ત્ર પહેરીને, વસ્ત્રથી માથુ વીટીને, શરીર અપવિત્ર છતા તથા ખાવાની વસ્તુ ઉપર ઘણીજ લાલચ રાખીને ભોજન કરવુ નહીં (૩૨)

उपानत्सहितो व्यग्र—चित्तः केवलभूस्थितः ॥

पर्यङ्कस्थो विदिग्याम्या—ननो नाद्यात्कृशासनः ॥३३॥

અર્થ—પગરખા પહેરીને, ઉતાવળા ચિત્તથી, કેવળ ભૂમી ઉપર બેસીને, ખાટલે બેસીને, આગ્નેય, નૈઋત્ય, વાયવ્ય, ઈશાન એ ચાર વિદિશા તથા દક્ષિણ દિશા તરફ મુખ કરીને અને સાકડા આસન ઉપર બેસીને ભોજન ન કરવુ (૩૩)

आसनस्थपदो नाद्या—च्चण्डालैश्च निरीक्षितः ॥

पतितैश्च तथा भिन्ने, भाजने मलिनेऽपिच ॥३४॥

અર્થ—આસન ઉપર પગ દઈ, ચડાળોના અને ધર્મભ્રષ્ટ પુરૂષોના દેખતા તથા ભાગેલા અથવા મલિન વાસણમા ભોજન કરવુ નહીં (૩૪)

अमेध्यसम्भवं नाद्या—द्दृष्ट भ्रूणादिघातकैः ॥

रजस्वलापरिस्पृष्ट—माघ्रात गोश्वपक्षिभिः ॥३५॥

અર્થઃ—અપવિત્ર વસ્તુથી બનેલી ચીજ ખાવી નહીં. તથા ગર્ભ, સ્ત્રી, બાળક ઇત્યાદિકની હત્યા કરનારાઓએ દીઠેલું, રજસ્વલા સ્ત્રીએ અડેલું, અને બળદ, કુત્રા અને પક્ષી એમણે સુંઘેલું અન્ન ભક્ષણ ન કરવું. (૩૫)

अज्ञातागममज्ञातं, पुनरुष्णीकृतं तथा ॥
युक्तं चवचवचाशब्दै–र्नाद्याद्वक्त्रविकारवान् ॥३६॥

અર્થઃ—આ અન્ન કયાંથી આવેલું છે, એમ જાણ્યા વિના તથા જેનું નામ પણ અજાણ્યું હોય, તથા બે વાર ઉન્હું કરેલું એવું અન્ન ખાવું નહીં. તેમજ ભોજન કરતી વખતે ચબ ચબ એવો શબ્દ ન કરવો, અને મુખ વાંકું અથવા બીજી કોઇ પણ રીતે ખરાબ દેખાય એવું ન કરવું. (૩૬)

आह्वानोत्पादितप्रीतिः, कृतदेवाभिधास्मृतिः ॥
समे पृथौ च नात्युच्चैः, निविष्टो विष्टरे स्थिरे ॥३७॥
मातृष्वस्त्रम्बिकाजामि–भार्याद्यैः पक्वमादरात् ॥
शुचिभिर्भुक्तवद्भिश्च, दत्तमद्यात्जनैः सह ॥३८॥

અર્થઃ—જાણ મનુષ્યે પાસે રહેલા લોકોને બોલાવવાથી પ્રીતિ ઉપજાવી, ભગવાનનું નામ સ્મરણ કરી, તથા સમાન, પહોળા અને ઘણું ઉંચું નહીં એવા આસન ઉપર બેસી માશી, મા, બ્હેન, પોતાની સ્ત્રી વિગેરે સ્ત્રીઓએ રાંધેલું અને પવિત્ર તથા ખાઇને ધરાયલા લોકોએ પિરસેલું અન્ન પોતાના બાંધવની જોડે ભક્ષણ કરવું. (૩૭) (૩૮)

कुक्षिंभरिर्न कः कोऽत्र, बह्वाधारः पुमान् पुमान् ॥
ततस्तत्कालमायातान्, भोजयेद्बान्धवादिकान् ॥३९॥

અર્થ —આ જગત્મા પોતાનુ પેટ કોણ ભરતુ' નથી? માટે જે ઘણા લોકોને આધાર આપે તેજ પુરૂષ પુરૂષ કહેવાય તેથી ભોજનને અવસરે આવેલા પોતાના સગા વહાલાને તથા બીજાઓને પણ અવશ્ય જમાડવા (૩૯)

दत्वा दान सुपात्राय, स्मृत्वा वा श्रद्धयान्वितम् ॥
येऽश्नन्ति ते नरा धन्याः, किमाद्यैर्नैरराधमैः ॥४०॥

અર્થ —જે મનુષ્ય સુપાત્રને દાન દઇ અથવા સુપાત્રનો યોગ ન હોય તો શ્રદ્ધાથી ભાવના ભાવી ભોજન કરે છે, તે ધન્ય છે બીજા પોતાનુ જ પેટ ભરનારા ખાધરા અધમ નરોના હાથથી શુ સારૂ થવાનુ ? (૪૦)

ज्ञानयुक्तः क्रियाधार', सुपात्रमभिधीयते ॥
दत्त बहूफल तत्र, धेनुक्षेत्रनिदर्शनात् ॥४१॥

અર્થ —જ્ઞાની અને ક્રિયાપાત્ર જે સાધુ તે સુપાત્ર કહેવાય છે જેમ થોડા દિવસ ઉપર જન્મેલી ગાયને ખવરાવવુ તથા સારા ક્ષેત્રમા વાવવુ ઘણુ ફલદાયિ થાયછે, તેમ સુપાત્ર મુનિરાજને આહારાદિ દીધાથી બહુ ફલ થાયછે (૧)

कृतमौनमवक्राङ्ग, वहद्दक्षिणनासिकम् ॥
कृतभक्ष्यसमाघ्राण, हृतदृग्दोषविक्रियम् ॥४२॥
नातिक्षार नचात्यम्ल, नात्युष्ण नातिशीतलम् ॥
नातिशाक नातिगौल्य, मुखरोचकमुच्चकै. ॥४३॥
सुस्वादविगतास्वाद–विकथापरिवर्जितम् ॥
शास्त्रवर्जितनिःशेषा–हारत्यागमनोहरम् ॥४४॥

सत्त्वमाल्लनिर्मुक्तं, नात्याहारमनल्पकम् ॥
अनिन्द्यमशनान्नं, संकथाल्पादिगुण्ठम् ॥४५॥
स्निग्धमृदुशर्करादि—मधुरान्ते महामतिः ॥
भुञ्जीत यत्नपक्वं, जनाढ्यं पुष्कलं जलम् ॥४६॥

અર્થઃ—બુદ્ધિશાળી પુરૂષે જમતી વખતે વાતચિત વર્જીને છાને મોન કરી, શરીરના સર્વ અવયવ સમા રાખી, ખાવાની વસ્તુ સુંઘીને અને દૃષ્ટિદોષ ટાળીને બહુ ખારૂં નહીં, બહુ ખાટું નહીં, બહુ ઉનું નહીં, બહુ ટાઢું નહીં, બહુ શાકવાળું નહીં, બહુ ચીકું નહીં, પ્રમાણથી વધારે નહીં, ઓછું પણ નહીં આ સૂત્રમાં વર્જિત કરેલી વસ્તુથી તથા જે વસ્તુની બાધા લીધી હોય તે વસ્તુથી રહિત, જેની અંદર આવેલી સર્વે વસ્તુ શ્રેષ્ઠ છે, તથા સારી પેઠે રાંધવામાં આવવાથી જેનો સ્વાદ બહુ મનોહર છે એવું ભોજન ઘણી તૃપ્તિ ઉપજાવનારૂં અન્ન સ્વાદિષ્ટ વસ્તુની સ્તુતિ તથા નિરસ વસ્તુની નિંદા વર્જીને ભક્ષણ કરવું. ભોજન અર્ધું થઈ રહે ત્યારે પાણી પીવું. કારણ તે વખત પાણી પીવું અમૃતસમાન છે. અને ભોજનને છેડે ઘણું પાણી ન પીવું. કારણ, તે વખતે પાણી પીવું વિષસમાન છે. (૪૨) (૪૩) (૪૪) (૪૫) (૪૬)

स्निग्धमधुरैः पूर्व—मश्नीयादन्वितं रसैः ॥
द्रवाम्ललवणैर्मध्ये, पर्यन्ते कटुतिक्तकैः ॥४७॥

અર્થઃ—ભોજન કરતાં પ્રથમ સારી સ્નિગ્ધ (ઘીવાળી તથા તેલવાળી) તથા મધુર (મીઠી) વસ્તુ ખાવી. વચમાં પ્રવાહી ખાટી અને ખારી વસ્તુ ખાવી. અને છેડે તીખી તથા કડવી વસ્તુ ખાવી. (૪૭)

नामिश्र लवण ग्राह्य, नैव केवलपाणिना ॥
रसानपि न वैरस्य-हेतून्संयोजयेन्मिथः ॥४८॥

અર્થ —એકલુ જુદુ લવણ ન લેવુ તથા તે કેવળ હાથથી ન લેવુ જેથી વસ્તુ વિરસ (સ્વાદ વિનાની અથવા માઠા સ્વાદની)થઈ જાય એવી મધુરાદિ રસની આહોમાહે મેળવણી ન કરવી (૪૮)

त्यजेत्क्षारमभूतान्न-मन्न दग्धादिक त्यजेत ॥
कीटास्थिप्रमुखैर्युक्त-मुच्छिष्ट चाखिल त्यजेत् ॥४९॥

અર્થ —જેમા ક્ષાર (લવણ અથવા ખારો) ઘણો નાખેલો હોય એવુ તથા બળી ગયેલુ, બરાબર નહીં ચડેલુ, કીટાદિ જીવ તથા હાડકા વગેરેથી મિશ્ર થયેલુ તથા કોઈનુ એઠુ થએલુ એવુ અન્ન સર્વ મુકી દેવુ (૪૯)

धेन्वा नवप्रसूताया, दशाहान्तर्भव पयः ॥
आरण्यकानिकाष्ट्र च, तथैकशफ त्यजेत् ॥५०॥

અર્થ —નવી વીઆએલી ગાયનુ દુધ દસ દિવસ સુધી ન લેવુ તથા જગલી સ્તનવરોનુ, ગાડરનુ, ઉટણીનુ અને સર્વે એક ખરવાળા પશુઓનુ દૂધ ન લેવુ (૫૦)

नि स्वादमन्न कटु वा, ह्यमप्यश्नतो यदि ॥
तन्स्वस्यान्यस्य वा कष्ट, मृत्युः स्वस्यार्चा पुनः ॥५१॥

અર્થ —મનોહર અન્ન ખાતા છતા પણ જો સ્વાદવિનાનુ કડવુ લાગે, તો તેથી પોતાને અથવા પરને કષ્ટ થાય, અને

જો સારૂં અન્ન ખાતાં પણ અરૂચિ ઉત્પન્ન થાય તો પોતાનું મરણ થાય, અથવા મરણસમાન કષ્ટ આવી પડે એમ જાણવું. (૫૧)

भोजनानन्तरं सर्व—रसलिप्तेन पाणिना ॥
एकः प्रतिदिनं पेयो, जलस्य चुलुकोऽङ्गिना ॥५२॥

અર્થઃ—મનુષ્યે ભોજન કીધા પછી સર્વ રસથી ખરડાયલા હાથે પાણીનો એક કોગળો દરરોજ પીવો. (૫૨)

न पिबेत्पशुवत्तोयं, पीतशेषं च वर्जयेत् ॥
तथा नाञ्जलिना पेयं, पयः पथ्यं मितं यतः ॥५३॥

અર્થઃ—પાણી પશુની પેઠે ન પીવું, કોઈએ પીધા પછી ઉગરેલું (એઠું રહેલું) ન પીવું. તથા અંજલિથી (ખોબેથી) પણ ન પીવું. કારણ, પાણી માફક પીવું તેજ ગુણકારિ છે. (૫૩)

करेण सलिलार्द्रेण; न गण्डौ नापरं करम् ॥
नेक्षणे च स्पृशेत्किंतु, स्प्रष्टव्ये जानुनी श्रिये ॥५४॥

અર્થઃ—ભોજન કરી રહ્યા પછી ભીને હાથે બે ગાલ, બીજો હાથ અને બે નેત્ર એમને સ્પર્શ ન કરવો. પણ કલ્યાણને અર્થે પોતાના બે ઢીંચણે સ્પર્શ કરવો. (૫૪)

उक्तंच " ॥ मा करेण करं पार्थ, मा गल्लौ मा च चक्षुषी ॥
जानुनी स्पृश राजेन्द्र, भर्तव्या बहवो यदि ॥५५॥ "

અર્થઃ—કહ્યું છે કે, "હે રાજાધિરાજ અર્જુન ! તારે ઘણા માણસોનું પોષણ કરવું હોય તો, તું ભોજન કર્યા પછી ભીને હાથે બે ગાલને, બીજા હાથને, તથા બે ચક્ષુને સ્પર્શ નહીં કર, પણ ઢીંચણને સ્પર્શ કર." (૫૫)

समाना जातिशीलाभ्यां, स्वसाम्यादिक्यसस्पृशाम् ॥
भोजनाय गृहे गच्छे—द्वच्छेद्देषवता न तु ॥५६॥

અર્થ — જે જાતથી તથા શીળથી આપણી બરાબરીનો હોય, તથા આપણને પોતાની માફક અથવા પોતાથી પણ વધારે માનતો હોય તેને ઘરે ભોજન કરવા જવુ પણ જે આ પણા દ્વેષી હોય તેમને ત્યા ન જવુ (૫૬)

मुमूर्षुवध्यचौराणां, कुल्टालिङ्गिवैरिणाम ॥
बहुवैरवतां कल्प—पालोच्छिष्टान्नभोजिनाम् ॥५७॥
कुकर्मजीविनामुग्र—पतितासवपायिनाम ॥
बह्वोपजीविविक्रति—सान्यभर्तृकयोपिताम् ॥५८॥
धर्मविक्रयिणां राज—महाजनविरोधिनाम् ॥
स्वयं हनिष्यमाणानां, गृहे भोज्यं न जातु चित ॥५९॥

અર્થ —મરણને કાંઠે આવેલા, રાજાદિકને વધ કરવા યોગ્ય થયેલા, ચોર, વેશ્યા, કુમાર્ગી લિંગધારી, વૈરી, જેના વૈરી ઘણા એવા, મદ્યનો વિક્રય કરનાર (કલાલ), એઠુ અન્ન ભક્ષણ કરનાર, કુકર્મ કરી પોતાનો નિર્વાહ કરનાર, ઉગ્ર, પાપના કરનાર, રગનાર, બે ભર્તારવાળી સ્ત્રી, ધર્મને વેચનાર, રાજાના તથા મહાજનના વૈરી, જેથી ભવિષ્ય કાળમા પોતાની હાની થાય એવુ કામ કરનાર, મદ્યપાન કરનાર અને મહાપાતક આચરવાથી પતિત થએલા એટલા માણસોને ઘરે કોઇ કાળે પણ જમવુ નહી (૫૭)(૫૮)(૫૯)

भोजनानन्तरं याच्यं, शलाकाद्वयमादरात् ॥
गणिका पतिता भूमा—वायुर्वित्तं न रोपिते ॥६०॥

અર્થઃ—ભોજન કર્યા પછી આદરથી બે સળીઓ (દાંત ખોતરવા માટે) માગવી, જો તેમાંથી એક નીચે પડે, તો આયુષ્યની તથા દ્રવ્યની હાનિ જાણવી. (૬૦)

भोजनानन्तरं वाम—कटिस्थो घटिकाद्वयम् ॥
शयीत निद्रया हीनं, पूर्वं पदशतं व्रजेत ॥६१॥

અર્થઃ—ભોજન કર્યા પછી પ્રથમ સો પગલાં ચાલવું, અને પછી બે ઘડી ડાબે પડખે નિદ્રા લીધા વિના સુવું. (૬૧)

अङ्गमर्दननीहार—भारोत्क्षेपोपवेशनम् ॥
स्नानाद्यं च कियत्कालं, भुक्त्वा कुर्यान्न बुद्धिमान् ॥६२॥

અર્થઃ—બુદ્ધિશાળી પુરૂષે ભોજન કર્યા પછી થોડીક વાર સુધી અંગમર્દન (શરીરની ચંપી) તથા નીહાર (મળ મૂત્રનો ત્યાગ ન કરવાં, ભાર ઉપાડવો નહીં, બેસી રહેવું નહીં, અને સ્નાન પ્રમુખ ક્રિયા પણ ન કરવી. (૬૨)

दशताम्रपलावर्ते, पात्रे वृत्तीकृते सति ॥
विधातव्यः समुत्सेधो, घटिकायां षडङ्गुलः ॥६३॥

विष्कम्भं तत्र कुर्वीत, प्रमाणे द्वादशाङ्गुलः ॥
षष्टयम्भःपलपूरेण, घटिका सद्भिरिष्यते ॥६४॥युग्मम्॥

અર્થઃ—દસ પળભાર તાંબાનું વાટલું (ગોળ) પાત્ર છ આંગળ ઉંચું અને બાર આંગળ પહોળું કરવું. નીચે છિદ્ર પાડી તેમાં સાઠ પળ પ્રમાણ પાણી પૂરવું. એવી ઘટિકા (ઘડી) વિદ્વાન્ પુરૂષોને માન્ય છે. (૬૩–૬૪)

चतुश्चत्वारिंशदथो, त्रिंशत्तत्पंचविंशती ॥
पञ्चदश त्रिंशदपि, चत्वारिंशच्चतुर्युताः ॥६५॥
षष्टिः सद्वादशा षष्टि-रशीतिश्च द्विसप्ततिः ॥
षष्टिर्मेषादिषु ज्ञेया, ध्रुवाङ्का शतसंयुता॰ ॥६६॥
रवि दक्षिणतः कृत्वा, ज्ञात्वा छायापदानि च ॥
तैः पादैः सप्तसंयुक्तै-र्भागं कृत्वा ध्रुवाङ्कतः ॥६७॥
लब्धाङ्केन घटीसंख्या, विजानीयाद्बुधः सदा ॥
पूर्वाह्णे गतकालस्य, शेषस्य त्वपराह्णके ॥६८॥

चतुर्भिः कलापकम् ॥

અર્થ —મેષથી માંડીને અનુક્રમે સૂર્યની બારે રાશીઓ ને વિષે, ૧૪૪, ૧૩૦, ૧૧૫, ૧૨૦, ૧૧૫, ૧૩૦, ૧૪૪, ૧૬૦, ૧૭૨, ૧૮૦, ૧૭૨, ૧૬૦ એ ધ્રુવાંક જાણવા. સૂર્યને જમણી બાજુએ ગણી પગે પોતાની છાયા માપવી. છાયાની જેટલી સંખ્યા આવી હોય તેમાં સાત ઉમેરવા અને તે આંકડાથી જે રાશિનો સૂર્ય હોય તે રાશિના ધ્રુવાંકને ભાગ-ગુ જે સંખ્યા આવે તે ઘડી જાણવી. બપોર થાય ત્યાં સુધી ગતકાળની ઘડી સંખ્યા જાણવી અને બપોર પછી શેષ રહેતા દિવસની ઘડી સંખ્યા જાણવી (૬૫) (૬૬) (૬૭)(૬૮).

मित्रोदासीनविद्वेषि-मयेऽमुत्र जगत्त्रये ॥
भवत्यप्यत्रहार्येषु, विनाश्येपोऽपि कश्चिन ॥६९॥

અર્થ —આ જગતમાં આપણા મિત્ર, ઉદાસીન (મધ્ય સ્થાનિ ભાવનું કરનાર) તથા શત્રુ એવા ત્રણ પ્રકારના મનુ

ષ્ય રહે છે. માટે ખાવાની વસ્તુમાં વખતે વિષ પ્રયોગ થવા-નો સંભવ છે. (૬૯)

धीमन्तः स्वहिताः सम्य-गमीभिर्लक्षणैः स्फुटम् ॥
प्रयुक्तमरिभिर्गुप्तं, विषं जानन्ति तद्यथा ॥७०॥

અર્થઃ—પોતાના હિતની ઇચ્છા કરનારા બુદ્ધિશાળી લોકો વૈરીએ વસ્તુમાં ગુપ્ત રીતે ભેળવેલું વિષ (ઝેર) આ (કહેશે તે) લક્ષણોથી પ્રગટ જાણી શકે છે. તે લક્ષણો આ પ્રમાણેઃ—(૭૦)

अविक्लेद्यं भवेदन्नं, पच्यमानं विषान्वितम् ॥
चिराच्च पच्यते सद्यः, पक्वं पर्युषितोपमम् ॥७१॥

અર્થઃ—વિષવાળું અન્ન રાંધતાં ભીનું ન રહે, ચડતાં ઘણીવાર લાગે, અને ચડે તો પાછું તુરત વાશી જેવું થઇ જાય. (૭૧)

स्तब्धमूष्माविनिर्मुक्तं, पिच्छिलं चन्द्रिकान्वितम् ॥
वर्णगन्धरसान्यत्व-व्यापितं च प्रजायते ॥७२॥

અર્થઃ—ઠરી ગયા સરખું, બાફ વિનાનું, અંદરથી પાણી છાંડતું, ચંદ્રિકાવાળું, અને જેના વર્ણ, ગંધ અને રસ સ્વાભાવિક જેવાં હોવાં જોઇયે તેથી વિપરીત થઇ ગયાં હોય તો તે વિષવાળું અન્ન જાણવું. (૭૨)

सविषाणि क्षणादेव, शुष्यन्ति व्यञ्जनान्यपि ॥
क्वाथे तु श्यामता फेनः, सीमन्ता बुद्बुदास्तथा ॥७३॥

અર્થઃ—વિષવાળાં વ્યંજન (ચટણી, રાયતું, શાક વિગેરે) ક્ષણ માત્રમાં સૂકાઇ જાય છે. અને જો ઝેરવાળો

ઉકાળો હોય તો તે કાળો પડી જાય છે, ફીણ આવે છે, લીટીઓ પડે છે, અને પરપોટા આવે છે (૭૩)

जायन्ते राजयो नीला, पयसि क्षीरे च लोहिताः ॥
स्युर्मद्यतोययोः कृष्णा, दध्नि श्यामास्तु राजयः ॥७४॥

અર્થ—એમા વિષ હોય તો તેમા નીલવર્ણ લીટીઓ પડે, દૂધમા હોય તો લાલ લીટીઓ પડે, મદ્યમા તથા પાણીમા હોય તો કાળી લીટીઓ પડે, અને દહીંમા હોય તો શ્યામવર્ણ લીટીઓ પડે (૭૪)

तक्रे तु नीलपीता स्या-त्कपोताभा तु मस्तुनि ॥
कृष्णा सौवीरके राजि-र्घृते तु जलसन्निभा ॥७५॥

અર્થ—છાસમા ઝેર હોય તો તેમા નીલી જેવા રંગની તથા પીળી લીટીઓ પડે. મસ્તુ-(દહીં ઉપર આવેલી નરાશ)મા હોય તો કપોત (કબૂતર, હોલા) પક્ષીના રંગ સરખો રંગ તેની ઉપર આવે, કાંજીમા કાળી લીટીઓ પડે અને ઘી ઉપર જળ જેવી પડે (૭૫)

द्रवौषधे तु कपिला, क्षौद्रे च कपिला भवेत् ॥
मांसे कृष्णा म्लानगन्धि, पाकः आम्रे फले क्षणात् ॥७६

અર્થ—પ્રવાહી ઔષધમા તથા મધમા ઝેર હોય તો તેમા કપિલવર્ણ (કાબરચિત્રી) લીટીઓ પડે, માંસમા હોય તો લાલ લીટીઓ પડે, અને તેમાથી માઠી દુર્ગંધિ આવે, અને કાચા ફળમા ઝેર હોય તો તે ફળ તત્કાળ પાકી જાય છે (૭૬)

सपाकानां फलानां च, प्रकोपः सहसा तथा ॥
जायेत म्लानिरार्द्राणां, संकोचश्च विषादिह ॥७७॥

અર્થઃ—પાકેલાં ફળોમાં ઝેર હોય તો તુરત તે ફાટી જાય, તથા સડી જાય. અને લીલી વસ્તુમાં ઝેર હોય તો તે કરમાઈ અને સંકોચાઈ જાય છે. (૭૭)

शुष्काणां श्यामताप्येवं, वैवर्ण्यं म्रदिमा पुनः ॥
कर्कशानां मृदूनां च, काठिन्यं जायते विषात् ॥७८॥

અર્થઃ—સુકાઇ ગયેલાં ફળોમાં ઝેર હોય તો તે કાળાં અને બેરંગ થઈ જાય છે. કઠણ ફળો ઝેરથી નરમ થાય છે, અને નરમ ફળો કઠણ થાય છે. (૭૮)

माल्यानां म्लानता स्वल्पो, विकासो गन्धहीनता ॥
स्याद्ध्यामपमण्डलत्वं च, संव्यानास्तरणे विषात् ॥७९॥

અર્થઃ—ફુલની માળાઓ ઝેરથી કરમાઈ જાય છે, બરાબર ખીલતી નથી, અને સુગંધિહીન થાય છે. ઓઢવાનાં અને પાથરવાનાં લુગડાં ઝેરવાળાં હોય તો તેની ઉપર કાળાં માંડલાં પડે છે. (૭૯)

मणिलोहमयानां च, पात्राणां मलदिग्धता ॥
स्वर्णरागप्रभास्पर्श—गौरवस्नेहसंक्षयः ॥८०॥

અર્થઃ—રતનનાં તથા ધાતુનાં પાત્રો ઝેરથી મેલાં થાય છે. અને સોનાના તો ઝેરથી રંગ, કાંતિ, કોમલ સ્પર્શ, ગુરૂત્વ [ભારેપણું] અને સ્નેહ એ સર્વે ગુણ જતા રહે છે. (૮૦)

दन्तानां शातनं रोम–पक्ष्मणां च भवेद्विषात् ॥
मत्वेदं तु परीक्षेत, तदन्नमग्न्यादिषु तद्यथा ॥८१॥

અર્થ — ઝેરથી દાંત, શરીર ઉપરના અને પાંપણના વાળ એ ત્રણે ખરી જાય છે વિષપ્રયોગનો જ શક આવે તો વિષવાળી વસ્તુ અગ્નિ આદિકમાં નાખી તેની પરીક્ષા કરવી (૮૧)

अन्नं हालाहलाकीर्णं, प्राप्य वैश्वानरो भृशम् ॥
एकावर्तस्तथा रूक्षो, मुहुश्चटचटायते ॥८२॥

અર્થ —ઝેરવાળું અન્ન અગ્નિમાં નાખીએ તો, તેની જ્વાળા ભમરી ખાય છે, અગ્નિ લખો દેખાય, અને તેમાંથી ચટ ચટ એવો શબ્દ નીકળે છે (૮૨)

इन्द्रायुधमिवानेक–वर्णाञ्ज्वाला दधाति च ॥
स्फुरत्कुणपगन्धिश्च, मन्दतेजाश्च जायते ॥८३॥

અર્થ –ઝેરવાળી વસ્તુ અગ્નિમાં નાખતાં ઇંદ્રિ ધનુષ્ય (મેઘ) સરખા અનેક રંગવાળી તેની જ્વાળા થાય છે, મૃત કલેવર સરખી તેમાંથી દુર્ગંધી નીકળે છે, અને તેનું તેજ મંદ થાય છે (૮૩)

शिरोऽर्ति पीनसः श्लेष्मा, लाला नयनयोस्तथा ॥
आकुलत्वं क्षणाद्रोम–हर्षस्तद्धूमसेवनात् ॥८४॥

અર્થ —ઝેરવાળી વસ્તુના ધુમાડાથી માથાનો દુખાવો, સળેખમ અને કફ થાય, આંખમાંથી પાણી ઝરે, આકુળપણું થાય, અને ક્ષણમાત્રમાં રોમાંચ ઉભા થાય (૮૪)

विषदुष्टाशनास्वादा–त्काकः क्षामस्वरो भवेत् ॥
लीयते मक्षिका नात्र, निर्लीना च विपद्यते ॥८५॥

અર્થઃ—વિષમિશ્ર અન્ન ચાખવાથી કાગડાનો સાદ બેસી જાય છે. તે અન્ન ઉપર માખી ન બેસે, અને કદાપિ બેસે તો મરી જાય છે. (૮૫)

अन्नं सविषमाघ्राय, भृङ्गः कूजति चाधिकम् ॥
सारिका सविषेऽन्ने तु, विक्रोशति तथा शुकः ॥८६॥

અર્થઃ—ભ્રમર ઝેરવાળું અન્ન સુંઘીને અધિક ગુંજારવ કરે છે. મેના અને પોપટ પણ ઝેરવાળું અન્ન સુંઘીને ઘણો શબ્દ કરે છે. (૮૬)

विषान्नदर्शनान्नेत्रे, चकोरस्य विरज्यतः ॥
म्रियते कोकिलो मत्तः, क्रौञ्चो माद्यति तत्क्षणात् ॥८७॥

અર્થઃ—ચકોર પક્ષીનાં નેત્ર ઝેરવાળું અન્ન જોવાથી સફેદ થાય છે. કોકિલ પક્ષી મદોન્મત્ત થઈ મરી જાય છે. અને ક્રૌંચ પક્ષી તેજ સમયે મદોન્મત્ત થાય છે. (૮૭)

नकुलो हृष्टरोमा स्या–न्मयूरस्तु प्रमोदते ॥
अस्य चालोकमात्रेण, विषं मन्दायते क्षणात् ॥८८॥

અર્થઃ—નોળીયો ઝેરવાળું અન્ન જોઇને રોમાંચિત થાય છે. અને મયૂર પક્ષી હર્ષ પામે છે. મયૂરની દૃષ્ટિથી ક્ષણમાત્રમાં ઝેર મંદ થઈ જાય છે. (૮૮)

उद्वेगं याति मार्जारः, पुरीषं कुरुते कपिः ॥
गतिः स्खलति हंसस्य, ताम्रचूडो विरौति च ॥८९॥

અર્થ —ઝેરવાળુ અન્ન જોઇને બિલાડો ઉદ્વેગ પામે છે વાનરો વિષ્ઠા કરે છે હંસ ચાલતા સ્ખલના પામે છે અને કુકડો શબ્દ કરવા લાગે છે (૮૯)

सविष देहिभिः सन्नं, भक्ष्यमाणं करोत्यलम् ॥
ओष्ठे चिमचिमामास्ये, दाहं लालाजलप्लवम् ॥९०॥

અર્થ —વિષમિશ્ર અન્ન મનુષ્યોના ખાધામા આવે તો હોઠમા ચળવળ થાય છે, મુખમા દાઝ થાય છે, અને લાળ છૂટે છે (૯૦)

हनुस्तम्भो रसज्ञाया, कुरुते शूलगौरवे ॥
तथा क्षाररसाज्ञानं, दाता चास्याकुलो भवेत् ॥९१॥

અર્થ —વિષમિશ્ર અન્ન ખાધામા આવે તો હડપચી થંભાઈ જાય છે જીભ ભારે થાય છે તેની (જીભની) અંદર દરદ થાય છે ખાર રસનો સ્વાદ જણાતો નથી અને વિષનો દેનાર આકુળ થાય છે (૯૧)

स्फाटिकटङ्कणक्षारौ, धार्यः पुंसो मुखान्तरे ॥
न वेत्ति क्षारता यावत्-दित्युक्तं स्थावरे विषे ॥९२॥

અર્થ —વિષ પ્રયોગની શંકા આવે તો પુરૂષના મુખમાં ફટકડી અને ટંકણખાર ધરવા આપવો જ્યા સુધી તે ખારો ન લાગે ત્યા સુધી વિષ વિકાર છે એમ જાણવુ એ સ્થાવર વિષ જાણવાનો ઉપાય કહ્યો (૯૨)

इत्थं चतुर्थप्रहरार्धकृत्य, सूर्योदयादत्र मया न्यगादि ॥
तत्कुर्वता देहभृता नितान्त-मार्विभवत्येव न रोगयोगः ॥९३

इति श्रीजिनदत्तसूरिविरचिते श्रीविवेकविलासे तृतीय उल्लास ॥३॥

અર્થઃ—એવી રીતે સૂર્યોદયથી માંડીને ચોથા પ્રહરના અર્ધભાગ સુધીનું કૃત્ય મેં કહ્યું તે પ્રમાણે ચાલવાથી માણસોને શરીરે કદીપણ રોગનો પ્રાદુર્ભાવ થાય નહીં. (૯૩)

ઇતિ શ્રી વિવેકવિલાસની ગુર્જરભાષાનો
ત્રીજો ઉલ્લાસ સંપૂર્ણ. (૩)

अथ चतुर्थ उल्लासः ।

उत्थाय शयनोत्सङ्गा—द्वपुःशौचमथाचरेत ॥
विचिन्त्यायव्ययौ सम्य—ग्मन्त्रयेदेष मन्त्रिभिः ॥१॥

અર્થઃ—પછી વીવેકી પુરૂષો બિછાના ઉપરથી ઊઠી શરીરશુદ્ધિ કરવી. અને આવક જાવકનો સારી પેઠે વિચાર કરી મંત્રીની જોડે મસલત ચલાવવી. (૧)

वाहनास्त्रादिचिन्तां वा—चरणां वा नियोजनम् ॥
कुर्याद्विक्रमचिन्तां वा, विहारं वा यदृच्छया ॥२॥

અર્થઃ—વાહન, હથિયાર, આચાર પરાક્રમ વિગેરે કાર્યનો વિચાર કરવો, અથવા દૂતોને પોતાને કામે લગાડવા, અથવા ઇચ્છા માફક વ્યવહાર કરવો. (૨)

ततो वैकालिकं कार्यं, मिताहारमनुत्सुकम् ॥
घटिकाद्वयशेषेऽह्नि, कालौचित्याशनेन च ॥३॥

અર્થઃ—પછી બે ઘડી દિવસ શેષ રહે ત્યારે ઋતુને તથા સંધ્યાકાલને ઉચિત એવા આહારથી ઘણી ઉત્સુકતા ન રાખતાં પરિમિત વાળુ કરવું. (૩)

भानोः करैरसंस्पृष्ट–मुच्छिष्टं प्रेतसंचरात् ॥
सूक्ष्मजीवाकुलं चापि, निशि भोज्यं न युज्यते ॥८॥

અર્થ —સૂર્યના કિરણોએ નહીં કર્મેલુ, પ્રેતના સંચાર-થી અપવિત્ર થએલુ, અને સૂક્ષ્મ સંપાતિમ જીવોથી આ-કુળ થએલુ એવુ અન્ન રાત્રિએ ભક્ષણ કરવુ એ યુક્ત નથી (૮)

शौचमाचर्य मार्तण्ड-बिम्बेऽर्धास्तमिते सुधीः ॥
धर्मकृत्यैः कृतायातैः, स्वमात्मानं पवित्रयेत् ॥५॥

અર્થ —અર્ધા સૂર્યમંડલનો અસ્ત થયે છતે શરીર શુદ્ધિ કરીને કુળ પરંપગએ આવેલા ધર્મકૃત્યોથી પોતાના આ-ત્માને પવિત્ર કરવો (૫)

न शोरयेन्न कण्डूये–न्नाक्रमेदङ्घ्रिमंघ्रिणा ॥
न च प्रक्षालयेत्कास, न कुर्यात्स्वामिसंमुखम् ॥६॥

અર્થ —સંધ્યાકાળે કંઇ શોધવુ નહીં, ખણવુ નહીં, પગ ઉપર પગ ચઢાવવો નહીં, ધોવુ નહીં, અને સ્વામિના સુ-ખ આગળ ખાસી ન કરવી (૬)

संध्याया श्रीदह निद्रा, मैथुन दुष्टगर्भकृत् ॥
पाठ वैकल्य रोग–मद्रा भुक्ति न चाचरेत् ॥७॥

અર્થ —સંધ્યાસમયે નિદ્રા કરે તો લક્ષ્મીનો નાશ થાય, મૈથુન કરે તો દુષ્ટ ગર્ભની ઉત્પત્તિ થાય, ભણે તો પાઠમા ખામી રહે, અને ભોજન કરે તો રોગ થાય, માટે એટલા વા-ના સાંઝે ન કરવા (૭)

अर्केऽर्धास्तमिते याव--न्नक्षत्राणि नभस्तले ॥
द्वित्राणि नैव वीक्ष्यन्ते, तावत्सायं विदुर्बुधाः ॥८॥

અર્થઃ—અર્ધા સૂર્ય મંડળનો અસ્ત થયા પછી આકાશમાં બે ત્રણ નક્ષત્રો જ્યાં સુધી દેખાતાં નથી, ત્યાં સુધીજ સાયંકાળનો સમય છે, એમ પંડિત પુરૂષો કહે છે. (૮)

सूर्योढस्यातिथेस्तथ्य--मातिथेयं विचक्षणैः ॥
शयनस्थानपानीय--प्रमुखैः कार्यमादरात् ॥९॥

અર્થઃ--વિચક્ષણ પુરૂષોએ સૂર્યના અસ્તને અવસરે આવેલા અતિથિની પરોણાગત શય્યા, સ્થાનક, પાણી પ્રમુખ આપીને સારી પેઠે આદરથી કરવી. (૯)

अह्नोऽतीति याममुग्मे विधेयं, यामार्धेषु प्रोक्तमित्थं चतुर्षु ॥
अन्तश्चित्तं चिन्त्यमेतच्च सम्यक्, स्थेयःश्रेयःकाम्यया क्षुण्ण-
धीभिः ॥१०॥

इति श्रीजिनदत्तसूरिविरचिते श्रीविवेकविलास चतुर्थ
उल्लासः ॥ ४ ॥

અર્થઃ—એ રીતે સૂર્યોદયથી માંડીને બપોર સુધી બે પ્રહરનું તથા બપોર પછીના રહેલા બે પ્રહરના મળી ચાર અર્ધ પ્રહરોનું કૃત્ય કહ્યું. પરિપૂર્ણ કલ્યાણની જેમને ઇચ્છા હોય તે મનુષ્યોએ ચિત્તની અંદર એનો સારી પેઠે વિચાર કરવો. (૧૦)

ઇતિ શ્રી વિવેકવિલાસની ગુર્જર ભાષાનો ચોથો
ઊલ્લાસ સંપૂર્ણ. [૪]

अथ पञ्चम उल्लासः ।

दीपः प्रदक्षिणावर्तो, निःप्रकम्पोऽतिभासुरः ॥
आयतो रम्यमूर्तिश्च, निःशब्दो रुचिरस्तथा ॥१॥
चञ्चत्काञ्चनसंकाश-प्रभामण्डलमण्डितः ॥
गृहालोकाय माङ्गल्यः, कर्तव्यो रजनीमुखे ॥२॥ युग्मम् ॥

અર્થ —સંધ્યાને સમયે ઘરમા પ્રકાશને અર્થે મંગળકારી દીપ કરવો. તે જમણી બાજુએ ભમરી ખાતો, અતિશય દેદીપ્યમાન, લાંબો, સારી જ્યોતિવાળો, શબ્દરહિત, મનોહર અને ચળકતા સોના જેવું પ્રભામંડળ ધારણ કરનારો એવો હોવો જોઇયે (૧) (૨)

सस्फुलिङ्गोऽल्पमूर्तिश्च, वामावर्तस्तनुप्रभः ॥
वातकीटाद्यभावेऽपि, विध्यायस्तैलवर्तिमान् ॥३॥
विवर्णार्चिः सशब्दश्च, प्रदीपो मन्दिरस्थितः ॥
पुंसामनिष्टानि, प्रसाधयति निश्चितम् ॥४॥ युग्मम् ॥

અર્થ —તણખા મૂકતો, નાના આકારનો, ડાબી બાજુએ ભમરી ખાતો, થોડો પ્રકાશ દેનારો, પવન, પતંગિયા વિગેરેનો ઉપદ્રવ નહીં છતા અને અંદર તેલ તથા દિવેટ છતા પણ બુઝનો, વિખેરાઇ ગયેલી જ્યોતિને ધારણ કરનારો, અને તડતડ શબ્દ કરનારો એવો દીવો ઘરમા રહેનારા મનુષ્યોને નિશ્ચયથી અનિષ્ટ સૂચવે છે (૩) (૪)

रात्रौ न दैवतापूजा-स्नानदानाशनानि च ॥
न वा खदिरताम्बूलं, कुर्यान्मन्त्रं च नो सुधीः ॥५॥

અર્થ:— સુજ્ઞણુ મનુષ્યે રાત્રિએ દેવપૂજા, સ્નાન દાન, ભોજન, તથા સહિત તાંબૂલ અને મંત્ર (મસલત) એટલાં વાનાં ન કરવાં. (૫)

खट्वां जीवाकुलां ह्रस्वां, भग्नां कष्टां मलीमसाम् ॥
प्रतिपादान्वितां वह्नि-दारुजातां च संत्यजेत् ॥६॥

અર્થ:—જૂ, માંકડ વિગેરે જીવથી ભરાઇ ગયેલી, ટુંકી, ભાંગેલી, સુનારને કષ્ટ આપનારી, મલિન, પડ પાયાવાળી અને બળેલા અથવા વિલામા વિગેરેના લાકડાની બનાવેલી ખાટ વર્જવી. (૬)

शयनासनयोः काष्ठ-माचतुर्योगतः शुभम् ॥
पञ्चादिकाष्ठयोगे तु नाशः, स्वस्य कुलस्य च ॥७॥

અર્થ:—સુવાની તથા બેસવાની વસ્તુ જો ચાર સુધી લાકડાના કટકાથી બનાવેલી હોય તો શુભકારી જાણવી. અને જો પાંચ અથવા તેથી વધારે લાકડાની બનાવેલી હોય તો તેથી વાપરનારનો તથા તેના કુળનો નાશ થાય છે. (૭)

पूज्योर्ध्वस्थो न नार्द्राङ्घ्रि-र्नोत्तरापराशिराः ॥
नानुवंशं न पादान्तं, नागदन्तः स्वपेत्पुमान् ॥८॥

અર્થ:—પોતાના જે પૂજ્ય હોય તેમના કરતાં ઉંચે તથા નકે, ભીને પગે તથા ઉત્તર અથવા પશ્ચિમ દિશા તરફ માથું રાખીને ન સુવું. (૮)

देवताधाम्नि वल्मीके, भूरुहाणां तलेऽपि च ॥
तथा प्रेतवने चैव, स्वपेन्नापि विदिग्शिराः ॥९॥

અર્થ—દેવતાના મંદિરે રાફડા ઉપર, વૃક્ષની તળે સ્મશાનમાં તથા વિદિશામાં (કોણ દિશામાં) મસ્તક રાખીને સુવું નહીં (૯)

(अथ चरलक्षणम् ।)

निद्रासमयमासाद्य, ताम्बूलं मुखतस्त्यजेत् ॥
ललाटात्तिलकं कण्ठा-न्माल्यं तल्पात्तु योषितम् ॥१०॥

અર્થ—નિદ્રાનો સમય નજીક આવે ત્યારે મુખમાંથી તાંબૂલ, કપાળ ઉપરથી તિલક, કંઠમાંથી માળા અને સજ્યા પરથી સ્ત્રી એટલાને દૂર કાઢી નાખવા (૧૦)

प्रज्ञां हरति ताम्बूल-मायुर्हरति पौण्ड्रकम् ॥
भोगिस्पर्शकरं माल्यं, बलहानिकराः स्त्रियः ॥११॥

અર્થ—નિદ્રા સમયે મુખમાં તાંબૂલ હોય તો તે બુદ્ધિનો નાશ કરે છે, કપાળે તિલક હોય તો તે આયુષ્યને હરણ કરે છે, ગળામાં ફુલની માળા હોય તો તેથી સર્પ આવીને સ્પર્શ કરે એવો સંભવ રહે છે, અને સ્ત્રિયો પાસે હોય તો બળની હાનિ કરે છે (૧૧)

वपुः शीलं कुलं वित्तं, वयो विद्या सनाथता ॥
एतानि यस्य विद्यन्ते, तस्मै देया निजा सुता ॥१२॥

અર્થ—જેના શરીર, શીળ, કુળ, ધન, વય, [ઉંમર] અને વિદ્યા એ છ વાનાં સારાં હોય, તથા જેને માથે વડીલ માણસો સારાં હોય, તેને પોતાની કન્યા આપવી (૧૨)

मूर्खनिर्धनदूरस्थ-शूरमोक्षाभिलाषिणाम् ॥
त्रिगुणाधिकवर्षाणां, न देया कन्यका बुधैः ॥१३॥

અર્થ:—ડાહ્યા માણસોએ મૂર્ખ, નિર્ધન, દૂર રહેલો, શૂર, મોક્ષની ઇચ્છા કરનારો તથા પુત્રીથી ત્રણ ગણા વર્ષ કરતાં અધિક ઉમરનો એટલાઓને પોતાની કન્યા આપવી નહીં. (૧૩)

वक्षो वक्त्रं ललाटं च, विस्तीर्ण शस्यते त्रयम् ॥
गम्भीरं त्रितयं शस्यं, नाभिः सत्त्वं स्वरस्तथा ॥१४॥

અર્થ:—પુરૂષનાં વક્ષસ્થળ (છાતી), મુખ તથા કપાળ એ ત્રણે પહોળા હોય તો વખાણવા લાયક જાણવાં. તથા નાભિ, સ્વભાવ અને સ્વર એ ત્રણે ગંભીર હોય તો પ્રશસ્ત જાણવાં. (૧૪)

कण्ठः पृष्ठं च लिङ्गं च, जङ्घयोर्युगलं तथा ॥
चत्वारि यस्य ह्रस्वानि, पूजामाप्नोति सोऽन्वहम् ॥१५॥

અર્થ:—જે પુરૂષનાં કંઠ, પીઠ, લિંગ અને બે જાંઘ એટલા અવયવ ટુંકા હોય, તો તે પુરૂષ હમેશાં પૂજા પામે. (૧૫)

अङ्गुलिपर्वभिः केशै-र्नखैर्दन्तैस्त्वचाऽपि च ॥
सूक्ष्मकैः पञ्चभिर्मर्त्या, भवन्ति सुखजीवनः ॥१६॥

અર્થ:—જેમનાં આંગળીનાં પર્વ, કેશ, નખ, દાંત અને ચામડી એ પાંચ વાનાં સૂક્ષ્મ [પતળાં] હોય, તે માણસ સુખે જીવે છે. (૧૬)

स्तनयोर्नेत्रयोर्मध्यं, दोर्द्वयं नासिका हनुः ॥
पञ्च दीर्घाणि यस्य स्युः, स धन्यः पुरुषोत्तमः ॥१७॥

અર્થ:—જેના બે સ્તનોની તથા બે નેત્રોની વચ્ચેનો

ભાગ, બે બાહુ, નાસિકા અને હડપચી એટલા અવયવ લાંબા હોય, તે પુરૂષ ઉત્તમ ધન્ય જાણવો (૧૭)

नासा ग्रीवा नखाः कक्षा, हृदय वदन तथा ॥
षड्भिरभ्युन्नतैर्मर्त्या, सदैवोन्नतिभाजिनः ॥१८॥

અર્થ—નાસિકા, ગ્રીવા (ડોક), નખ, કાખ, છાતી અને મુખ એ છ અવયવ જેના ઉંચા હોય તે પુરૂષ હમેશા ઉન્નતિ પામે (૧૮)

नेत्रान्तरसनाताल्लु, नखरा अधरोऽपि च ॥
पाणिपादतले चापि, सप्त रक्तानि सिद्धयै ॥१९॥

અથ—આંખના ખૂણા, જીભ, તાળવું, નખ હોઠ, હાથના તથા પગના તળીયા, એ સાત અવયવ રાતા હોય તો તેથી કાર્યસિદ્ધિ થાય છે (૧૯)

गतेः प्रशस्यते वर्णः, ततः स्नेहोऽस्मृतः स्वरः ॥
अतस्तेज इतः सत्त्व—मिदं द्वात्रिंशतोऽधिकम् ॥२०॥

અર્થ—ગતિથી વર્ણ અધિક જાણવો, તેમજ વર્ણથી સ્નેહ, સ્નેહથી સ્વર અને સ્વરથી તેજ અધિક જાણવું, તથા તેજથી અને બત્રીશે લક્ષણથી સત્વ અધિક જાણવું [૨૦]

सात्विकः सुकृती ज्ञानी, राजसो विषयी भ्रमी ॥
तामसः पातकी लोभी, सात्विकोऽमीषु सत्तमः ॥२१॥

અર્થ—સત્વગુણી માણસ પુણ્યશીળ અને જ્ઞાની હોય છે રજોગુણી માણસ વિષયી અને ચંચળ પ્રકૃતિનો હોય છે તથા તમોગુણી માણસ પાપી અને લોભી હોય છે [૨૧]

सधर्मः सुभगो नीरुक्, सुस्वप्नः सुनयः कविः ॥
सूचयत्यात्मनः श्रीमा-न्नरः स्वर्गगमागमौ ॥२२॥

અર્થઃ—જે મનુષ્ય ધર્મી, સુંદર, સુખથી જગાડાય એવી નિદ્રાનો ધણી અથવા સારાં સ્વપ્નોને જોનારો, ન્યાય માર્ગે ચાલનારો અને સુજાણ હોય, તે શ્રીમાન્ નર પોતાનું સ્વર્ગમાંથી આવવું અને પાછું સ્વર્ગે જવું સૂચવે છે. (૨૨)

निर्दम्भः सदयो दानी, दान्तो दक्ष ऋजुः सदा ॥
मर्त्ययोनिसमुद्भूतो, भावी तत्र पुनः पुमान् ॥२३॥

અર્થઃ—જે મનુષ્ય દંભ [ઢોંગ] વિનાનો, દયાળુ, ઉદાર, ઇંદ્રિયોને વશ કરનારો દક્ષ અને સદાએ સરળ સ્વભાવનો એવો હોય તે, મનુષ્યોનિમાંથીજ આવ્યો, અને પાછો મનુષ્યોનિમાંજ ઉત્પન્ન થશે, એમ જાણવું. (૨૩)

मायालोभक्षुधालस्य-बह्वाहारादिचेष्टितैः ॥
तिर्यग्योनिसमुत्पत्तिं, ख्यापयत्यात्मनः पुमान् ॥२४॥

અર્થઃ—જે મનુષ્ય કપટી, લોભી, ભૂખ્યો, આળસુ, બહુ ખાધરો તથા એવાજ બીજા લક્ષણનો હોય, તે પોતાનું તિર્યંચ યોનિમાંથી આવવું અને પાછું તિર્યંચ યોનિમાં જવું પ્રકટ જણાવે છે. (૨૪)

सरागः स्वजनद्वेषी, कटुवाङ्मूर्खसङ्गकृत् ॥
शास्ति स्वस्य गतायातं, नरो नरकवर्त्मनि ॥२५॥

અર્થઃ—જે મનુષ્ય રોગી, સ્વજનનો દ્વેષી, કડવાં વચન બોલનારો અને મૂર્ખ લોકોની સોબત કરનારો એવો હોય, તે પોતાનું નરકમાંથી આવવું અને પાછું નરકે જવું કહે છે (૨૫)

नासिकानेत्रदन्तोष्ठ-करकर्णाङ्घ्रिणा नराः
समाः समेन विज्ञेया, विषमा विषमेण तु ॥२६॥

અર્થ —જે મનુષ્યના નાક, આંખ, દાંત, હોઠ, હાથ, કાન અને પગ એ સાત અવયવ સીધા હોય, તે માણસ સ્વભાવના સીધા સમજવા અને જો ઉપર કહેલા સાત અવયવો વાંકા હોય, તો વક્ર સ્વભાવના જાણવા (૨૬)

गतिस्वरास्थित्वग्मास-नेत्रादिष्वङ्गकेषु च ॥
यानमाज्ञा धन भोगः, सुख योषित्क्रमाद्भवेत् ॥२७॥

અર્થ —માણસની ગતિ ઉપરથી વાહન (ગાડીઘોડા પ્રમુખ), સ્વર ઉપરથી આજ્ઞા (હુકમ), હાડની રચના ઉપરથી ધન, ચામડી ઉપરથી ભોગ, માંસ ઉપરથી સુખ અને નેત્ર ઉપરથી સ્ત્રી કહેવાય છે એટલે ગતિ પ્રમુખ છ વાના જેવા લક્ષણના હોય, તેવી વાહન પ્રમુખ છ વસ્તુ મળે છે (૨૭)

आवर्तो दक्षिणे भागे, दक्षिणः शुभकृन्नृणाम् ॥
वामो वामेऽतिनिन्द्यश्च, दिगन्यत्वे तु मध्यमः ॥ २८ ॥

અર્થ —પુરૂષની જમણી બાજુએ દક્ષિણાવર્ત ભમરો હોય તો શુભ જાણવો અને ડાબી બાજુએ વામાવર્ત હોય તો ઘણોજ અશુભ સમજવો તથા જો જમણી બાજુએ વામાવર્ત અને ડાબી બાજુએ દક્ષિણાવર્ત હોય તો મધ્યમ જાણવો (૨૮)

उत्पात' पिटको लक्ष्म, तिलको मशकोऽव्रणः ॥
स्पर्शनं स्फुरण पुसः, शुभायाङ्गे प्रदक्षिणे ॥ २९ ॥

અર્થ —પુરૂષની જમણી બાજુએ શુકન, પિટક (ફોલ્લો) ચિન્હ, તલ અને છિદ્રરહિત મશ હોય, તથા જમણી બાજુએ સ્પર્શ અને સ્ફુરણ થાય તો તે શુભને અર્થે જાણવા (૨૯)

वामस्त्रुवां पुनर्वामे, कर्षकस्य नरस्य च ॥
वामोऽपि दक्षिणे कश्चि-न्नरस्याङ्के शुभो मतः ॥३०॥

અર્થઃ—પુરૂષની જમણી બાજુએ જે સારાં લક્ષણ કહ્યાં તે સ્ત્રીઓની તથા ખીસન ઉપર ઉત્પન્ન થએલા પુરૂષની પણ ડાબી બાજુએ સારાં જાણવાં. કેટલાક શાસ્ત્રકારો પુરૂષની જમણી બાજુએ થએલો બર્ગાદિકનો ઘાત પણ સારો કહે છે. (૩૦)

पुष्टं यदेव देहे स्या-ल्लक्षणं वाप्यलक्षणम् ॥
इतरद्वाध्यते तेन, बलवत्फलदं पुनः ॥ ३१ ॥

અર્થ—મનુષ્યના શરીર ઉપર જે સારૂં અથવા માઠું લક્ષણ પ્રબળ હોય તે બીજા સર્વ લક્ષણોને કોરે મૂકે છે, અને પોતે જોરાવર હોવાથી ફળદાયી થાય છે. (૩૧)

मणिबन्धात्परः पाणि- स्तस्य लक्षणमुच्यते ॥
तत्र चाङ्गुष्ठ एकः स्या-च्चतस्रोऽङ्गुलयः पुनः ॥३२॥

અર્થઃ—મણિબન્ધથી (કાંડાથી) આગળ જે શરીરનો ભાગ આવ્યો તે હાથ કહેવાય છે. તેનું લક્ષણ હવે કહે છે. હાથને એક અંગુઠો અને બીજી ચાર આંગળીઓ હોય છે.(૩૨)

नामान्यासां यथार्थानि, ज्ञेयान्यङ्गुलितः क्रमात् ॥
तर्जनी मध्यमानामा, कनिष्ठा च चतुर्थिका ॥ ३३ ॥

અર્થઃ—તે ચારે આંગળીઓનાં નામ અંગુઠાની બાજુથી અનુક્રમે તર્જની, મધ્યમા, અનામિકા અને કનિષ્ઠા એવાં જાણવાં. એ નામ અર્થના અનુસારથી રાખ્યા છે. જેમ તર્જના કરે તે

તર્જની, મધ્યભાગમા આવી તે મધ્યમા, જેને વિશેષ નામ આ પેલુ નથી તે અનામિકા અને જે સર્વ કરતા નાની તે કનિષ્ઠા (૩૩)

अकर्मकठिनः पाणि–र्दक्षिणो वीक्ष्यते नृणाम् ॥
वामभ्रुवा पुनर्वामः, स प्रशस्योऽतिकोमलः ॥३४॥

અર્થ—પુરૂષનો જમણો હાથ કામકાજ કરવાથી કઠણ ન થયેલો હોય તો તે જોવાય છે, અને સ્ત્રીઓનો ડાબો જોવાય છે તે અતિ કોમળ હોય તો પ્રશસા કરવા યોગ્ય જાણવો (૩૪)

श्लाघ्यश्चोष्णोऽरुणोऽस्वेदो–ऽच्छिद्रः स्निग्धश्च मांसलः॥
श्लक्ष्णस्ताम्रनखो दीर्घा–ङ्गुलीको विपुलः करः॥३५॥

અર્થ—ઉન્હો, રાતો, પરસેવા વિનાનો, છિદ્રરહિત, સ્નિગ્ધ, માસથી પુષ્ટ, કોમળ, લાલ નખથી અને લાબી આગળીઓથી શોભીતો, એવો વિશાળ હાથ ઉત્તમ હોય (૩૫)

पाणेस्तलेन शोणेन, धनी नीलेन मद्यपः ॥
पीतेनागम्यनारीगः, कल्माषेण धनोज्झितः ॥३६॥

અર્થ—માણુસની હાથેળી જો લાલ હોય તો તે ધનવાન્ થાય, નીલવર્ણ હોય તો મદ્યપાન કરે, પીતવર્ણ (પીળી) હોય તો અગમ્ય સ્રીની જોડે વિષય ભોગ કરે, અને કાબર ચિત્રવર્ણ હોય તો દરિદ્રી થાય (૩૬)

दातोन्नते तले पाणे–र्निम्ने पितृधनोज्झित ॥
धनी मभृतनिम्ने स्या–द्विषमे निर्धनः पुन ॥३७॥

અર્થ—માણુસની હાથેળી ઊચી હોય તો તે દાન-

થાય, ઉંડી હોય તો પિતાના દ્રવ્યથી રહિત થાય, ઉંડી છતાં સારી રેખાથી યુક્ત હોય તો ધનવાન્ થાય, અને જો વિષમ (ઉંચી નીચી) હોય તો નિર્ધન થાય. (૩૭)

अरेखं बहुरेखं वा, येषां पाणितलं नृणाम् ॥
ते स्युरल्पायुषो निःस्वा, दुःखिता नात्र संशयः ॥३८॥

અર્થઃ—જે મનુષ્યના હાથમાં બિલકુલ રેખા ન હોય, અથવા હોયતો ઘણી હોય, તો તે અલ્પાયુષી, દરિદ્રી અને દુઃખી થાય એમાં સંશય નથી. (૩૮)

करपृष्ठं सुविस्तीर्णं, पीनं स्निग्धं समुन्नतम्
श्लाघ्यं गूढशिरं नृणां, फणभृत्फणसंनिभम् ॥ ३९ ॥

અર્થઃ—મનુષ્યના હાથની પાછળનો ભાગ વિસ્તારવાળો, પુષ્ટ, સ્નિગ્ધ, ઉંચો, અંદરની નસો દેખાતી નહીં હોવાથી સુંદર અને સર્પની ફણા સરખો હોય તો તે વખાણવા લાયક જાણવો. [૩૯]

विवर्णं परुषं रूक्षं, रोमशं मांसवर्जितम् ॥
मणिबन्धसमं निम्नं, न श्रेष्ठं करपृष्ठकम् ॥ ४० ॥

અર્થઃ—મનુષ્યના હાથની પાછળનો ભાગ કાંતિરહિત, કઠણ, લૂખો, રોમવાળો, માંસવિનાનો અને મણિબંધ (કાંડા) જેટલો નીચો હોય તો તે શ્રેષ્ઠ ન જાણવો. (૪૦)

पाणिमूलं दृढं गूढं, श्लाघ्यं सुश्लिष्टसंधिकम् ॥
श्लथं सशब्दं हीनं च, निर्धनत्वादिदुःखदम् ॥४१॥

અર્થઃ—મનુષ્યનો મણિબંધ (કાંડુ) દૃઢ, (મજબૂત) ગુપ્ત (હાડકાં દેખાય નહિ એવું) બરાબર જોડેલા સાંધાથી

ગોભીતું હોય તો પ્રશંસા યોગ્ય જાણવું અને ઢીલુ, ધ્રુલાવતા કદ્રૂ કદ્રૂ નબ્દ કરનારૂ તથા હીન હોય તો નિર્ધનપણા પ્રમુખ દુઃખ આપે છે (૪૧)

दीर्घानिर्मांसपर्वाणः, सुक्ष्मा दीर्घाः सुकोमलाः ॥
सुघनाः सरला वृत्ताः, स्त्रीत्रोरङ्गुल्यः श्रिये ॥४२॥

અર્થ —સ્ત્રીઓની તથા પુરૂષોની આગળીઓ લાંબી તથા માસ રહિત સાંધાની (સાંધા) સૂક્ષ્મ, લાંબી, કોમળ, ઘન (મજબૂત) સરળ તથા ગોળ એવી કલ્યાણને અર્થે જાણવી. (૪૨)

यच्छन्ति विरला शुष्काः, स्थूला वक्रा दरिद्रताम् ॥
शस्त्रघात बहिर्नम्रा–श्चेटत्व चिपिटाश्च ताः ॥४३॥

અર્થ —આંતરાવાળી, સૂકી, જાડી અનેવાંકી આગળીઓ હોય તો દરિદ્રીપણુ, બહાર નમેલી હોય તે શસ્ત્રનો ઘાત અને ચપટી હોય તો દાસપણુ આપે છે (૪૩)

अनामिकान्त्यरेखाया', कनिष्ठा स्याद्यदाधिका ॥
धनवृद्धिस्तदा पुंसा मातृपक्षो बहुस्तथा ॥ ४४ ॥

અર્થ —જે મનુષ્યની અનામિકાની અંત્ય (છેલ્લી) રેખાથી કનિષ્ઠ અધિક લાંબી હોય, તો ધનવૃદ્ધિ થાય, અને મોસાળનો પક્ષ ઘણો હોય (૪૪)

मध्यमामान्त्यरेखाया, अधिका तर्जनी यदि ॥
पितुस्त्यान्पितृ. पक्ष', श्रीश्च व्यत्ययतोऽन्यथा ॥ ४५ ॥

અર્થ —વચલી આંગળીની છેલ્લી રેખાથી જો તર્જની

(અંગુઠા પાસેની આંગળી) અધિક લાંબી હોય તો પતિનો પક્ષ તથા લક્ષ્મી ઘણી જાણવી. (૪૫)

अङ्गुष्ठस्याङ्गुलीनां वा, यद्यूनाधिकता भवेत् ॥

धनैर्धान्यैस्तदा हीनो, नरः स्यादायुषापि च ॥४६॥

અર્થઃ—અંગુઠો અને બીજી ચાર આંગળીઓ એમાં જો ન્યૂનાધિકપણું હોય તો મનુષ્ય ધન, ધાન્ય તથા આયુષ્યથી હીન થાય છે. (૪૬)

मणिबन्धे यवश्रेण्य-स्तिस्रश्चेत्तन्नृपो भवेत् ॥

यदि ताः पाणिपृष्ठेऽपि, ततोऽधिकतरं फलम् ॥४७॥

અર્થઃ—જો મણિબંધ ઉપર ત્રણ જવની પંકતીઓ હોય, તો તે મનુષ્ય રાજા થાય, અને જો તે (જવની પંકતીઓ) હાથની પાછળ પણ હોય, તો રાજ્ય કરતાં પણ વધારે ફળ મળે. (૪૭)

द्वाभ्यां च यवमालाभ्यां, राजमन्त्री धनी बुधः ॥

एकया यवपङ्क्त्या तु, श्रेष्ठो बहुधनोऽर्चितः ॥४८॥

અર્થઃ—જો મણિબંધ ઉપર જવની બે પંક્તિ હોય તો રાજાનો મંત્રી, મોટો ધનવાન્ અથવા પંડિત થાય, અને એક પંક્તિ હોય તો લોકમાં શ્રેષ્ઠ, પૂજિત તથા મોટો ધનવાન્ થાય. (૪૮)

सूक्ष्माः स्निग्धाश्च गम्भीराः, प्रलम्बा मधुपिङ्गलाः ॥

अन्यावृत्ता गतच्छेदाः, कररेखाः शुभा नृणाम् ॥४९॥

અર્થઃ—મનુષ્યના હાથની રેખા સૂક્ષ્મ, (પાતળી) સ્નિગ્ધ (સ્નેહવાળી), ગંભીર (ઉંડી), લાંબી, મધ સરખી ભૂરા રંગની, પાછી ન વળેલી અને છેદરહિત એવી હોય તો શુભ જાણવી. (૪૯)

त्यागाय शोणगम्भीराः, सुखाय मधुपिङ्गलाः ॥
सूक्ष्माः श्रिये भवेयुस्ताः, सौभाग्याय समूलकाः ॥५०

અર્થ — મનુષ્યના હાથની રેખા લાલ ઉંડી હોય તે ઉદારપણું આપે, મધ સરખી ભૂરા રંગની હોય તો સુખ આપે પાતળી હોય તો લક્ષ્મી આપે, અને મૂળથી છેડા સુધી છે રહિત હોય તો સૌભાગ્ય આપે (૫૦)

छिन्नाः सपल्लवा रूक्षा, विषमाः स्थानकच्युताः ॥
विवर्णाः स्फुटिताः कृष्णा, नीलास्तन्व्यश्च नोत्तमाः॥५१

અર્થ—મનુષ્યની હાથની રેખા છેદાયલી, ફાટાવાળી લૂખી, આડીઅવળી, સ્થાનકથી ભ્રષ્ટ થએલી, ખરાબ વર્ણની ફૂટેલી, કાળી, નીલવર્ણની તથા પાતળી હોય તો ઉત્તમ ન જાણવી (૫૧)

क्लेश सपल्लवा रेखा, छिन्ना जीवितसंशयम् ॥
कदन्नं परुषा द्रव्य-विनाशं विषमार्पयेत् ॥५२॥

અર્થ—ફાટાવાળી રેખા કલેશ આપે, છેદાયલી જીવિતનો સંશય કરે, કઠણ રેખા ખરાબ અન્ન આપે, અને આડી અવળી રેખા વિનાશ કરે (૫૨)

मणिवन्धात्पितुर्लेखा, करभाद्विभवायुषोः ॥
लेखे द्वे यान्ति तिस्रोऽपि, तर्जन्यङ्गुष्ठकान्तरम् ॥५३॥

અર્થ—મણિબંધથી પિતાની રેખા નીકળે, અને કરભથી (કનિષ્ઠા આગળીના નીચેના ભાગથી) ધનની એક અને આયુષ્યની એક એવી બે રેખા નીકળે, અને તે ત્રણે રેખા તર્જની અને અંગુઠા એ બેની વચ્ચે જાય (૫૩)

आयुर्लेखावसानाभि–र्लेखाभिर्मणिबन्धतः ॥
स्पष्टाभिर्भ्रातरः स्पष्टे–तराभिर्जामयः पुनः ॥६२॥

અર્થઃ—મણિબંધથી આયુષ્યની રેખા સુધી જેટલી રેખાઓ સ્પષ્ટ હોય તેટલા ભાઇ જાણવા, અને જેટલી અસ્પષ્ટ હોય તેટલી બ્હેનો જાણવી. (૬૨)

अस्पष्टाभिरदीर्घाभि–र्भ्रातृजाम्यायुपत्त्रुटिः ॥
यवैरङ्गुष्ठमूलस्थै–स्तत्संख्याः सूनवो नृणाम् ॥६३॥

અર્થઃ—ભાઇની તથા બ્હેનની રેખા જો અસ્પષ્ટ અને ટૂંકી હોય તો તેમનું (ભાઇ બ્હેનોનું) આયુષ્ય ત્રુટિત જાણવું. અંગુઠાના મૂળમાં જેટલા જવ હોય, તેટલા પુત્ર જાણવા. (૬૩)

यवैरङ्गुष्ठमध्यस्थै–र्विद्याख्यातिविभूतयः ॥
शुक्लपक्षे तथा जन्म, दक्षिणाङ्गुष्ठगैश्च तैः ॥६४॥

અર્થઃ—અંગુઠાના મધ્ય ભાગમાં જવ હોય તો તેથી વિદ્યા, ખ્યાતિ અને લક્ષ્મી મળે છે. તે (જવ) જો જમણા અંગુષ્ઠના મધ્ય ભાગમાં હોય તો તે માણસનો શુક્લ પક્ષમાં જન્મ થયો એમ જાણવું. (૬૪)

कृष्णपक्षे नृणां जन्म, वामङ्गुष्ठगतैर्यवैः ॥
बहूनामथवैकस्य, यवस्य स्यात्समं फलम् ॥६५॥

અર્થઃ—ડાબા અંગુઠામાં જવ હોય તો તે માણસનો જન્મ કૃષ્ણ પક્ષમાં થયો એમ જાણવું. એક અથવા ઘણા જવ હોય તો તે સર્વનું ફળ સરખું હોય છે. (૬૫)

एकोऽप्याभिमुखः स्वस्य, मत्स्यः श्रीवृद्धिकारणम् ॥
सम्पूर्णा किं पुनस्तौ द्वौ, पाणिमूलस्थितौ नृणाम् ॥६६॥

અર્થ—મનુષ્યના હાથના મૂળ ભાગમાં જો એકજ મત્સ્ય સામા મુખનો હોય તો તેથી લક્ષ્મીની વૃદ્ધિ થાય, અને તે સંપૂર્ણ મત્સ્ય હોય તો પછી લક્ષ્મીની વૃદ્ધિ થાય એમાં શું કહેવું (૬૬)

शफरो मकरः शङ्खः, पद्मः पाणौ स्वसमुखः ॥
फलदः सर्वदैवान्त-काले पुनरसमुखः ॥६७॥

અર્થ—શફર (મત્સ્યની એક જાતિ), મગર, શંખ અને કમળ એ ચાર ચિન્હો હાથને વિષે પોતાની સન્મુખ હોય તો સદૈવ સારા ફળપ્રદ જાણવા, અને જો સન્મુખ નહોય તો અંતકાળે શુભ ફળ દેનારા જાણવા (૬૭)

शत सहस्र लक्षं च, कोटिं दद्यायथा क्रमम् ॥
मीनाद्यः करे स्पष्टा-च्छिन्नभिन्नादयोऽल्पदाः ॥६८॥

અર્થ—મત્સ્ય પ્રમુખ ચિન્હો જો હાથને વિષે સ્પષ્ટ હોય તો અનુક્રમે સો, હજાર, લાખ અને ક્રોડ દ્રવ્ય આપે છે પણ જો છિન્ન ભિન્ન તથા અસ્પષ્ટ વિગેરે હોય તો અલ્પ ધન આપે છે (૬૮)

सिंहासनदिनेशाभ्या, नन्द्यावर्तेन्दुतोरणैः ॥
पाणिरेखाश्रितैर्मर्त्याः, सार्वभौमा न संशय ॥६९॥

અર્થ—જો મનુષ્યના હસ્તરેખામાં સિંહાસન, સૂર્ય, નંદ્યાવર્ત, ચંદ્ર અને તોરણ હોય તો તે માણસ સાર્વભૌમ રાજા થાય એમાં સંશય નથી (૬૯)

અર્થઃ—ઉપર કહેલી બન્ને રેખા જો મધ્યમા આંગળીની નીચે હોય, તો તે માણસ દરિદ્રી અને અધર્મી થાય; તથા તર્જની આંગળી અને ગૃહબંધ વચ્ચે રેખા આવેલી હોય તો તે સુખે મરણ આપનારી હોય. (૭૮)

अङ्गुष्ठपितृरेखान्त–स्तिर्यग्रेखा पदप्रदा ॥
अपत्यरेखाः सर्वाः स्यु–र्मत्स्याङ्गुष्ठतलान्तरे ॥ ७९ ॥

અર્થ—અંગુઠો અને પિતાની રેખા એમની વચ્ચે આડી રેખા હોય તો તે પદ આપનારી જાણવી. તથા મત્સ્ય અને અંગુઠા વચ્ચે રહેલી રેખાઓ સંતતિની જાણવી. [૭૯]

अङ्गुष्ठस्य तले यस्य, रेषा काकपदाकृतिः ॥
तस्य स्यात्पश्चिमे काले, विपत्तिः शूलरोगतः ॥८०॥

અર્થઃ—જેના અંગુઠાને તળે કાક પદ સરખી (કાગડાના પગસરખી) રેખા હોય, તે માણસ છેલ્લી અવસ્થામાં શૂળ રોગથી મરણ પામે. (૮૦)

श्लिष्टान्यङ्गुलिमध्यानि, द्रव्यसंचयहेतवे ॥
तानि चेच्छिद्रयुक्तानि, त्यागशीलस्ततो नरः ॥८१॥

અર્થ:—ચારે આંગળીઓનાં આંતરાં જો છિદ્રવિનાનાં હોય એટલે ચારે આંગળીઓ ભેગી સીધી જોડી રાખે તો જો વચ્ચે છિદ્ર ન દેખાય, તો તે પુરૂષ દ્રવ્યનો સંચય કરે એમ જાણવું. અને જો તેમ કરતાં વચ્ચે છિદ્ર દેખાય તો તે પુરૂષ દાતાર થાય એમ જાણવું. (૮૧)

तर्जनीमध्यमारन्ध्रे, मध्यमानामिकान्तरे ॥
अनामिकाकनिष्ठान्त–श्छिद्रे सति यथाक्रमम् ॥८२॥

उन्मत्तः प्रथमे त्र्यंशे, द्वितीये च तृतीयके ॥
भोजनावसरे दुःखं, केऽप्याहुः श्रीमतामपि ॥८३॥

અર્થ —તર્જની અને મધ્યમા એમની વચ્ચે છિદ્ર દેખાય તો આયુ'ના પહેલા તૃતીયાશમા (ત્રીજા ભાગમા), મધ્યમા અને અનામિકા એમની વચ્ચે છિદ્ર હોય તો આયુષ્યના બીજા તૃતીયાશમા તથા અનામિકા અને કનિષ્ઠા એમની વચ્ચે છિદ્ર હોય તો આયુષ્યના ત્રીજા તૃતીયાશમા શ્રીમાન્ લોકો પણ ભોજનને અવસરે દુ ખ પામે એવો કેટલાક આચાર્યોનો મત છે (૮૨) (૮૩)

आवर्ता दक्षिणाः श्रेष्ठाः, साङ्गुष्ठाङ्गुलिपर्वसु ॥
ताम्रस्निग्धोच्छ्रितास्तुङ्ग–पर्वार्धोत्था नखाः शुभाः ॥८४॥

અર્થ ––અંગુઠાના તથા બીજી ચારે આગળીઓના અગ્ર ભાગને વિષે જમણી બાજુએ ભમરી ખાતા આવર્ત (ભમરા) હોય તો તે શ્રેષ્ઠ જાણવા તથા રાતા, સ્નિગ્ધ (ચોપડેલા), અણીવાળા ઉંચા અને છેલ્લા પર્વના (સાધાના) અર્ધા ભાગથી નીસરેલા એવા નખ હોય તો તે શુભ જાણવા (૮૪)

श्वेतैर्यतित्वमस्याभै–र्नैस्व्य पीतैः सरोगता ॥
पुष्पितैर्दुष्टशीलत्व, क्रौर्यं व्याघ्रोपमैर्नखैः ॥ ८५ ॥

અર્થ —માણસના નખ સફેદ હોય તો યતિપણું, હાડકા સરખા રગના હોય તો દરિદ્રીપણુ, પીળા હોય તો રોગ, ફૂલવાળા હોય તો કુશીળપણુ અને વાઘના નખ સરખા હોય તો ક્રૂરપણુ થાય એમ જાણવુ (૮૫)

शुक्त्याभैः श्यामलैः स्थूलैः, स्फुटिताग्रैश्च नीलकैः ॥
अद्योतरूक्षवक्रैश्च, नखैः पातकिनोऽधमाः ॥८६॥

અર્થઃ--જે માણસના નખ છીપ સરખાં, કાળાં જાડાં અગ્ર ભાગમાં ફૂટેલાં, નીલવર્ણ, નિસ્તેજ, લૂખાં અને વાંકાં હોય તે અધમ પાપી સમજવા. (૮૬)

नखेषु बिन्दवः श्वेताः, पाण्योश्चरणयोरपि ॥
आगन्तवः प्रशस्ताः स्यु-रिति भोजनृपोऽभ्यधात ॥८७॥

અર્થઃ--હાથનાં તથા પગનાં પણ નખ ઉપર જો સફેદ બિંદુઓ ઉત્પન્ન થઇ કેટલાક દિવસ રહી પછી નાશ પામતા હોય તો તે શ્રેષ્ઠ છે, એમ ભોજરાજાએ કહ્યું છે. (૮૭)

तर्जन्यादिनखैर्मुग्धै-र्जातमात्रस्य तु क्रमात् ॥
अर्धत्र्यंशचतुर्थांशा-ष्टांशा स्युः सहजायुषः ॥८८॥

અર્થઃ—માણસની તર્જની, મધ્યમા, અનામીકા અને કનિષ્ઠા એ ચારે આંગળીમાં એક આંગળીનું જન્મથી માંડીને નખ વાંકો હોય તો તે માણસ અનુક્રમે પચાશ વર્ષ, તેત્રીસ વર્ષ અને ચાર માસ, પચીસ વર્ષ અને સાડાબાર વર્ષ સુધી જીવે. (૮૮)

अङ्गुष्ठस्य नखे मुग्धे, धर्मतीर्थरतो नरः ॥
कूर्मोन्नतेऽङ्गुष्ठनखे, नरः स्याद्भाग्यवर्जितः ॥८९॥

અર્થઃ—જેના અંગુઠાનો નખ વાંકો હોય, તે માણસ ધર્મ અને તીર્થ એમની સેવા કરે, તથા જેના અંગુઠાનો નખ કાચબા જેવો ઉંચો હોય, તે માણસ ભાગ્યહીન થાય. (૮૯)

अथ वधूलक्षणानि ।

वन्धुलक्षणलावण्य-कुलजात्याद्यलंकृताम् ॥
कन्यकां वृणुयाद्रूप-वतीमव्यङ्गविग्रहाम् ॥९०॥

અર્થ -- બંધુ-(ભાઈ)-વાળી, સારા લક્ષણની, લાવણ્ય વતી, ઊંચા કુળની, ઉત્તમ જાતની, રૂપવતી અને જેના અંગો ના અવયવમાં કંઈ ખામી નથી, એવી કન્યા પુરૂષે પરણવી (૯૦)

अष्टमाद्वर्षतो याव-द्वर्षमेकादश भवेत् ॥
तावत्कुमारिका लोके, न्याय्यमुद्वाहमर्हति ॥९१॥

અર્થ —સ્ત્રી આઠમા વર્ષથી અગ્યારમા વર્ષ સુધી લોકમાં કુમારી (કુંવારી) કહેવાય છે માટે તેટલી મર્યાદામાં તે ગીતાર્થ વિવાહ કરવા લાયક છે (૯૧)

पादगुल्फौ च जङ्घे च, जानुनी मेंढ्रमुष्ककौ ॥
नाभिकट्यौ च जठरं, हृदय च स्तनान्वितम् ॥९२॥
जत्रुबाहू तथैवौष्ठ-कधरे दृग्भ्रुवो तथा ॥
भालमौली दश क्षेत्रा-ण्येतान्याबाल्यताङ्गके ॥९३॥

અર્થ —૧ પગ અને ઘૂંટી ૨ જાંઘ અને ઢીંચણ, ૩ લિંગ અને અંડ ૪ નાભિ અને કટિ, ૫ પેટ ૬ સ્તન અને હૃદય, ૭ જત્રુ (ગળાનો અને બાહુનો સાંધો) અને બાહુ, હોઠ અને કોટ ૯ નેત્ર અને ભ્રકુટિ, ૧૦ કપાળ અને મસ્તક આ દશ ક્ષેત્ર બાલ્યાવસ્થાથીજ શરીરે રહે છે (૯૨) (૯૩)

एकत्रक्षेत्रसंभूतं, लक्षणं वाप्यलक्षणम् ॥
दशाभिर्दशभिर्वर्षैः—स्त्रीत्रोर्दत्ते निजं फलम् ॥९४॥

અર્થઃ— એકએક ક્ષેત્રના શુભ અથવા અશુભ લક્ષણ સ્ત્રીઓને તથા પુરૂષોને અનુક્રમે દસ દસ વર્ષે ફળ આપે છે. (૯૪)

यत्पादाङ्गुल्यः क्षोणीं, कनिष्ठाद्याः स्पृशन्ति न ॥
एकद्वित्रिचतुःसंख्यान्, क्रमात्सा मारयेत्पतीन् ॥९५॥

અર્થઃ—જે સ્ત્રીના પગની કનિષ્ઠા પ્રમુખ ચાર આંગળીઓમાં કનિષ્ઠાથી માંડીને એક, બે, ત્રણ અથવા ચારે આંગળીઓ ચાલતી વખતે ભૂમીને અડકતી ન હોય તો તે સ્ત્રી અનુક્રમે એક, બે; ત્રણ તથા ચાર ભર્તારને મારે (૯૫)

यत्पादाङ्गुलिरेकापि, भवेद्धीना कथं च न ॥
येन केनापि सा साकं, भवेत्कलहकारिणी ॥९६॥

અર્થઃ—જો સ્ત્રીના પગની એકાદી આંગળી જો કોઇપણ રીતે ટૂંકી હોય તો તે સ્ત્રી જેની તેની જોડે કલહ કરનારી થાય. (૯૬).

अल्पवृत्तेन वक्रेण, शुष्केणलघुनापि च ॥
चिपिटेनातिरिक्तेन, पादाङ्गुष्टेन दूषिता ॥९७॥

અર્થઃ—જે સ્ત્રીના પગનો અંગુઠો થોડો ગોળ, વાંકો, સુકાયલો, નાનો, ચપટો અથવા લાંબો અને બીજી આંગળીઓથી જુદો પડી ગએલો હોય, તે સ્ત્રી દોષવાળી જાણવી. (૯૭)

कृपणा स्या महापार्ष्णि—दीर्घपार्ष्णिस्तु कोपना ॥
दुःशीलोन्नतपार्ष्णिश्च, निन्द्या विषमपार्ष्णिका ॥९८॥

અર્થ —જે સ્રીના પગની પાટલી મોટી હોય તે કૃપણ થાય, લાબી હોય તે ક્રોધી થાય, ઉચી હોય તે દુરાચારિણી થાય, ઉચી નીચી હોય તે નિંદનીય થાય (૯૮)

उच्छलद्धूलिचरणा, सर्वस्थूलमहाङ्गुलिः ॥
बहिर्विनिपतत्पादा, दीर्घपादप्रदेशिनी ॥९९॥
विरलाङ्गुलिकौ स्थूलौ, पृथू पादौ च बिभ्रती ॥
सशब्दगमना स्थूल—गुल्फा स्वेदयुतांघ्रिका ॥१००॥
उद्बद्धपिण्डिका स्थुल—जङ्घा वायसजाङ्घिका ॥
निर्मांसघटकच्छाय—विश्लिष्टकृशजानुका ॥१०१॥
बहूधारप्रस्नविका, शुष्कसकस्कत्यपि ॥
चतुर्विंशतितो न्यूना—धिकाङ्गुलकटी नता ॥१०२॥
मृदङ्गयवकूष्माण्डो—दरिकात्युच्चनाभिका ॥
दधती वलित रोमा—वर्तिन कुक्षिमुन्नतम् ॥१०३॥
अष्टादशाङ्गुलन्यूना—धिक्वक्षोरुहान्तरा ॥
तिलक लक्ष्म वा श्याम, दधना वामके स्तने ॥१०४॥
कुचे वराङ्गे पार्श्वेऽपि, वाम उच्चे मनाक्सति ॥
नारीप्रसाविनी नारी, दक्षिणे च नरप्रसूः ॥१०५॥
सङ्कीर्णपृथुलप्रोच—निर्मांसास्युतापि च ॥
स्थुलोच्चकुटिलस्कन्धा, निम्ननिर्मांसकक्षिका ॥१०६॥

मेषवल्लघुकर्णीवा, दीर्घग्रीवा वक्रोऽन्वन् ॥
व्याघ्रास्या श्यामचिबुका, हास्ये कूपकपोलिका ॥१०७॥
श्यामश्वेतस्थूलजिह्वा-तिह्रासा काकतालुका ॥
जम्बूतरुफलच्छाय-दशनाविरलपीठिका ॥१०८॥
अर्कक्राक्षी मार्जार-नेत्रा पारापतेक्षणा ॥
कृष्णाक्षी चञ्चलालोका-तिमौना वहुभाषिणी ॥१०९॥
स्थूलाधरशिरोवक्त्र-नासिका शूर्पकर्णिका ॥
हीनाधरा प्रलम्बोष्ठी, मिलद्भ्रूयुग्मका तथा ॥ ११० ॥
अतिसंकीर्णविषम-दीर्घलोकमशभालका ॥
अङ्गुलत्रितयादूना- धिकभालस्थलापि च ॥ १११ ॥
भालेन खण्डरेखेण, रेखाहीनेन निन्दिता ॥
सूक्ष्मस्थूलस्फुटिताग्र-कटुलाङ्गिकचोच्चया ॥ ११२॥
एकस्मिन् कूपके स्थूल-वहुरोमसमन्विता ॥
सपुष्पनखरा श्वेत-नखी शूर्पनखी तथा ॥ ११३ ॥
उत्कटस्नायुदुर्दर्शा, कपिलद्युतिधारिणी ॥
अतिश्यामातिगौरी वा-तिस्थूला चातितन्विका ॥११४॥
अतिदीर्घातिह्रस्वा च, विषमाङ्ग्यधिकाङ्गिका ॥
हीनाङ्गी शौचविकला, सूक्ष्मकर्कशकाङ्गिका ॥११५॥
संचारिण्युरुगाघ्राता, धर्मविद्वेषिणी तथा ॥
धर्मान्तररता वापि, नीचकर्मरतापि वा ॥ ११६ ॥
अजीवत्प्रसवस्तोक-प्रसवस्वसृमातृका ॥

रसवत्यादिविज्ञान-रहितेहकुमारिका ॥ ११७ ॥
दुःशीला दुर्भगा वन्ध्या, दरिद्रा दुःखिताधमा ॥
अल्पायुर्विधवा कन्या, स्यादेभिर्दुष्टलक्षणैः ॥ ११८ ॥

(विंशत्या कुलकम् ।)

અર્થ —જે ચાલતા પગે ધૂળ ઉડાડે, જેના પગનો અગુઠો બીજી આગળીઓ કરતા બહુ જાડો હોય, જે ચાલતા પગ આનૂણાત્ બહાર મૂકે, જેના પગની તર્જની ઘણી લાબી હોય, જેના પગ છૂટી આગળીના, જાડા અને પહોળા હોય, ચાલતા જેના પગમાથી શબ્દ થાય, જેની ઘટી જાડી હોય, જેને પગે પરસેવો ઘણો વળતો હોય, જેના પગની પિડી ઉચી અને બધાયલી જેવી હોય, જેની જઘા જાડી અથવા કાગડા જેવી હોય, જેના ઢીચણ માસરહિત ચડોના તળ સરખા, ઢીલા સાધાના અને કૃશ હોય, જેની લઘુનીતી ઘણીધાગવાળી હોય, જેની કેડ સુકી, સાકડી અને પહોળાઇમા ચોવીસ આગળથી વધારે અથવા ઓછી હોય, જેનુ ઉદર (પેટ) મૃદગ, જવ અથવા ભૂરા કોહળા જેવુ હોય, જેની નાભિ (ડુટી) ઘણી ઉચી હોય, જેની કૂખ કરચલીવાળી વાળના ભમરાવાળી અને ઉચી હોય જેના બે સ્તનો વચ્ચે અઢાર આગળથી ઓછુ અથવા અધિક અતર હોય, જેના ડાબા સ્તન ઉપર તિલ અથવા કઈ કાળુ ચિન્હ હોય, (સ્રીનુ ડાબુ સ્તન ડાબો યોનિનો ભાગ, તથા ડાબો પાસો જો જમણા કરતા ઉચો હોય તો તે કન્યાને પ્રસવે છે, અને ઉપર કહેલા ત્રણે અવયવો જો ડાબા કરતા જમણા ઉચા હોય તો પુત્રને પ્રસવે છે માટે) જેનુ ડાબુ સ્તન

ડાબો યોનિનો ભાગ અને ડાબો પાસો ઉંચો હોય, જેના ખભા સાંકડા, પહોળા, અને માંસરહિત હોય, જેના ખંધ ઉંચા તથા વાંકા હોય, જેની કાખ ઉંડી તથા માંસ વિનાની હોય, જેની ડોક મેંઢા સરખી ટૂંકી અથવા બગલા સરખી કિંવા ઉંટ સરખી લાંબી હોય, જેનું મુખ વાઘસરખું હોય. જેની હડપચી કાળી હોય, હસતાં જેના ગાલમાં કુવા સરખા ખાડા પડતા હોય, જેની જીભ કાળી, સફેદ અથવા જાડી હોય, જે બહુ હાસ્ય કરનારી હોય, જેનું તાળવું કાગડા સરખું ઉંચું હોય, દાંતના પેઢાં જાંબુ સરખા રંગના હોય, જેની નજર બહુ કટાક્ષ મારનારી હોય, જેની આંખ બિલાડા તથા પારેવા સરખી અથવા કાળી અથવા ચંચળ હોય, જે ઘણું મૌન રાખે અથવા બહુ બકે, જેનો નીચલો હોઠ, માથું, મુખ તથા નાક એ જાડાં હોય, જેના કાન સૂપડા સરખાં હોય, જેના હોઠ ટૂંકા અથવા લાંબા હોય જેની બન્ને ભ્રુકુટીઓ સાથે મળેલી હોય, જેનું કપાળ ઘણું સાંકડું, ઉંચુનીચું લાંબું, રોમસહિત, ત્રણ આંગળથી ઓછું અથવા અધિક, ખંડિત રેખાવાળું અથવા તદન રેખા રહિત હોય, જેના માથાના કેશ(વાળ) લૂખા, જાડા અણીએ ફાંટાવાળા અને કેડથી પણ નીચે ઉતરે એટલા લાંબા હોય, જેના એક રોમકૂપમાં એક કરતાં વધારે અને જાડા રોમ હોય, જેના નખ ફૂલેલાં, સફેદ અથવા સૂપડા જેવાં હોય, જેની નસો આકરી હોવાથી જોઇ શકાય નહીં એવી હોય, જેના શરીરની કાંતિ ભૂરા રંગની હોય, જે ઘણી કાળી, ઘણી ગોરી, ઘણી જાડી, ઘણી પાતળી, ઘણી લાંબી, ઘણી ટૂંકી, ખડબચડાં અંગવાળી હોય, જેના શરીરના આંગળી

પ્રમુખ અવયવ ઓછા અથવા અધિક હોય, જેની ચામડી લૂખી તથા કઠણ હોય, જે શરીરની પવિત્રતા ન જાળવતી હોય, જેના શરીરે સઆરીરોગ થયો હોય, જે સ્વધર્મનો દ્વેષ કરતી હોય, અથવા પરધર્મને વિષે આસક્ત થઈ હોય, જે નીચ કર્મમા પ્રીતિ રાખતી હોય, જેની માની, તથા બેનની સતતી જીવતી રહેતી ન હોય, અથવા થોડી થતી હોય, તથા જેને રસોઇ પ્રમુખ ગૃહકાર્યનુ જ્ઞાન બિલકુલ ન હોય એવી કન્યા ઉપર કહેલા અપલક્ષણથી દુરાચારિણી, દુર્ભાગી, વાઝણી, દરિદ્રી દુખી, અલ્પાયુષી, અધમ અથવા વિધવા થાય છે (૯૯-૧૧૮)

उपाङ्गमथवाङ्ग स्या-द्यदीय बहुरोमकम् ॥
वर्जयेत्ता प्रयत्नेन, विषकन्यासहोदरीम् ॥ ११९ ॥

અર્થ—જેના હાથ પગ, પ્રમુખ અગ તથા આગળી પ્રમુખ ઉપાઙ્ગ, બહુ રોમવાળા હોય તે કન્યાને વિષકન્યાની સગી બ્હેન સરખી જાણીને પ્રયત્નથી વર્જવી (૧૧૯)

कटीकृकाटिकाशीर्षो-दरभालेषु मध्यगः ॥
नासान्ते च शुभो न स्या-दावर्तः सृष्टिगोऽपिसन् ॥१२०॥

અર્થ—કેડ, કોટ (ડોકુ), મસ્તક, ઉદર અને કપાળ એમના મધ્ય ભાગમા તથા નાસિકાને છેડે ભમરો સીધો હોય તો પણ તે શુભ ન જાણવો (૧૨૦)

आवर्ता वामभागेषु, स्त्रीणां सहारवृत्तयः ॥
न शुभास्तु शुभा भागे, दक्षिणाङ्गे च सृष्टितः ॥१२१॥

અર્થ—સ્ત્રીઓના ડાબે ભાગે ઉલટા ભમરા હોય તો તે

શુભ ન જાણવાં. પણ જમણે ભાગે અને વિશેષે કરી કપાળને જમણે ભાગે સીધા ભમરા હોય તો શુભ જાણવા. (૧૨૧)

देवोरगनदीशैल-नक्षत्राणां पतत्रिणाम् ॥
श्वपाकप्रेष्यभीष्मानां, संज्ञया वानितां त्यजेत् ॥ १२२ ॥

અર્થઃ—દેવતા, સર્પ, નદી પર્વત, નક્ષત્ર, પક્ષી, ચંડાળ, સેવક તથા કોઈ પણ ભયંકર વસ્તુ એમનાં નામ ધારણ કરનારી સ્ત્રી વર્જવી. (૧૨૨)

धराधान्यलतागुल्म-सिंहव्याघ्रफलाभिधाम् ॥
त्यजेन्नारीं प्रयत्नेन, दुराचाररता यतः ॥ १२३ ॥

અર્થઃ—ભૂમિ, ધાન્ય, લતા, ગુલ્મ (નાનું વૃક્ષ) સિંહ, વાઘ અને ફળ એમનાં નામ ધારણ કરનારી સ્ત્રી પ્રયત્નથી વર્જવી. કારણ, તેવી સ્ત્રી દુરાચારિણી હોય છે. (૧૨૩)

नापरीक्ष्य स्पृशेत्कन्या, अविज्ञाताः कदाचन ॥
निघ्नन्ति येन योगैस्ताः, कन्याश्चिद्दक्षनिर्मितैः ॥ १२४ ॥

અર્થઃ—વિવેકી પુરૂષે પરીક્ષા કર્યા વિના અજાણી કન્યાઓને સ્પર્શ ન કરવો. કારણ તે કન્યાઓ દક્ષ માણસે કરેલા મંત્ર ઔષધ પ્રમુખના પ્રયોગથી વિષમય થઇને સ્પર્શ કરનાર પુરૂષને મારી નાંખે છે. (૧૨૪)

महौषधप्रयोगेण, कन्या विषमयी किल ॥
जायते श्रूयते ज्ञेया, तैरेतैः सापि लक्षणैः ॥१२५॥

અર્થઃ—" દક્ષ માણસે કરેલા મોટા ઔષધના પ્રયોગથી કન્યા વિષમયી થઇ" એમ સંભળાય છે. માટે આગળ કહેશે તે લક્ષણ ઉપરથી વિષકન્યા જાણવી. (૧૨૫)

यस्या' केशांशुकस्पर्शा-न्म्लायन्ति कुसुमस्रजः ॥
स्नानाम्भसि त्रियन्ते, बन्त्वः क्षुद्रजन्तव' ॥१२६॥
म्रियन्ते मत्कुणास्तल्पे, तथा यूका च वाससि ॥
वातश्लेष्मव्यथामुक्ता, सदा पित्तोदयान्विता ॥१२७॥
भौमार्कशनिवाराणा, वारः कोऽपि भवेद्यदि ॥
तथाऽश्लेषाशतभिष-कृत्तिकानां भवेद्यदि ॥१२८॥
द्वादशी वा द्वितीया वा, सप्तमी वा भवेद्यदि ॥
ततस्तत्र सुता जाता, कीर्त्यते विषकन्यका ॥१२९॥

અર્થ —જેના કેશના તથા વસ્ત્રના સ્પર્શથી ફૂલની માળા કરમાઇ જાય, જેના સ્નાનના પાણીમા ક્ષુદ્ર જીવ ઘણા મરી જાય, જેના બિછાનામા માકડ મરણ પામે, જેના વસ્ત્રમા જૂઓ પણ મરણ પામે, જેને કફવાતનો વિકાર થતો નથી જેને હમેશા પિત્તવિકાર થાય, જેના જન્મ સમયે શનિ, રવિ તથા મગળ એ ત્રણમાથી એકવાર, આશ્લેષા, શતતારકા અને કૃત્તિકા એ ત્રણમાથી એક નક્ષત્ર તથા દ્વિતીયા, સપ્તમી અને દ્વાદશી એ ત્રણ તિથિમા એક તિથિ હોય, તે વિષકન્યા કહેવાય છે (૧૨૬) (૧૨૭) (૧૨૮) (૧૨૯)

गुरुस्वामिसुहृच्छिष्य-स्वजनाङ्गनया सह ॥
मातृजामिसुतात्वेन, व्यवहर्तव्यमुत्तमैः ॥१३०॥

અર્થ —ઉત્તમ પુરૂષોએ પોતાના ગુરૂ, સ્વામિ, મિત્ર, શિષ્ય અને સગાસબધી એટલાની સ્ત્રીઓની સાથે મા, બેન તથા પુત્રી પ્રમાણે વર્તવુ એટલે જે પોતાના કરતા વૃદ્ધ હોય તેને મા સમાન, બરાબરીની હોય તેને બ્હેનસમાન અને

ન્હાની હોય તેને પુત્રીસમાન ગણવી. (૧૩૦)

संबंधिनी कुमारी च, लिङ्गिनी शरणागता ॥
वर्णाधिका च पूज्यन्त्र–संकल्पेन विलोक्यते ॥ १३१ ॥

અર્થઃ—ઉત્તમ પુરૂષોએ પોતાની સગી, કુંવારી, સાધ્વી અથવા જોગણી વિગેરે, શરણે આવેલી અને આપણા કરતાં ઉંચી જાતની એટલી સ્ત્રીઓને પૂજ્ય માનવી. (૧૩૧)

सदोषां बहुलोभां च, बहुग्रामान्तरप्रियाम्
अनीप्सितसमाचारां, चञ्चलां च रजस्वलाम् ॥१३२॥

अशौचां हीनवृत्तां चा–तिवृद्धां कौतुकप्रियाम् ॥
अनिष्टां स्वजनाद्विष्टां, सगर्वां नाश्रयेत्स्त्रियम् ॥ १३३॥

અર્થ—દોષવાળી, બહુ લોભી, ગામેગામ ફરનારી, દુરાચરણી, ચંચળ, રજસ્વલા (છેટે બેઠેલી), અપવિત્ર, શીળનો ભંગ કરનારી, ઘણી વૃદ્ધ, નાટક પ્રમુખ કૌતુક જોવા ઘણી તત્પર, અણગમતી, સ્વજનનો દ્વેષ કરનારી અને અહંકારી એવી સ્ત્રીનો અંગીકાર ન કરવો. (૧૩૨) (૧૩૩)

परस्त्री विधवा भर्त्रा, त्यक्ता त्यक्तव्रतापि च ॥
राजकुलप्रतिबद्धा, विवर्ज्या यत्नतो बुधैः ॥ १३४ ॥

અર્થઃ—ડાહ્યા પુરૂષોએ જીવતા ધણીની સ્ત્રી, વિધવા પતિએ છોડી દીધેલી, આદરેલા વ્રતનો ત્યાગ કરનારી તથા રાજદ્વારે જનારી એટલી સ્ત્રીઓ યત્નથી વર્જવી. (૧૩૪)

दुर्गदुर्गतिदूतीषु, वैरचित्रैकभित्तिषु ॥
साधुवादद्रुशस्त्रीषु, परस्त्रीषु रमेत न ॥१३५॥

અર્થ —કારાગૃહે (બંદીખાને) અથવા નરકે તેડી જનાર દૂતીસરખી, વૈરરૂપ ચિત્ર ચિતરવામાં ભીંતસરખી, અને યશરૂપી વૃક્ષ તોડવાને શસ્ત્રસરખી એવી પરસ્ત્રીઓને વિષે આસક્તિ ન કરવી (૧૩૫)

जगत्समक्षं स्त्रीपुंसौ, विवाहे दक्षिणं करम् ॥
अन्योन्याव्यभिचाराय, दत्तः किल परस्परम् ॥१३६॥

અર્થ —સ્ત્રી અને પુરૂષ બન્ને જણા વિવાહને સમયે 'ધર્મ, અર્થ અને કામ એ ત્રણેનું આચરણ એક બીજાને છોડીને કરશું નહીં" એવી પ્રતિજ્ઞા કરી જગત્‌ની સમક્ષ માહોમાહે જમણો હાથ પકડે છે (૧૩૬)

अतो व्यभिचरन्तौ तौ, निजं पुण्यं विलुम्पतः ॥
अन्योऽन्यघातकौ स्यातां, परस्त्रीपुरुषावपि ॥१३७॥

અર્થ —માટે જો તે સ્ત્રીભર્તાર બન્ને જણા પોતે આપેલું વચન ન પાળે, એટલે વ્યભિચાર કરે તોતે પોતાનું પુણ્ય ખોઇ દે છે, અને માહોમાહે એક બીજાના ઘાત કરનારા થાય છે તેમજ સ્ત્રી પરપુરૂષની જોડે વ્યભિચાર કરે, ત્યારે તે પરપુરૂષની પરણેલી સ્ત્રીની ઘાત કરનારી થાય છે, અને પુરૂષ પરસ્ત્રીની જોડે વ્યભિચાર કરે ત્યારે પરસ્ત્રીના પતિનો ઘાત કરનાર થાય છે (૧૩૭)

बाला खेलनकैः काले, दत्तैर्दिव्यफलाशनैः ॥
मोदते यौवनस्था तु, वस्त्रालङ्करणादिभिः ॥१३८॥
हृष्येन्मध्यवयाः प्रौढा, रतिक्रीडासु कौशलैः ॥
वृद्धा तु मधुरालापै–र्गौरवेण तु रज्यते ॥१३९॥

અર્થઃ—બાળા (સોળ વર્ષ સૂધી ઉમરની) અવસરે આપેલાં રમકડાં અને સારાં ફળ, ફૂલ તથા સુખડી પ્રમુખથી પ્રસન્ન થાય છે. તરૂણ અવસ્થામાં આવેલી સ્ત્રી સારાં વસ્ત્રથી તથા આભૂષણોથી પ્રસન્ન થાય છે. મધ્યમ વયની પ્રૌઢ સ્ત્રી કામક્રીડામાં કુશળતા જોઇ પ્રસન્ન થાય છે. અને વૃદ્ધ સ્ત્રી મીઠાં વચનથી તથા આદર સત્કારથી પ્રસન્ન થાય છે. (૧૩૮)(૧૩૯)

षोडशाद्वा भवेद्बाला, त्रिंशताद्भूतयौवना ॥
पञ्चपञ्चाशता मध्या, वृद्धा स्त्री तदनन्तरम् ॥१४०॥

અર્થઃ—સ્ત્રી સોળ વર્ષની થાય ત્યાં સુધી બાળા કહેવાય, ત્રીસ વર્ષની થાય ત્યાં સૂધી તરૂણ કહેવાય, પચાસ વર્ષની થાય ત્યાં સૂધી મધ્ય વયની પ્રૌઢ કહેવાય, અને તે પછી વૃદ્ધ કહેવાય છે. (૧૪૦)

पद्मिनी चित्रीणी चैव, शङ्खिनी हस्तिनी तथा ॥
तत्तादिष्टविधानेना-नुकूल्या स्त्री विचक्षणैः ॥१४१॥

અર્થઃ—વિચક્ષણ પુરૂષોએ પદ્મિનિ, ચિત્રિણિ, શંખિની અને હસ્તિની એ ચારે પ્રકારની સ્ત્રીઓને શાસ્ત્રમાં કહેલા ઇષ્ટ પ્રકારથી અનુકૂળ રાખવી. (૧૪૧)

हस्तिनी मद्यगन्धा च, उग्रगन्धा च चित्रिणी ॥
शङ्खिनी क्षारगन्धा च, पद्मगन्धा च पद्मिनी ॥१४२॥

અર્થઃ—હસ્તિની સ્ત્રીનો ગંધ મદ્ય સરખો હોય છે, ચિત્રિણીનો ઉગ્ર હોય છે, શંખિનીનો ખારો હોય છે, અને પદ્મિનીનો કમળ સરખો સુગંધ હોય છે. (૧૪૨)

हस्तिनी ह्यूरुशोभा स्या-त्कटिशोभा च चित्रिणी ॥
शङ्खिनी पादशोभा च, मुखशोभा च पद्मिनी ॥१४३॥

અર્થ—હસ્તિની સ્ત્રીની સાથળ, ચિત્રિણીની કેડ, શખિનીના પગ અને પદ્મિનીનુ મુખ સુદર હોય છે (૧૪૩)

हस्तिनी सूक्ष्मकेशा च, वक्रकेशा च चित्रिणी ॥
शङ्खिनी दीर्घकेशा च, घनकेशा च पद्मिनी ॥१४४॥

અર્થ—હસ્તિનીના કેશ ઝીણા, ચિત્રિણીના વાકા, શખિનીના લાબા અને પદ્મિનીના નિબિડ (ભરાવદાર) થાય છે (૧૪૪)

आसने वाथ शय्याया, जीवाङ्गे विनिवेशयेत् ॥
जायन्ते नियतं वश्या, कामिन्यो नात्र संशयः ॥१४५॥

અર્થ—વહેતી નાસિકાની બાજુએ જો સ્ત્રીને આસન ઉપર અથવા બિછાના ઉપર બેસાડે તો તે નક્કી વશ થાય છે, એમા સશય નથી. (૧૪૫)

अर्गला रक्षणं स्त्रीणा, प्रीतिरेव निरर्गला ॥
पदातिपरिवेषस्तु, पत्युः क्लेशाय केवलम् ॥१४६॥

અર્થ—ભર્તારની અનુપમ પ્રીતિ એજ સ્ત્રીને ખોટે માર્ગ જતા અટકાવનારી છે બાકી સ્ત્રીની આસપાસ તેના રક્ષણને અર્થે દાસી પ્રમુખ પરિવાર રાખવો તે કેવળ પતિને કલેશને અર્થે છે (૧૪૬)

न च व्यवर्णा नृत्य-प्रकथाङ्गी पथि विश्रमा ॥
मासिकमसत्वा नारी, काम्या षण्मासगर्भिणी ॥१४७॥

અર્થઃ—તાવવાળી નૃત્ય કરવાથી ઢીલા અવયવની, ચાલવાથી થાકેલી, ૭ માસની ગર્ભવતી અને પ્રસૂતિ થયાને જેને એકજ માસ થયો છે, એવી સ્ત્રી ભોગવવાં યોગ્ય નથી (૧૪૭)

वृक्षाद्वृक्षान्तरं गच्छन्, प्राज्ञैश्चिन्त्योऽत्र वानरः ॥
मनो यत्र स्मरस्तत्र, ज्ञानं वश्यकरं ह्यदः ॥१४८॥

અર્થઃ—જાણ પુરૂષે એક વૃક્ષ ઉપરથી બીજે વૃક્ષે કૂદતો વાંદરો ચિંતવવો એટલે જેમ વાંદરો એક વૃક્ષ મૂકી બીજે વૃક્ષે જાય છે, તેમ મન એક વિષય મૂકીને બીજે વિષયે જાય છે, અને જ્યાં મન જાય ત્યાં કામદેવ સાથે છેજ. (માટે મન સ્થિર રાખવું.) એવો બોધ ઇંદ્રિયોને વશ કરનારો જાણવો. (૧૪૮)

कम्पनर्तनहास्याश्रु-मोक्षप्रोच्चैःस्वरादिकम् ॥
प्रमदा सुरतोन्मत्ता, कुरुते तत्र निःसहा ॥१४९॥

અર્થઃ—કામ વિકાર ખમવા અશક્ત થએલી અને સંભોગને અર્થે ઉન્મત્ત થએલી સ્ત્રી શરીર કંપાવે છે, નાચે છે, હસે છે, આંસુ ગાળે છે. અને ઊંચે સ્વરે બોલે છે, ઇત્યાદિ લક્ષણ જાણવાં. (૧૪૯)

रतान्ते श्रूयतेऽकस्माद्, घण्टानादस्त्वनुत्थितः ॥
येन तस्यैव पञ्चत्वं, पञ्चमास्या ततो भवेत् ॥१५०॥

અર્થઃ—જે પુરૂષ સ્ત્રીસંભોગ કરી રહ્યા પછી ઘંટા ન વાગતી હોય તો એ તેનો શબ્દ સાંભળે, તેનું પાંચ માસમાં મરણ થાય. (૧૫૦)

पक्षाग्निदाघे हेमन्ते, नित्यमन्यर्तुषु त्र्यहात् ॥
स्त्रिय कामयमानस्य, जायते न बलक्षयः ॥१५१॥

અર્થ—પુરૂષ જો ગ્રીષ્મ[1] ઋતુમા પખવાડિએ, હેમત ઋતુમા પ્રતિદિવસે અને બીજી ઋતુમા ત્રણ દિવસે સ્રીસભોગ કરે તો તેના બળનો ક્ષય થાય નહી (૧૫૧)

त्र्यहाद्वसन्तशरदोः, पक्षाद्वर्षानिदाघयोः ॥
सेवेत कामिनीं कामं, हेमन्ते शिशिरे बली ॥१५२॥

અર્થ—બળવાન્ પુરૂષે વસત તથા શરદ્ એ બે ઋતુમા ત્રણ દિવસે, વર્ષા અને ગ્રીષ્મ એ બે ઋતુ પખવાડીએ તથા હેમત અને શિશિર એ બે ઋતુમા ઇચ્છા માફક સ્રીસભોગ કરવો (૧૫૨)

अतीर्ष्यातिप्रसङ्गोऽति-दानमत्यागमस्तथा ॥
चत्वारोऽमी न कर्तव्याः, कामिभिः कामिनीष्वपि ॥१५३॥

અર્થ—કામી પુરૂષે કામવતી સ્રીઓને વિષે પણ ઘણી ઇર્ષ્યા (અદેખાઇ), ઘણો પ્રસગ, ઘણુ દાન અને ઘણુ જવુ આવવુ આ ચાર વાના ન કરવા (૧૫૩)

अतीर्ष्यातो हि रोषः स्या-दुद्वेगोऽतिप्रसङ्गतः ॥
लोभोऽतिदानतः स्त्रीणा-मत्यागमादलज्जता ॥१५४॥

અર્થ—જો પુરુષ સ્રીને વિષે ઘણી ઇર્ષ્યા રાખે તો તે

---

[1]—ચૈત્ર વૈશાખ વસત, જ્યેષ્ઠ આષાઢ ગ્રીષ્મ, શ્રાવણ ભાદ્રપદ વર્ષા, આશ્વિન કાર્તિક શરદ, માર્ગશીર્ષ પોષ હેમત અને માઘ ફાલ્ગુન શિશિર ઋતુ જાણવી

ક્રોધ પામે, ઘણો પ્રસંગ કરે તો ઉદ્વેગ પામે, દ્રવ્યાદિક ઘણું આપે તો તેનો (સ્ત્રીનો) લોભ વધે, અને હમેશાં જાવ આવ કરે તો તે (સ્ત્રી) નિર્લજ્જ થાય (૧૫૪)

वितन्वतीं क्षुतं जृम्भां, स्नानपानाशनानि च ॥
मूत्रकर्म च कुर्वाणां, कुवेषां च रजस्वलाम् ॥१५५॥

तथान्यनरसंयुक्तां, पश्येत्कान्तो न कामिनीम् ॥
एवं हि मानसं तस्यां, विरज्येतास्य निश्चितम् ॥१५६॥

અર્થઃ—છીંક, બગાસું, પાન, ભોજન અને લઘુનીતિ એમાં કાંઇ કરતી હોય, નઠારો વેષ પહેરેલી હોય, (છેટે બેઠેલી) હોય, તથા કોઈ પુરૂષ સાથે વાર્તા કરતી હોય, એવી સ્ત્રીના સામું પુરૂષે જોવું નહીં. કારણ કે, તેમ કરવાથી પુરૂષનું મન સ્ત્રી ઉપરથી ઉતરે છે. (૧૫૫) (૧૫૬)

अत्यालोकादनालोका-त्तथानालापनादपि ॥
प्रवासादतिमानाच्च, त्रुट्यति प्रेम योषिताम् ॥१५७॥

અર્થઃ—વારે ઘડીએ જોવાથી, બિલકુલ ન જોવાથી, ઘણું બોલવાથી, બીલકુલ ન બોલવાથી, પરદેશ જવાથી, તથા ઘણા અહંકારથી સ્ત્રીનો પ્રેમ તુટે છે. (૧૫૭)

न प्रीतिवचनं दत्ते, नालोकयति सुन्दरम् ॥
उक्ता धत्ते क्रुधं द्वेषा-न्मित्रद्वेषं करोत्यलम् ॥१५८॥

विरहे हृष्यति व्याजा-दीर्ष्यामपि करोत्यलम् ॥
योगे सीदति सावर्थं, वदनं मोटयत्यथ ॥१५९॥

शेते शय्यागता शीघ्र, स्पर्शादुद्विजते तराम् ॥
कृतं किमपि न स्तौति, विरक्तेर्लक्षण स्त्रियाः ॥१६०॥

અર્થ —જે સ્ત્રીનો રાગ પુરૂષ ઉપરથી ઉતરી ગયો હોય તે સ્ત્રી પ્રેમસહિત વચન ન બોલે, સારી રીતે સામુ જુવે નહી, બોલાવ્યાથી ક્રોધ કરે, મનમા દ્વેષ ગણી પુરૂષના મિત્રની જોડે ઇર્ષા કરે, ભર્તારનો વિયોગ થવાથી પ્રસન્ન થાય, કાઇ મિષથી અદેખાઇ ઘણી કરે, ભર્તારનો સયોગ થાય તો ખેદ પામે, મુખ ઘણુ મરડે, બીછાના ઉપર આવી તુરત ઉંઘી જાય, ભર્તારના સ્પર્શ કરવાથી ઉદ્વેગ પામે, તથા ભર્તારે કરેલા કોઇપણ કામને વખાણે નહી એ રાગરહિત સ્ત્રીના લક્ષણ જાણવા (૧૫૮) (૧૫૯) (૧૬૦)

विश्रम्भोक्तिमुपालम्भ—माङ्गिक वैकृत तथा ॥
रतिक्रीडाच कामिन्या, नापरासु प्रकाशयेत् ॥१६१॥

અર્થ —સ્ત્રીના પ્રેમવચન, અથવા તેણે દીધેલો ઓલભો, તેનુ કટાક્ષથી જોવા પ્રમુખ, અને તેની જોડે કરેલી રતિક્રીડા એ સર્વ બીજી સ્ત્રી આગળ પુરૂષે પ્રગટ કરવા નહી (૧૬૧)

कामिन्या वीक्ष्यमाणाया, जुगुप्साजनकं बुध· ॥
श्लेष्मक्षेपादि नो कुर्या—द्विरज्येत तथाहि सा ॥१६२॥

અર્થ—ડાહ્યા માણસે સ્ત્રીના દેખતા નાકમાથી સળેખમ કાઢવા પ્રમુખ દુગછા ઉપજાવે એવુ કૃત્ય ન કરવુ કારણ, તેથી સ્ત્રીનુ મન પુરૂષ ઉપરથી ઉતરી જાય (૧૬૨)

दत्ते या कन्यका यस्मै, माता भ्राता पितायवा ॥
देवतेव तया पूज्यो, गतसर्वगुणोऽपि सन ॥१६३॥

અર્થઃ—કન્યાના માબાપ અથવા ભાઈ તેને જે ભર્તારને આપે, તે (ભર્તાર) સર્વ ગુણરહિત હોય, તોપણ તેની તેણે (કન્યાએ) દેવતાની પેઠે સેવા કરવી. (૧૬૩)

पितृभर्तृसुतैर्नार्यो, बाल्ययौवनवार्धके ॥
रक्षणीयाः प्रयत्नेन, कलङ्कः स्यात्कुलेऽन्यथा ॥१६४॥

અર્થઃ—બાળપણામાં પિતાએ, યુવાવસ્થામાં ભર્તારે અને વૃદ્ધાવસ્થામાં પુત્રે સ્ત્રીનું રક્ષણ કરવું. નહીંતો કુળને કલંક લાગે. (૧૬૪)

दक्षा तुष्टा प्रियालापा, पतिचित्तानुगामिनी ॥
कालौचित्याद्व्ययकरी, या सा लक्ष्मीरिवापरा ॥१६५॥

અર્થઃ—જે સ્ત્રી ડાહી, સંતોષી, મધુર વચન બોલનારી, પતિનું ચિત્ત રાજી રહે તેમ ચાલનારી અને સમય જોઈને ખરચ કરનારી એવી હોય, તે એક લક્ષ્મીસમાન જાણવી. (૧૬૫)

शयिते दयिते शेते–ऽस्मात्पूर्वं तु विबुध्यते ॥
भुङ्क्ते भुक्तवति ज्ञात–सत्कृत्या स्त्रीमतल्लिका ॥१६६॥

અર્થઃ—જે સ્ત્રી ભર્તાર સુઈ રહ્યા પછી સુવે, પહેલાં જાગે, તેણે ભોજન કર્યા પછી પોતે કરે, અને ભર્તારની સેવા શી રીતે કરવી તે સારી પેઠે જાણે, તે સ્ત્રી શ્રેષ્ઠ જાણવી. (૧૬૬)

न कुत्सयेद्वरं बाला, श्वशुरप्रमुखांश्च या ॥
ताम्बूलमपि नादत्ते, दत्तमन्येन सोत्तमा ॥१६७॥

અર્થઃ—જે સ્ત્રી પોતાના ભર્તારના તથા સાસૂ, સસરો

વિગેરે તેના પરિવારના દોષ ન બોલે, અને પરપુરૂષે આપેલા પાનના બીડાને પણ સ્પર્શ ન કરે, તે સ્રી ઉત્તમ જાણવી (૧૬૭)

कुलस्त्रिया न गन्तव्य–मुत्सवे चत्वरेऽपि च ॥
देवयात्राकथास्थाने, न तथा रङ्गजागरे ॥१६८॥

અર્થ —કુલીન સ્રીએ મેળામા, ચૌટામા, યાત્રામા, કથા ચાલતી હોય ત્યાં તથા નાટક રંગના ઉજાગરામા જવું નહી (૧૬૮)

या दृष्ट्वा पतिमायान्त—मभ्युत्तिष्ठति सम्भ्रमात् ॥
तत्पादन्यस्तदृष्टिश्च, दत्ते तस्यासन स्वयम् ॥१६९॥
भाषिता तेन सव्रीड, नम्रीभवति च क्षणात् ॥
स्वयं सविनय तस्य, परिचर्या करोति च ॥१७०॥
निर्व्याजहृदया पत्यौ, श्वश्रूषु व्यक्तभक्तिभाक् ॥
सदा नम्रा ननान्दृणा, बद्धस्नेहा च बन्धुषु ॥१७१॥
सपत्नीष्वपि सप्रीतिः, परिवारेषु वत्सला ॥
सनर्मपेशलालापा, कमितुर्मित्रमण्डले ॥१७२॥
या च तद्वेपिषु द्वेष–सम्श्लेषकलुषाशया ॥
गृहश्रीरिव सा साक्षा–द्गेहिनी गृहमेधिनाम् ॥१७३॥

અર્થ —જે સ્રી પતિને આવતા જોઇને ઉતાવળથી ઉઠે, અને તેના ચરણકમળે દૃષ્ટિ રાખી તેને પોતે આસન આપે ભર્તાર વાતચિત કરે ત્યારે તત્કાળ લજ્જાથી નમ્ર થાય, વિનય સાચવી પોતે પતિની સેવા કરે, ભર્તાર ઉપર કપટ

છતે નેત્ર આંજવાં નહીં, આભૂષણ પહેરવાં નહીં, ગાવું નહીં, નાચવું નહીં, દાતણ કરવું નહીં, મશ્કરીનાં તથા આક્ષેપનાં વચન બોલવાં નહીં, સોગઠાબાજી પ્રમુખ ક્રીડા કરવી નહીં, ચિત્રામણ પ્રમુખ જોવાં નહીં, ઉવટણું વિગેરે લગાડવું નહીં, તાંબૂલ તથા મિષ્ટાન્ન ખાવાં નહીં, તથા જેથી મનમાં પ્રીતિ ઉપજે તે સર્વ ન કરવું. (૧૮૦) (૧૮૧)

सदैव वस्तुनः स्पर्शः रजन्यां तु विशेषतः ॥
संध्याटनमुडुप्रेक्षां, धातुपात्रे च भोजनम् ॥ १८२ ॥

माल्याञ्जने दिवास्वापं दन्तकाष्टं विलेपनम् ॥
स्नानं पुष्टाशनादर्शा–लोकौ मुञ्चेद्रजस्वला ॥ १८३ ॥

અર્થઃ—રજસ્વલા (છેટે બેઠેલી) સ્ત્રીએ હમેશાં તથા વિશેષે કરી રાત્રિએ કોઇ વસ્તુને અડકવું નહીં, સંધ્યાને સમયે ફરવું નહીં, નક્ષત્રો જોવાં નહીં. ધાતુના પાત્રમાં ભોજન ન કરવું, ફૂલોની માળા ન પહેરવી, આંખો ન આંજવી, દિવસે નિદ્રા ન લેવી, દાતણ તથા સ્નાન ન કરવું ચંદન પ્રમુખ ન ચોપડવું, પુષ્ટિ આપે એવું અન્ન ન ખાવું, અને આરિસામાં ન જોવું. (૧૮૨) (૧૮૩)

मृत्तिकाकाष्टपाषाण–पात्रेऽश्नीयाद्रजस्वला ॥
देवस्थाने शकृद्गोष्ठ—जलेषु न रजः क्षिपेत् ॥१८४॥

અર્થ—રજસ્વલા સ્ત્રીએ માટીના, લાકડાના અથવા પત્થરના પાત્રમાં ભોજન કરવું, તથા પોતાની ઋતુ દેવસ્થાન, ગાયનું છાણ, ગાયોનો વાડો, અને જળ એટલે ઠેકાણે ન નાંખવી. (૧૮૪)

स्नात्वैकान्ते चतुर्थेऽह्नि, वर्जयेदन्यदर्शनम् ॥
सुशृङ्गारा स्वभर्तारं, सेवेत कृतमङ्गला ॥१८५॥

અર્થ —રજસ્વલા સ્ત્રીએ ચોથે દિવસે એકાંતે ન્હાઈ પર પુરૂષને ન જોવું પણ સારો શૃંગાર સજી, મંગળિક કરી પોતાના ભર્તારને સેવવો (૧૮૫)

निशाःषोडश नारीणा–मृतुः स्यात्तासु चादिमाः ॥
तिस्रः सर्वैरपि त्याज्याः प्रोक्ता तुर्यापि केन चित् ॥१८६॥

અર્થ —સ્ત્રીઓની સોળ રાત્રિ સુધી ઋતુ હોય છે તે સોળમાં પહેલી ત્રણ રાત્રિ સંભોગના સંબંધમાં વર્જવી, એવો સર્વે આચાર્યોનો મત છે, પણ કેટલાક "ચોથી રાત્રિ પણ વર્જવી" એમ કહે છે (૧૮૬)

चतुर्थ्यां जायते पुत्रः, स्वल्पायुर्गुणवर्जितः ॥
विद्याचारपरिभ्रष्टो, दरिद्रः क्लेशभाजनम् ॥१८७॥

અર્થ —ચોથીરાત્રિએ જો ગર્ભ રહે તો અલ્પ આયુષ્યવાળો, ગુણરહિત, વિદ્યાથી તથા આચારથી ભ્રષ્ટ, દરિદ્રી અને ક્લેશને ભોગવનારો એવો પુત્ર થાય છે (૧૮૭)

पञ्चम्यां पुत्रिणी नारी, षष्ठ्यां पुनस्तु पुत्रवान् ॥
सप्तम्यामप्रजा कन्या, चाष्टम्यामीश्वरः सुतः ॥१८८॥

અર્થ —પાચમી રાત્રિએ ગર્ભ રહે તો પુત્રને જણનારી કન્યા થાય, છઠી રાત્રિએ ગર્ભ રહે તો પુત્રવંત પુત્ર થાય, સાતમી રાત્રિએ ગર્ભ રહે તો વાંઝણી કન્યા થાય, અને આઠમીએ ગર્ભ રહે તો સમર્થ પુત્ર થાય (૧૮૮)

नवम्यां सुभगा नारी, दशम्यां प्रवरः सुतः ॥
एकादश्यामधर्मा स्त्री, द्वादश्यां पुरुषोत्तमः ॥ ॥१८९॥

અર્થઃ—નવમી રાત્રિએ ગર્ભ રહે તો સુંદર કન્યા થાય, દસમી રાત્રિએ રહે તો શ્રેષ્ઠ પુત્ર થાય, અગ્યારમી રાત્રિએ રહે તો અધર્મી કન્યા થાય, તથા બારમીએ રહે તો સત્પુરૂપ ઉત્પન્ન થાય. (૧૮૯)

त्रयोदश्यां सुता पापा, वर्णसंकरकारिणी ॥
प्रजायते चतुर्दश्यां, सुपुत्रो जगतीपतिः ॥१९०॥

અર્થઃ—તેરમી રાત્રિએ ગર્ભ રહે તો વર્ણસંકર કરનારી પાપી કન્યા થાય, ચોદમી રત્રિએ ગર્ભ રહે તો પૃથ્વીનું રાજ્ય કરે એવો સુપુત્ર થાય. (૧૯૦)

राजपत्नी महाभोगा, राजवंशकरा सती ॥
जायते पञ्चदश्यां तु, बहुपुण्या च सुव्रता ॥१९१॥

અર્થઃ—પંદરમી રાત્રિએ ગર્ભ રહે તો ઘણી ભાગ્યશાળી રાજવંશ ચલાવનારી, રાજાની રાણી, ઘણાં સુખ ભોગવનારી, બહુ પુણ્ય ઉપાર્જન કરનારી અને પતિવ્રતા એવી પુત્રી થાય. (૧૯૧)

विद्याविनयसंपन्नः, सत्यवादी जितेन्द्रियः ॥
आश्रयः सर्वभूतानां, षोडश्यां जायते पुमान् ॥१९२॥

અર્થઃ—સોળમી રાત્રિએ ગર્ભ રહે તો વિદ્વાન્, વિનયી, સત્યવાદી, ઇંદ્રિયોને વશ રાખનાર અને સર્વ જીવને આશ્રય રનાર એવો પુત્ર થાય. (૧૯૨)

समाया निशिपुत्रः स्या-द्विपमाया तु पुत्रिका ॥
स्त्रीणामृतुरते कार्यं, न च दन्तक्षतादिकम् ॥ १९३ ॥

અર્થ —ચોથી, છઠી ઈત્યાદિ બેકી સખ્યામા આવતી રાત્રિએ ગર્ભ રહે તો પુત્ર થાય, અને પાચમી, સાતમી ઈત્યાદી એકી સખ્યામા આવતી રાત્રિએ ગર્ભ રહે તો પુત્રી થાય સ્ત્રી ઋતુવાળી હોય ત્યારે તેની સાથે સભોગ કરતા દાત અથવા નખ મારવા નહીં (૧૯૩)

दिवा कार्यो न सभोगः, सुधिया पुत्रमिच्छता ॥
दिवासभोगसजातो, जायतेऽबलाङ्गकः ॥ १९४ ॥

અર્થ —પુત્રની ઇચ્છા કરનાર બુદ્ધિશાળી પુરૂષે દિવસે સભોગ કરવો નહી કારણ દિવસે સભોગ કરવાથી ઉત્પન્ન થએલો પુત્ર નિર્બળ થાય છે (૧૯૪)

पुत्रार्थमेव संभोगः, शिष्टाचारवतां मतः ॥
ऋतुस्नाता पवित्राङ्गी, गम्या नारी नरोत्तमैः ॥१९५॥

અર્થ —પુત્રને અર્થેજ સ્ત્રી સભોગ કરવો એવો શ્રેષ્ઠ પુરૂષોનો મત છે માટે ઋતુવતી સ્ત્રી સ્નાન કરી પવિત્ર થાય ત્યારેજ ઉત્તમપુરૂષોએ તેની જોડે સભોગ કરવો (૧૯૫)

अन्यो व्यसनिनां काम', सर्वधर्मार्थबाधकः ॥
सद्भिः पुनः स्त्रियः सेव्याः, परस्परमबाधया ॥१९६॥

અર્થ —ધર્મનો અને ધનનો સર્વથા નાશ કરી નાખે એવો વિલક્ષણ કામવિકાર વ્યસની પુરૂષોને હોય છે પણ ઉત્તમ પુરૂષોએ તો ધર્મનો તથા ધનનો નાશ ન થાય તેવી રીતે સ્ત્રીઓનુ સેવન કરવુ (૧૯૬)

दृष्ट एव ध्रुवं पुष्पे, नारी स्यान्मैथुनोचिता ॥
सेव्या पुत्रार्थमापञ्च-पञ्चाशद्वत्सरं पुनः ॥१९७॥

અર્થઃ—સ્ત્રી જ્યારે પુષ્પવતી (ઋતુવંતી) થાય, ત્યારેજ મૈથુનને ઉચિત થાય. સ્ત્રી પુષ્પવતી થયા પછી તેની પંચાવન વર્ષની ઉમર થાય ત્યાં સુધી પતિએ પુત્રને અર્થે તેને ભોગવવી. (૧૯૭)

वलक्षयो भवेदूर्ध्वं, वर्षेभ्यः पञ्चसप्ततेः ॥
स्त्रीपुंसयोर्न युक्तं त-न्मैथुनं तदनन्तरम् ॥१९८॥

અર્થઃ—પુરૂષે પોતની પંચોતેર વર્ષની ઉમર થાય ત્યાં સૂધી મૈથુન સેવવું. ઉપર કહેલી સ્ત્રીની તથા પુરૂષની મર્યાદાને સ્ત્રી અથવા પુરૂષ ઉલ્લંઘન કરે તો તેમનું બળક્ષય પામે છે. માટે સ્ત્રીએ પંચાવન વર્ષ પછી અને પુરૂષે પંચોતેર વર્ષ પછી વિષયભોગ ન કરવો. (૧૯૮)

स्त्रियां षोडशवर्षायां, पञ्चविंशतिहायनः ॥
बुद्धिमानुद्यमं कुर्या-द्विशिष्टसुतकाम्यया ॥१९९॥

અર્થઃ—પચીશ વર્ષની ઉમરના જાણ પુરૂષે સોળ વર્ષની કન્યાની સાથે સુપુત્રને અર્થે સંભોગ કરવો. (૧૯૯)

तदा हि प्राप्तवीर्यौ तौ, सुतं जनयतः परम् ॥
आयुर्वलसमायुक्तं, सर्वेन्द्रियसमन्वितम् ॥ २०० ॥

અર્થઃ—કારણ, તે વખતે બન્ને સ્ત્રી ભર્તાર પરિપકવ (પાકટ) વીર્યના હોવાથી આયુષ્ય બળ તથા સર્વે ઇંદ્રિયો એ ત્રણે વાનાંથી પરિપૂર્ણ એવા પુત્રને ઉત્પન્ન કરે છે. (૨૦૦)

न्यूनषोडशवर्षायां, न्यूनाब्दपञ्चविंशतिः ॥
पुमान्य जनयेद्गर्भं, स प्रायेण विपद्यते ॥ २०१ ॥

અર્થ —પચીશ વર્ષથી ઓછી ઉમરનો પુરૂષ સોળ વર્ષથી ઓછી ઉમરની સ્ત્રી સાથે સંભોગ કરે તો તે ગર્ભ સાથે ગર્ભાશયમાંજ નાશ પામે છે (૨૦૧)

अल्पायुर्बलहीनो वा, दारिद्र्योपद्रुतोऽथवा ॥
कुष्ठादिरोगी यदि वा, भवेद्वा विकलेन्द्रियः ॥ २०२ ॥

અર્થ —અથવા તે સંતતિ, અલ્પઆયુષ્યવાળી, નિર્બળ, દરિદ્રી, કુષ્ઠ પ્રમુખ રોગવાળી તથા અપંગ થાય છે (૨૦૨)

प्रसन्नचित्त एकान्ते, भजेन्नारीं नरो यत.
यादृङ्मनाः पिताधाने पुत्रस्तत्सदृशो भवेत् ॥२०३॥

અર્થ —પુરૂષે પ્રસન્ન ચિત્તથી એકાંતમાં સ્ત્રી સેવવી જોઇએ, તે સમયે પિતાનું જેવું મન હોય તેવી સંતતિ થાય છે (૨૦૩)

भजेन्नारीं शुचि प्रीतः, श्रीखण्डादिभिरन्मरः ॥
अश्राद्धभोजी तृष्णादि—बाधया परिवर्जितः ॥२०४॥

અર્થ —જે દિવસે શ્રાદ્ધનું ભોજન ન કર્યું હોય, તથા તૃષા, ક્ષુધા, પ્રમુખની શરીરે વેદના ન હોય, ત્યારે કામી પુરૂષ ચંદન કેશર પ્રમુખ વસ્તુનો શરીરે લેપ કરી, પવિત્ર થઇ પ્રીતીથી સ્ત્રીને ભોગવે (૨૦૪)

साविभ्रमवचोभिश्च, पूर्वमुल्लास्य तद्भगम् ॥
समकाल्पतन्मूल—कमलक्रोडरेतसम् ॥ २०५ ॥

पुत्रार्थं रमयेद्धीमान्, वहद्दक्षिणनासिकम् ॥
अवहद्वामनाडिस्तु, कामयेतान्यदा पुनः ॥२०६॥ युग्मम् ॥

અર્થઃ—પુરૂષે દક્ષિણ નાસિકા વહેતી હોય ત્યારે વિલાસના વચનોથી સ્ત્રીને કામવિકાર ઉપજાવીને સ્ત્રી ઇંદ્રિયના કમળાકાર મૂળ પ્રદેશમાં વીર્ય સમકાળે મિશ્ર થાય તેવી રીતે પુત્રને અર્થે સંભોગ કરવો. અને પુત્રીની ઇચ્છા હોય તો ડાબી નાસિકા વહેતી હોય ત્યારે સંભોગ કરવો. (૨૦૫) (૨૦૬)

गर्भाधाने मघा वर्ज्या, रेवत्यापि यतोऽनयोः ॥
पुत्रजन्मदिने मूला–श्लेषे स्तस्ते च दुःखदे ॥२०७॥

અર્થઃ—ગર્ભ ધારણને અવસરે મઘા તથા રેવતી એ બન્ને નક્ષત્ર વર્જવાં. કારણ કે, તેથી પુત્રના જન્મના અવસરે મૂળ તથા આશ્લેષા નક્ષત્ર આવે છે. અને તે નક્ષત્રો બહુ દુઃખ દેનારાં છે. (૨૦૭)

रत्नानीव प्रशस्तेऽह्नि, जाताः स्युः सूनवः शुभाः ॥
अतो मूलमपि त्याज्यं, गर्भाधाने शुभार्थिभिः ॥२०८॥

અર્થઃ—ઉત્તમ દિવસે ઉત્પન્ન થએલા પુત્રો રત્નોની માફક સારા નીપજે છે. માટે કલ્યાણના અર્થી પુરૂષોએ ગર્ભાધાનને સમયે મૂળ નક્ષત્રનો પણ ત્યાગ કરવો. (૨૦૮)

आधानाद्दशमे जन्म, दशमे कर्म जन्मभात् ॥
कर्मभात् पञ्चमे मृत्युः, कुर्यादेषु न किं चन ॥२०९॥

અર્થઃ—ગર્ભાધાન નક્ષત્રથી દશમું જન્મનક્ષત્ર, જન્મનક્ષત્રથી દશમું કર્મનક્ષત્ર અને કર્મ નક્ષત્રથી પાંચમું મૃત્યુનક્ષત્ર

કહેવાય છે માટે એ ચારે નક્ષત્રોને વિષે કાંઈ પણ કાર્ય ન કરવું (૨૦૯)

पापाः पट्त्रायगाः सौम्या–स्तनुत्रिकोणकेन्द्रगाः ॥
स्त्रीसेवासमये सौम्य–युक्तेन्दुः पुत्रजन्मदः ॥ २१० ॥

અર્થ —સ્ત્રીના સંભોગને સમયે પાપગ્રહ (રવિ, શનિ, મંગળ, રાહુ, કેતુ) ત્રીજે, છઠે અથવા અગ્યારમે સ્થાને હોય, સૌમ્યગ્રહ (બુધ, ગુરૂ, શુક્ર, ચંદ્ર) પહેલે, ચોથે, સાતમે, દસમે, પાચમે અથવા નવમે સ્થાને હોય, અને ચંદ્રમા શુભ ગ્રહના યોગમા હોય તો પુત્રજન્મ થાય છે (૨૧૦)

पुराणे रजसि क्षीणे, नवासृक्शुक्रसंचये ॥
स्त्रीणां गर्भाशये जीवः, स्वकर्मवशगो विशेत् ॥ २११ ॥

અર્થ —ઋતુ સંબંધી પુરાણું લોહી નાશ પામે, અને નવા ઋતુના લોહીનું તથા વીર્યનું મિશ્રણ થાય, ત્યારે સ્ત્રીના ગર્ભાશયમા પોતાના કર્મના વશથી જીવ અવતરે છે (૨૧૧)

नारी रक्तेऽधिके शुक्रे, नरः साम्ये नपुंसकः ॥
अतो वीर्यविवृद्ध्यर्थं, वृष्ययोगाञ्श्रयेत्पुमान् ॥ २१२ ॥

અર્થ —સંભોગને સમયે સ્ત્રીનું લોહી અધિક હોય તો કન્યા થાય, અને પુરૂષનું વીર્ય અધિક હોય તો પુત્ર થાય છે, અને જો સ્ત્રીનું લોહી અને પુરૂષનું વીર્ય સરખું હોય તો નપુંસક સંતતિ થાય છે માટે પુરૂષે વીર્યની વૃદ્ધિને અર્થે વૃષ્ય (વીર્યની વૃદ્ધિ કરનાર વસ્તુનું સેવન વિગેરે) ઉપાય કરવા. (૨૧૨)

यत्किंचिन्मधुरं स्निग्धं, बृंहणं बलवर्धनम् ॥
मनःप्रह्लादनं चैव, तत्सर्वं वृष्यमुच्यते ॥ २१३ ॥

અર્થ—જે કોઈ વસ્તુ મધુર, ચીકણી, પુષ્ટિ કરનારી, બળને વધારનારી અને મનને હર્ષ ઉપજાવનારી હોય, તે સર્વ (વસ્તુ) વૃષ્ય કહેવાય છે. (દૂધ, અડદ, કૌંચબીજ પ્રમુખ વસ્તુ વૃષ્ય જાણવી.) (૨૧૩)

पितुः शुक्रं जनन्याश्च, शोणितं कर्मयोगतः ॥
आसाद्य कुरुते जीवः, सद्यो वपुरुपक्रमम् ॥२१४॥

અર્થઃ—જીવ પિતાના વીર્યને અને માતાના લોહીને કર્મયોગથી પામીને તત્કાળ પોતાનું શરીર તૈયાર કરવા માંડે છે. (૨૧૪)

भवेदेतदहोरात्रैः, सप्तभिः सप्तभिः क्रमात् ॥
कललं चार्बुदं चैव, ततः पेशी ततो घनः ॥२१५॥

અર્થઃ—પિતાનું વીર્ય તથા માતાનું લોહી એકત્ર થયા પછી સાત દિવસમાં તેનું કલલ (એક રૂપ) થાય છે, પછી સાત દિવસે કલલનું અર્બુદ (પર્પોટા જેવો આકાર) થાય છે, તે પછી સાત દિવસે અર્બુદની પેશી (કોથળી જેવો આકાર) બને છે, અને તે પછી સાત દિવસમાં પેશીનો ઘન (અંદરથી નક્કર ભાગ) થાય છે. (૨૧૫)

प्रथमे मासि तत्ताव–त्कर्षन्यूनं पलं भवेत् ॥
द्वितीयेऽभ्यधिकं किंचि–त्पूर्वस्मादथ जायते ॥२१६॥

અર્થઃ—તે ગર્ભ પહેલે મહિને દોઢસો ચણોઠી જેટલો તોલમાં હોય છે. અને બીજે મહિને પહેલાં કરતાં થોડો વધારે થાય છે. (૨૧૬)

जनन्याः कुरुते गर्भ–स्तृतीये मासि दोहदम् ॥
गर्भानुभावतश्चैत–दुत्पद्येत शुभाशुभम ॥२१७॥

અર્થ —તે ગર્ભ ત્રીજે મહિને માતાને દોહળો ઉપજાવે છે તે (દોહળો) ગર્ભના પ્રભાવથી અર્થાત્ જેવો ગર્ભ હોય તે પ્રમાણે શુભ અથવા અશુભ ઉપજે છે (૨૧૭)

पुनाम्नि दोहदे जाते, पुमान्स्त्रीमिनके पुन' ॥
स्त्री स्त्रियादि पुनः क्लीब, स्वप्नेऽप्येवं विनिर्दिशेत् ॥२१८॥

અર્થ —પુરૂષ જાતિની વસ્તુનો દોહળો થાય તો પુત્ર થાય, સ્ત્રી જાતિની વસ્તુનો થાય તો પુત્રી થાય, અને નપુંસક જાતિની વસ્તુ ઉપર થાય તો નપુંસક થાય ગર્ભિણીને આવતા સ્વપ્નનું ફળ પણ એ રીતેજ જાણવું (૨૧૮)

अपूर्णाद्दोहदाद्वायु', कुपितोऽन्तः कलेवरम् ॥
गर्भो विनाशयेद्गर्भं, विरूप कुरुतेऽथवा ॥२१९॥

અર્થ —દોહળો પૂર્ણ ન થાય તો તેથી ગર્ભિણીના શરીરની અંદર વાયુ કુપિત થઇ ગર્ભનો નાશ કરે છે અથવા તેને (ગર્ભને) કદ્રુપ કરે છે (૨૧૯)

मातुरङ्गानि तुर्ये तु, मासे मांसलयत्यसौ ॥
पाणिपादादिकाङ्गानि, जायन्ते पञ्च पञ्चमे ॥२२०॥

અર્થ —તે ગર્ભ ચોથા મહિને માતાના શરીરને પુષ્ટ કરે છે, અને પાંચમે મહિને તે ગર્ભમાંથી હાથના બે, પગના બે અને માથું એ પાંચ અંકુરા ઉગે છે. (૨૨૦)

षष्ठे तूपचिनोत्युच्चै-रात्मनः पित्तशोणिते ॥
सप्तमे पूर्वमानात्तु, पेशी पञ्चशतीगुणा ॥२२१॥

અર્થઃ—તે ગર્ભ છઠે મહિને પોતાના પિત્તને તથા લોહીને વધારે છે, અને સાતમે મહિને પૂર્વે કહેલી પેશી તોલથી આગળ કરતાં પાંચસો ગણી થાય છે. (૨૨૧)

करोति नाभिप्रभवां, नाडीसप्तशतीं तथा ॥
नवसंख्याः पुनस्तत्र, धमनी रचयत्यसौ ॥२२२॥

અર્થઃ—વળી તે ગર્ભ નાભિથી નીકળતી સાતસો નાડીઓ અને નવ ધમનીઓ ઉત્પન્ન કરે છે. (૨૨૨).

नाड्यः सप्त शतानि स्यु-र्विंशत्यूनानि योषिताम् ॥
भवेयुः षंढदेहे तु, त्रिंशदूनानि तान्यपि ॥२२३॥

અર્થઃ—સ્ત્રીના શરીરમાં છસો એંશી નાડીઓ હોય છે, અને નપુંસકના શરીરમાં છસો શિત્તેર હોય છે. એટલે પુરૂષ કરતાં સ્ત્રીના શરીરમાં વીસ અને નપુંસકના શરીરમાં ત્રીશ ઓછી હોય છે. (૨૨૩)

नव स्रोतांसि पुंसां स्यु-रेकादश तु योषिताम् ॥
दन्तस्थानानि कस्यापि, द्वात्रिंशत्पुण्यशालिनः ॥२२४॥

અર્થઃ—પુરૂષના શરીરે સ્રોત (દ્વાર) નવ હોય છે, અને સ્ત્રીના શરીરે અગ્યાર હોય છે. તથા કોઈ ભાગ્યશાળી પુરૂષનેજ બત્રીશ દાંત હોય છે. (૨૨૪)

संधीन् पृष्ठकरण्डस्य, कुरुतेऽष्टादश स्फुटम् ॥
प्रत्येकमन्त्रयुग्मं च, व्यामपञ्चकमानकम् ॥२२५॥

અર્થ—જીવ પૃષ્ઠકરડના (પીઠના અસ્થિના) અઢાર ગાંઘા કરે છે તથા પ્રત્યેક જીવ બન્ને મળીને પાચ વામ જેટલુ લાબુ આતરડાનુ જોડુ કરે છે (૨૨૫)

करोति द्वादशाङ्गे च, पाशुलीना करण्डकान् ॥
तथा पाशुल्किापट्, मध्यस्थः सूत्रधारवत् ॥ २२६ ॥

અર્થ—ગર્ભમા રહેલો જીવ અદર રહેલા સુતારની પેઠે શરીરે બાર પાસળીના કરડક તથા છ પાસળીઓ બનાવે છે (૨૨૬)

लक्षोना रोमकूपाना, कुरुते कोटिमत्र च ॥
अर्धतुर्या रोमकोटी-रितस्तः स्सश्रुमूर्धजाः ॥२२७॥

અર્થ—ગર્ભમા રહેલો જીવ ક્રોડમા એક લાખ ઓછા અર્થાત્ નવાણુ લાખ રોમકુપ (રોમના કુવાઓ) તથા માથાના અને દાઢી મૂછના સર્વે મળી સાડા ત્રણ ક્રોડ રોમ ઉત્પન્ન કરે છે (૨૨૭)

अष्टमे मासि निष्पन्न-प्रायः स्यात्स्कल्पोऽप्यसौ ॥
तथौजोरुद्माहार, गृह्णात्येष विशेषतः ॥ २२८ ॥

અર્થ—ગર્ભ આઠમે મહિને ઘણો ખરો પરિપૂર્ણ થાય છે, અને વિશેષે કરી ઓજ આહાર ગ્રહણ કરે છે (૨૨૮)

गर्भे जीवो वसत्येव, वासाणा शतत्रयम् ॥
अधिक सप्तसप्तत्या, दिवसार्धेन च ध्रुवम् ॥२२९॥

અર્થ—એવી રીતે જીવ ગર્ભાવાસમા બસો આડી ચિ તેતેર (૭૭॥) નિશ્ચ કરે છે (૨૨૯)

गर्भस्त्वधोमुखो दुःखी, जनपीपृष्ठसंमुखः ॥
बद्धाञ्जलिर्ललाटे च, पच्यते जठराग्निना ॥२३०॥

અર્થઃ—ગર્ભમાં રહેલો જીવ માતાની પીઠ તરફ નીચે મુખ કરી બે હાથ માથે જોડી ઘણા દુઃખમાં રહે છે. તથા માતાના જઠરાગ્નિથી પરિપક્વ થાય છે. (૨૩૦)

असौ जागर्ति जाग्रत्यां, स्वपत्यां स्वपिति स्फुटम् ॥
सुखिन्यां सुखवान दुःखी, दुःखवत्यां च मातरि ॥२३१॥

અર્થઃ—ગર્ભમાં રહેલો જીવ માતા જાગે ત્યારે જાગે છે, ઉંઘે ત્યારે ઉંઘે છે, તે સુખી હોય ત્યારે પોતે સુખ પામે છે, અને તે દુઃખી થાય ત્યારે પોતે દુઃખી થાય છે. (૨૩૧)

पुरुषो दक्षिणे कुक्षौ, वामे स्त्री यमलौ द्वयोः ॥
ज्ञेयं तूदरस्तनध्यस्थं, नपुंसकमसंशयम् ॥२३२॥

અર્થઃ—પુરૂષજાતિનો ગર્ભ જમણી બાજુએ હોય છે, સ્ત્રી જાતિનો ડાબી બાજુએ, જોડું બન્ને બાજુએ અને નપુંસક જાતિનો ગર્ભ કુખના મધ્ય ભાગમાં રહે છે. (૨૩૨)

गण्डान्तो मूलमश्लेषा, विषमस्थानगा ग्रहाः ॥
कुदिनं मातृदुःखं च, न स्युर्भाग्यवतां जनौ ॥२३३॥

અર્થઃ—ભાગ્યશાળી મનુષ્યના જન્મને સમયે ગંડાન્ત, મળ નક્ષત્ર, અશ્લેષા નક્ષત્ર, અવળે સ્થાને પડેલાં ગ્રહ તથા ખરાબ દિવસ ન હોય. તેમજ જણતાં માતાને દુઃખ પણ થાય નહીં. (૨૩૩)

पितुर्मातुर्धनस्य स्या—दाद्यपादत्रिय क्रमात् ॥
शुभो मूलस्य तुर्योंऽह्रि–रश्लेषाया व्यतिक्रमात् ॥२३४॥

અર્થ —મૂળ નક્ષત્રનો પહેલો, બીજો તથા તથા ત્રીજો [1]પાયો અનુક્રમે પિતાનો માતાનો તથા ધનનો નાશ કરે છે, અને ચોથો પાયો શુભ જાણવો આશ્લેષા નક્ષત્રનો પહેલો પાયો શુભ જાણવો, અને બીજો, ત્રીજો તથા ચોથો પાયો અનુક્રમે પિતાનો, માતાનો તથા ધનનો નાશ કરે છે, એમ જાણવુ (૨૩૪)

आद्यः षष्ठस्त्रयोविंशो, द्वितीयो नवमोऽष्टमः ॥
अष्टाविंशश्च मूलस्य, मुहूर्तो दुःखदा जनौ ॥२३५॥

અર્થ —મૂલ નક્ષત્રના ત્રીસ [2] મુહૂર્તમા પહેલો બીજો, છઠો, આઠમો, નવમો, ત્રેવીસમો અથવા અઠાવીસમો મુહૂર્ત જન્મને સમયે હોય તો તે દુ ખદાયી જાણવો (૨૩૫)

भौमार्कशनिवाराश्चे–दसंपूर्णं च भं तथा ॥
भद्रा तिथिस्त्रियसयोगे, परजातः पुमान् भवेत् ॥२३६॥

અર્થ —જો જન્મસમયે રવિ, મગળ, શનિ એમાથી એકવાર, અપૂર્ણ નક્ષત્ર અને ભદ્રા તિથિ (બીજ, સાતમ બારસ) એ ત્રણેનો યોગ આવે તો ઉત્પન્ન થએલી સતતિ વ્યભિચારથી થએલી જાણવી (૨૩૬)

---

૧ —ચદ્રને એક નક્ષત્ર ભોગવતાં આસરે સાઠ ઘડી લાગે છે નક્ષત્રના ભોગકાળના ચોથા ભાગને પાયો કહે છે તે રીતે જોતા આસરે પદર ઘડીનો એક પાયો થાય છે

૨ —એક નક્ષત્રનો ભોગકાળ આસરે સાઠ ઘડી લઇયે તો સાઠ ઘડીના ત્રીસ મુહૂર્ત થાય છે આ ઉપરથી ધ્યાનમા આવશે કે, બે ઘડીનો એક મુહૂર્ત કહેવાય છે

गुरुर्न प्रेक्षते लग्नं, सार्केन्दु च तथा विभुः ॥
सक्रूरेन्दुयुतोऽर्कश्चे-च्चतुर्थे भे परात्मजः ॥२३७॥

અર્થઃ—જો લગ્ને રવિ તથા ચંદ્રમા હોય, લગ્નનો સ્વામી તથા ગુરૂ લગ્નને જુવે નહીં, અને ચતુર્થ સ્થાને પાપગ્રહની સાથે ચંદ્રમા તથા રવિ હોય તો પરપુરૂષથી થએલી સંતતિ જાણવી. (૨૩૭)

यदि दन्तैः समं जन्म, यदि वा दशनाः शिशोः ॥
स्युर्मध्ये सप्तमासस्य, कुलनाशस्तदा ध्रुवम् ॥ २३८ ॥
शान्तिकं तत्र कर्तव्यं, दुर्निमित्तविनाशकम् ॥

અર્થઃ—જો દાંતસહિત બાળકનો જન્મ થાય, અથવા સાત મહિનાની અંદર બાળકને દાંત આવે, તો નિશ્ચયથી કુળનો નાશ થાય છે. માટે તે અપલક્ષણના નાશને અર્થે શાંતિક, પૌષ્ટિક કર્મ કરવું. (૨૩૮)

जन्मप्रभृतितो दन्ताः, पूर्णाः स्युर्वत्सरद्वये ॥२३९॥
सप्तमाद्दशवर्षान्ते-र्निपत्योद्यन्ति ते पुनः ॥

અર્થઃ—જન્મદિવસથી માંડી બે વર્ષ પુરાં થાય તેટલી મુદતમાં બાળકને પૂરા દાંત આવે છે. તથા સાતમા વર્ષથી માંડી દસ વર્ષની અંદર સર્વે દાંત એકવાર પડી પાછા ઉગે છે. (૨૩૯)

राजा द्वात्रिंशता दन्तै-र्भोगी स्यादेकहीनया ॥२४०॥
त्रिंशता तनुवित्तोऽष्टा-विंशत्या सुखितः पुमान् ॥
एकोनत्रिंशता निःस्वो, हीनैर्दन्तैरतोऽधमः ॥२४१॥

અર્થ—બત્રીશ દાંત જેને હોય તે રાજા થાય, એકત્રીશ જેને હોય તે ભોગી થાય, ત્રીસ જેને હોય તે થોડા પૈસાવાળો થાય, અઠાવીસ જેને હોય તે સુખી થાય, ઓગણત્રીશ જેને હોય તે દરિદ્રી થાય, અને અઠાવીશ કરતા ઓછા હોય તે નીચ માણસ થાય (૨૪૦) (૨૪૧)

कुन्दपुष्पोपमाः श्लक्ष्णाः, स्निग्धा ह्यरुणपीठिकाः ॥
तीक्ष्णदंष्ट्रा घना दन्ता, धनभोगसुखप्रदाः ॥ २४२ ॥

અર્થ—કુંદના (ડોલરના) ફુલ સરખા, ઝીણા સુવાળા, લાલ પેઢાવાળા, તીક્ષ્ણ દાઢાવાળા અને ઘન (નક્કર), એવા દાંતો ધન, ભોગ અને સુખ આપનાર જાણવા (૨૪૨)

खरद्वीपिरदा धन्याः, पापाश्चाखुरदास्तथा ॥
द्विपङ्क्तिविरलश्याम–करालासमदन्तकाः ॥ २४३ ॥

અર્થ—ગધેડાના તથા વાઘના દાંતસરખા માણસના દાંત હોય તો તે શ્રેષ્ઠ જાણવા પણ બે હારથી ઉગેલા, છૂટા છૂટા, કાળા, વિકરાળ અને ખડબચડા અથવા નાના મોટા દાંત હોય, તો તે પાપકારી અને દુ:ખદાયી જાણવા (૨૪૩)

- नैगेयभङ्गमाधाय, परिज्ञाय तदास्पदम् ॥
विमृश्य जन्मासन्न, कृत्वा द्वारनियन्त्रणम् ॥२४४॥
इष्टदेवनमस्कार–नष्टापमृतिभीः शुचिः ॥
रक्षामन्त्रपवित्रायां, शय्यायां पृथुताजुषि ॥ २४५ ॥
सुसंवृतपरीधानः, सर्वाहारविवर्जकः ॥
वामपार्श्वेन कुर्वीत, निद्रां भद्राभिलाषुकः ॥ २४६ ॥
(त्रिभिर्विशेषकम् ।)

અર્થઃ—કલ્યાણના ઇચ્છક પુરૂષે સ્ત્રીસંભોગ કર્યા પછી મળમૂત્રની શંકા હોય તો ટાળવી, શંકા ન હોય તો મળ મૂત્રનો ત્યાગ કરવાનું સ્થાનક ક્યાં છે તે જોઈ રાખવું, સર્વ આહારનો ત્યાગ કરવો, પાસે જળ રાખવું, બારણાં બંધ કરવાં, પવિત્ર થઇ ઇષ્ટ દેવને નમસ્કાર કરી અપમૃત્યુની બીક ટાળવી, પછી પોતે પવિત્ર થઇ રક્ષામંત્રથી પવિત્ર કરેલી પહોળી શય્યા (બિછાના) ઉપર સારી રીતે ઓઢી ડાબે પાસે સુઇ રહેવું. (૨૪૪) (૨૪૫) (૨૪૬)

अनादिप्रभवा जीवे, तमोहेतुस्तमोमयी ॥
प्राचुर्यात्तमसः प्रायो, निद्रा प्रादुर्भवेन्निशि ॥ २४७ ॥

અર્થઃ—જીવને અનાદિ કાળથી લાગતી આવેલી નિદ્રા પોતે તમોગુણી હોવાથી અંધકારના બહુલતાવાળા રાત્રિના સમયેજ પ્રાયે પ્રગટ થાય છે. (૨૪૭)

श्लेष्मावृतानि स्रोतांसि, श्रमादुपरतानि च ॥
यदाक्षाणि स्वकर्मभ्य-स्तदा निद्रा शरीरिणाम् ॥२४८॥

અર્થઃ—જે સમયે સંજ્ઞાવાહક સ્રોત (નાડીઓ) કફથી ભરાય છે, અને ઇંદ્રિયો શ્રમથી (થાકથી) પોતાનું કામ બંધ રાખે છે, ત્યારે પ્રાણિયોને નિદ્રા આવે છે. (૨૪૮)

निवृत्तानि यदाक्षाणि, विषयेभ्यो मनः पुनः ॥
न निवर्तेत वीक्षन्ते, तदा स्वप्नान् शरीरिणः ॥२४९॥

અર્થઃ—જ્યારે સર્વે ઇંદ્રિયો થાકી જવાથી પોતાનું કામ બંધ કરે છે, પણ મન પોતાનું કામ કર્યાજ કરે, ત્યારે પ્રાણિયોને સ્વપ્નાં આવે છે. (૨૪૯)

अत्यासक्त्यानवसरे, निद्रा नैव प्रशस्यते ॥
एषा सौख्यायुषी काल–रात्रिवत्प्रणिहन्ति च ॥२५०॥

અર્થ —અતિ આસક્તિથી તથા અવસર વિનાની નિદ્રા સારી ન જાણવી કારણ કે, તે નિદ્રા કાળરાત્રિ માફક સુખને અને આયુષ્યનો નાશ કરે છે (૨૫૦)

संवर्धयति सेवेह, युक्त्या निद्रा सुखायुषी ॥
अनवच्छिन्नसंताना, सुधाकुल्येव वीरुधः ॥२५१॥

અર્થ —વિચ્છેદ (ખડ) વગર યુક્તિથી આપેલી અમૃતની નીકથી જેમ વેલડી સુખમા ઘણા કાળ સુધી જીવે છે, તેમ યુક્તિથી નિદ્રા લેવામા આવે તો તેથી સુખ અને આયુષ્ય વધે છે (૨૫૧)

रजन्यां जागरो रूक्षः, स्निग्धः स्वापश्च वासरे ॥
रूक्षास्निग्धमहोरात्र–मासीनमचलायितम् ॥२५२॥

અર્થ.—રાત્રિએ ઉજાગરો કરવો તે રૂક્ષ (લુખો) છે, અને દિવસે સુવુ તે સ્નિગ્ધ (ચીકણુ) છે દિવસે બેસી રહેવુ અને રાત્રિએ ઉઘન કરવો તે રૂક્ષ સ્નિગ્ધ છે (૨૫૨)

क्रोधभीशोकमद्यस्त्री–भारयानाध्वकर्मभिः ॥
परिक्रान्तैरतीसार–श्वासहिक्कादिरोगिभिः ॥२५३॥
वृद्धबालाबलक्षीणैः, क्षुत्तृट्शूलादिविह्वलैः॥
अजीर्णिप्रमुखैः कार्यो, दिवास्वापोऽपि कर्हिचित् ॥२५४॥
धातुसाम्यं वपुःपुष्टि–स्तेषां निद्रागमाद्भवेत् ॥
रसः स्निग्धो मनः श्लेष्मा, मेदस्व्यह्नि शयीत न ॥२५५॥

અથ —ક્રોધ, ભય, શોક, મદ્યપાન, સ્ત્રીસભોગ, ભાર

ઉપાડવો, વાહનમાં બેસવું અને માર્ગ ચાલવો એવા કારણથી થાકી ગયેલા; અતિસાર, શ્વાસ, હિક્કા (હેડકી), પ્રમુખ રોગથી પીડાયલા, ઘરડા, બાળક, દુર્બળ, માંદગી વિગેરે ભોગવવાથી ક્ષીણ થયેલા; ક્ષુધા, તૃષા, શૂળ વિગેરેથી પીડાયલા અને અજીર્ણ પ્રમુખ રોગથી ઉપદ્રવ પામેલા એટલા મનુષ્યોએ દિવસે પણ કોઇક વખતે સુઇ રહેવું. કારણ, તેમના શરીરમાં વિષમ થએલા ધાતુ તેમ કરવાથી સમ થાય છે, શરીરને પુષ્ટિ મળે છે, રસ ધાતુ સ્નિગ્ધ (ચીકણો) થાય છે, અને શુદ્ધ કફ ચન થાય છે. પણ જેના શરીરમાં મેદ ભરાયો હોય તે મનુષ્યે દિવસે ન સુવું. (૨૫૩) (૨૫૪) (૨૫૫).

वातोपचयरौक्ष्याभ्यां, रजन्याश्चाल्पभावतः ॥
दिवा स्वापः सुखो ग्रीष्मे, सोऽन्यदा श्लेष्मापित्तकृत् ॥२५६॥

અર્થઃ ગ્રીષ્મ ઋતુમાં શરીરમાં વાયુનો સંચય થાય છે, હવા રૂક્ષ હોય છે, અને રાત્રિ ટૂંકી થાય છે. એ ત્રણ કારણથી તે ઋતુમાં દિવસે સુવું સુખકારક છે, પણ બીજી ઋતુમાં તેમ કરવાથી કફપિત્તનો વિકાર થાય છે. (૨૫૬)

दिवा स्वापो निरन्नाना–मपि पाषाणपाचकः ॥
रात्रिजागरकालार्धं, भुक्तानामप्यसौ हितः ॥२५७॥

અર્થઃ—મનુષ્ય જો કાંઇપણ ખાધા વગર દિવસે સુઇ રહે તો, તેના પેટમાં કદાપિ પાષાણ હોય તો તે પણ પચી જાય. રાત્રિએ ઉજાગરો કરવો હોય તો દિવસે જમ્યા પછી પણ સુઇ રહેવું હિતકારિ છે. (૨૫૭)

यातेऽस्ताचलचूलिकान्तरमुवं देवे रवौ यामिनी-
यामार्धेषु विधेयमित्यभिदधे सम्यग्मया सप्तसु ॥

यस्मिन्नाचरिते चिराय दधते मैत्रीमिवाकृत्रिमा,
जायन्ते च वशंवदाः शुचि गिया धर्मार्थकामाःस्फुटम्॥२५८॥

इति श्रीजिनदत्तसूरिविरचिते विवेकविलासे दिनचर्यायां
पञ्चम उल्लास ॥५॥

અર્થ—સૂર્ય અસ્ત પામ્યા પછી રાત્રિના સાત ચોઘડિયા સુધીનુ કૃત્ય મે એવી રીતે મારી પેઠે કહ્યુ શુદ્ધ મનવાળા મનુષ્યોને તે કૃત્ય આચરવાથી ધર્મ, અર્થ અને કામ એ ત્રણે પુરૂષાર્થ મિત્ર જેવા પ્રગટપણે વશ થઇ જાય છે (૨૫૮)

ઇતિ શ્રીજિનદત્તસરિકૃત વિવેકવિલાસની ગુર્જરભાષાનો પાચમો ઉલ્લાસ સંપૂર્ણ.

अथ षष्ठ उल्लासः।

(अथ ऋतुचर्या।)

कालमाहात्म्यमस्त्येव, सर्वत्र बलवत्तरम् ॥
ऋत्वौचित्यात्तदाहार–विहारादि समाचरेत् ॥१॥

અર્થ—(આ ઉલ્લાસમા ઋતુચર્યા કહે છે અથાત્ કઇ ઋતુમા કઈ રીતે વર્તવુ તે વિચાર કરીને કહે છે) સર્વ ઠેકાણે કાળનુ માહાત્મ્ય પોતાનુ જબરૂ બળ ધરાવે છે માટે ઋતુને[1] ઉચિત પડે તેવી રીતે આહાર, વિહાર પ્રમુખ કરવા (૧)

૧—એકસો દસમા (૧૧૦) પૃષ્ઠમા આવેલી ટિપ્પણી જુઓ

(अथ वसन्तचर्या)

वसन्तेऽभ्याधिकं क्रुद्धः, श्लेष्माग्निं हन्ति जाठरम् ॥
तस्मादत्र दिवास्वापं, कफकृद्वस्तु च त्यजेत् ॥२॥

અર્થઃ—(પ્રથમ વસંતઋતુમાં શી રીતે વર્તવું તે કહે છે.) વસંતઋતુમાં કફનો અતિશય પ્રકોપ થાય છે, અને તેથી જઠરાગ્નિ મંદ પડે છે, માટે એ ઋતુમાં દિવસે નિદ્રા ન લેવી, અને કફ કરનારી સર્વ વસ્તુ વર્જવી. (૨)

व्यायामधूकवल-ग्रहणोद्वर्तनाञ्जनम् ॥
वमनं चात्र कर्तव्यं, कफोद्रेकानिवृत्तये ॥३॥

અર્થઃ—વસંત ઋતુમાં કફના પ્રકોપની શાંતિને અર્થે વ્યાયામ અને ધૂમપાન કરવાં, મુખમાં ઔષધનો કવલ (કોળીયો) લેવો, ઉવટણું ચોપડવું, આંખો આંજવી, અને ઔષધથી વમન (ઉલટી) કરવું. (૩)

भोज्यं शाल्यादि चास्निग्धं, तिक्तोष्णकटुकान्वितम् ॥
अतिशीतं गुरु स्निग्धं, पिच्छिलामद्रवं नतु ॥४॥

અર્થઃ—ઘણું સ્નિગ્ધ નહીં, તથા જેની અંદર તીખો તથા કડવો રસ છે, એવું, શાલી (ચોખા) પ્રમુખ અન્ન ઉન્હું છતાં જ ભક્ષણ કરવું. પણ ઘણું ટાઢું, પચતાં ઘણો કાળ લાગે એવું, ઘી વીગેરે સ્નિગ્ધ વસ્તુ જેની અંદર બહુ છે એવું, ચીકણું, કાચું તથા પાતળું અન્ન આ ઋતુમાં ભક્ષણ ન કરવું. (૪)

श्लेष्मघ्नान्युपयुञ्जीत, मात्रया पानकानि च ॥
स्वं कृष्णागुरुकाश्मीर—चन्दनैश्च विलेपयेत् ॥५॥

અર્થ—આ ઋતુમા કફનો નાશ કરનારા પાનકનો (સરબત વિગેરેનો) પરિમિત (માફક) ઉપયોગ કરવો તથા પોતાના શરીરે મલયાગરનો, કેશરનો તથા ચદનનો લેપ કરવો (૫)

पवनो दक्षिणश्चूत–मञ्जरी मल्लिकास्रजः ॥
ध्वानिर्भृङ्गपिकाना च, मर्नो कस्योत्सवाय न ॥६॥

અર્થ —વસત ઋતુમા દક્ષિણ દિશાનો પવન, આંબાની મજરી (મહોર) મલ્લિકા પુષ્પની (મોગરાની) માળાઓ, તથા ભ્રમરના અને કોકિલના મધુર સ્વર કોના મનને હર્ષ ઉપજાવતા નથી (૬)

(अथ ग्रीष्मचर्या ।)

ग्रीष्मे भुञ्जीत सुस्वादु, शीत स्निग्ध द्रव लघु ॥
यदत्र रसमुष्णाशु–राकर्षन्यवनेरपि ॥७॥

અર્થ —(હવે ગ્રીષ્મ ઋતુમા શી રીતે વર્તવુ તે કહે છે) ગ્રીષ્મ ઋતુમા મધુર, શીતળ, સ્નિગ્ધ (ચોપડેલુ), પાતળુ અને હલકુ અન્ન ભક્ષણ કરવુ કારણ, તે ઋતુ સૂર્ય ભૂમીના પણ સર્વ રસને ખેંચી લે છે (૭)

पय शाल्यादिकं सर्पि–रथ मस्तु सशर्करम् ॥
अत्राश्नीयाद्रसालाश्च, पानकानि हिमानि च ॥८॥

અર્થ —આ ઋતુમા ભેસનુ દૂધ, શાલિ (ચોખા) પ્રમુખ ધાન્ય અને ઘૃત ભક્ષણ કરવું, દહી અથવા દાસ ઉપર આવેલું પાણી શર્કરા નાખીને પીવુ, તથા રસાલા (શ્રીખડ) વિગેરે અને ઠડા પાનક (સરબત વિગેરે) ઉપયોગમા લેવા (૮)

पिबेज्ज्योत्स्नाहृतं तोयं, पाटलागन्धबन्धुरम् ॥
मध्याह्ने कायमाने वा, नयेद्धारागृहेऽथवा ॥९॥

અર્થઃ—આ ઋતુમાં ચંદ્રમાના કિરણથી શીતળ થએલું અને પાટલા પુષ્પના સુગંધથી મનને હરણ કરનારૂં જળ પીવું બપોરનો સમય ઉદ્યાનમાં ઉભાં કરેલાં ઝુપડામાં અથવા પાણીના ફુવારા પાસે ગાળવો. (૯)

वल्लभाङ्गलतास्पर्शा–त्तापश्चात्र प्रशाम्यति ॥
व्यजनं सलिलार्द्रं च, हर्षोत्कर्षाय जायते ॥ १० ॥

અર્થઃ—આ ઋતુમાં પોતાની પ્રીય સ્ત્રીના અંગરૂપ વેલડીને સ્પર્શ કરવાથી તાપની શાંતિ થાય છે. તથા જળથી ભીંજાવેલો વીંઝણો ઘણોજ હર્ષ ઉપજાવે છે. (૧૦)

सौधोत्सङ्गे स्फुरद्वायौ, मृगाङ्कद्युतिमाण्डिते ॥
चन्दनद्रवलिप्ताङ्गो, गमयेद्यामिनीं पुनः ॥ ११ ॥

અર્થઃ— આ રૂતુમાં પવનથી આનંદ ઉપજાવતી તથા ચંદ્રમાના કિરણથી શોભતી આગાશીમાં શરીરે સુગંધી ચંદનનો લેપ કરીને રાત્રિનો સમય ગાળવો. (૧૧)

दुर्बलाङ्गस्तथात्यम्ल–कटूष्णलवणान् रसान् ॥
नाद्याद्व्यायाममुद्दाम–व्यवसायं सुधीस्त्यजेत् ॥१२॥

અર્થઃ—બુદ્ધિશાળી પુરૂષે આ ઋતુમાં શરીરમાં બળ ઓછું થતું હોવાથી અતિ ખાટો, કડવો અને ખારો એ ત્રણ રસ તથા ઉન્હું અન્ન ભક્ષણ ન કરવાં અને વ્યાયામ (કસરત) તથા ઘણો ઉદ્યમ પણ ન કરવો. (૧૨)

मद्वीकाहृद्यपानानि, सिताशुकविलेपने ॥
धारागृहाणि च ग्रीष्मे मदयन्ति मुनीनपि ॥ १३ ॥

અર્થ —દ્રાખના મનોહર પાનક (સરબત વિગેરે), સફેદ તથા હલકા વસ્ત્ર, સફેદ વિલેપન (ચંદન વિગેરે અને ધારા ગૃહ (ફુવારાઓ) એટલી વસ્તુ આ ઋતુમા મુનિઓને પણ મદ (કામ વિકાર) ઉત્પન્ન કરે એવી છે (૧૩)

(अथ वर्षर्तुचर्या ।

प्रावृषि प्राणिनां दोषाः, क्षुभ्यन्ति पवनादयः ॥
मेघवातमगाराप्प-जलशीकरयोगतः ॥ १४ ॥

અર્થ --(હવે વર્ષા ઋતુમા શી રીતે વર્તવુ તે કહે છે) વર્ષા ઋતુમા વાદળાના પવનથી, ભૂમિની અંદરથી નીકળતી બાફથી તથા જળના બિંદુથી મનુષ્યના વાત વિગેરે દોષ કુપિત થાય છે (૧૪)

एते ग्रीष्मातिपाताद्धि, क्षीणाङ्गाना भवन्त्यलम् ॥
धातुसाम्यकरस्तस्मा-द्विधिः प्रावृषि युज्यते ॥ १५ ॥

અર્થ —ગ્રીષ્મ ઋતુનો તાપ પ્રમુખ ખમવાથી દુર્બળ થએલા લોકોના વાત વિગેરે દોષો ઘણા કુપિત થાય છે માટે આ ઋતુમા વત, પિત્ત, કફ, રસ, રક્ત પ્રમુખ ધાતુ જેથી સામ્ય સ્થિતિમા રહે, બગડે નહી, એવા સમધાત ઉપાય કરવા (૧૫)

नृपर्व्योम्नोः पय. पेय, न सर.सारिता पुनः ॥
नातपायासदंपाम-पानाम्भ जेंदनं जेन ॥१६॥

અર્થઃ—આ ઋતુમાં કુવાનું તથા પુનર્વસુ નક્ષત્ર બેઠા પછીનું વરસાદનું જળ પીવું, પણ તળાવનું અથવા નદીનું ન પીવું; તથા ધૂંઅરમાં, તડકામાં અથવા પરગામ ન જવું, અને જળક્રીડા પણ ન કરવી.(૧૬)

वसेद्वेश्मानि निर्वाते, जलोपद्रववर्जिते ॥
स्फुरच्छकटिकाङ्गारे, कुङ्कुमोद्वर्तनाश्चितः ॥१७॥

અર્થઃ—આ ઋતુમાં ધનવાન્ પુરૂષે શરીરે કેશરનો લેપ કરીને પવનનો અથવા જળનો ઉપદ્રવ જ્યાં ન હોય, તથા ધગધગતા અંગારાની સઘડી જ્યાં રાખેલી હોય એવા ઘરમાં રહેવું (૧૭)

केशप्रसादनासक्तो, रक्तधूपितवस्त्रभृत् ॥
मिताशी चात्र यस्तस्मै, स्पृहयन्ति स्वयं स्त्रियः ॥१८॥

અર્થઃ—જે પુરૂષ આ ઋતુમાં કેશને સુગંધી તેલ લગાડી સાફ કરી રાખે, રાતા અને ચંદન, લોબાન વિગેરેના ધૂપથી સુગંધી થએલાં વસ્ત્રો પહેરે, તથા પરિમિત ભોજન કરે, તેને સ્ત્રીઓ પોતાની મેળે ચાહે છે. (૧૮)

(अथ शरदृतुचर्या ।)

शरत्काले स्फुरत्तेजः—पुञ्जस्यार्कस्य रश्मिभिः ॥
तप्तानां कुप्यति प्रायः, प्राणिनां पित्तमुल्बणम् ॥१९॥

અર્થઃ—(હવે શરદૃતુમાં શી રીતે વર્તવું તે કહે છે.) શરદૃતુમાં આકારા સૂર્યના કિરણોના તાપથી તપાયલા મનુષ્યોનું પિત્ત પ્રાયે કુપિત થાય છે. (૧૯)

पानमन्नं च तत्तस्मिन्, मधुरं लघु शीतलम् ॥
सतिक्तकटुकं सेव्यं, क्षुधितेनाशु मात्रया ॥ २० ॥

અર્થ —માટે આ ઋતુમા જાણુ પુરૂષે ક્ષુધા લાગે કે તુરત મધુર, હલકુ, શીતળ, થોડુ કડવુ તથા તીખુ અન્નપાન પરિમિત સેવવુ (૨૦)

रक्तमोक्षो विरेकश्च, श्वेते माल्यविलेपने ॥
सरोवारि च रात्रौ च, ज्योत्स्नामत्र समाश्रयेत् ॥२१॥

અર્થ —આ ઋતુમા રક્તમોક્ષ કરવો (ફસ ખોલાવવી), જુલાબ લેવો, સફેદ ફૂલોની માળા પહેરવી, સફેદ ચદનનો વગેરે લેપ કરવો, સરોવરનુ નિર્મળ જળ પીવુ, તથા રાત્રિએ ચાદણીમા બેસવુ (૨૧)

प्राग्वानिलमवश्याय, दधि व्यायाममातपम् ॥
क्षारं तैलं च यत्नेन, त्यजेदत्र जितेन्द्रियः ॥ २२ ॥

અર્થ —જિતેદ્રિય પુરૂષે આ ઋતુમા પૂર્વ દિશાનો પવન, ધૂઅર, દહી, વ્યાયામ (કસરત), તડકો, ખારી વસ્તુ તથા તેલ એટલાનો પ્રયત્નથી ત્યાગ કરવો (૨૨)

सौरभोद्गारसाराणि, पुष्पाण्यामलकानि च ॥
क्षीरमिक्षुविकाराश्च, शरद्यङ्गस्य पुष्टये ॥२३॥

અર્થ —આ ઋતુમા સુગધિ પુષ્પો, આમળા, દૂધ તથા શેલડીથી બનતી ગોળ, સાકર પ્રમુખ વસ્તુ શરીરને પુષ્ટિ આપે છે (૨૩)

(अथ हेमन्तर्तुचर्या ।)

हेमन्ते शीतवाहुल्या-द्रजनीदैर्ध्यतस्तथा ॥
वह्निः स्यादधिकस्तस्माद्, युक्तं पूर्वाह्णभोजनम् ॥२४॥

અર્થઃ—(હવે હેમન્ત ઋતુમાં શી રીતે વર્તવું તે કહે છે) હેમંત રૂતુમાં ટાઢ ઘણી હોવાથી તથા રાત્રિ લાંબી હોવાથી જઠરાગ્નિ પ્રદીપ્ત થાય છે, માટે આ સમયમાં બપોર પહેલાં જમવું ઉચિત છે. (૨૪)

अम्लस्वदूष्णसुस्निग्ध-मन्न क्षारं च युज्यते ॥
नैवोचितं पुनः किंचि-द्वस्तु जाड्यविधायकम् ॥२५॥

અર્થઃ—આ ઋતુમાં ખાટું, મીઠું, ઉન્હું, ચીકણું તથા ખારૂં અન્નપાન સેવવું ઉચિત છે. પણ જે કોઈ વસ્તુ જઠરાગ્નિને ભારે પડતી હોય તે લેવી અનુચિત છે. (૨૫)

कुर्यादभ्यङ्गमङ्गस्य, तैलेनातिसुगन्धिना ॥
कुङ्कुमोद्वर्तनं चित्रं, नव्यं वासो वसीत च ॥ २६ ॥

અર્થઃ—આ રૂતુમાં અતિ સુગંધિ તેલથી શરીરને મર્દન કરવું, કેશરનું ઉવટણું લગાડવું, અને નવું વસ્ત્ર પહેરવું.(૨૬)

सवनीयं च निर्वातं, कर्पूरागरुधूपितम् ॥
मन्दिरं भासुराङ्गार-शकटीभासुरं नरैः ॥ २७ ॥

અર્થઃ—આ ઋતુમાં મનુષ્યોએ પવન વિનાનું, કર્પૂર તથા કૃષ્ણાગર ચંદનના ધૂપથી સુગંધિ અને ધગધગતા અંગારની સગડીથી દીપતું એવા ઘરમાં રહેવું. (૨૭)

युवती साङ्गरागा च, पीनोन्नतपयोधरा ॥
शीत हरति शय्या च, मृदूष्णस्पर्शशालिनी ॥२८॥

અર્થ —આ ઋતુમા શરીરે સુગધી અગરાગ (ઉવટણુ) લગાડેલી તથા પુષ્ટ અને ઉંચા સ્તનથી ચિત્તને ખેચનારી તરૂણ સ્ત્રી અને કોમળ તથા ઉષ્ણ સ્પર્શ વાળી શય્યા (બિછાનુ) એ બન્ને ટાઢ દૂર કરે છે (૨૮)

(अथ शिशिरर्तुचर्या ।)

उत्तराशानिलाद्रूक्ष, शीतमत्र प्रवर्त्तते ॥
शिशिरेऽप्यखिल कृत्य, ज्ञेय हेमन्तवद्बुधैः ॥२०॥

અર્થ —(હવે શિશિર ઋતુમા શીરીતે વર્તવુ તે કહે છે) શિશિર ઋતુમા ઉત્તર દિશાના પવનથી લૂખી ટાઢ પડે છે માટે જાણ પુરૂષોએ આ ઋતુમા પણ હેમત ઋતુ માફકજ સર્વ કૃત્ય જાણવુ (૨૯)

ऋतुगतामिति सर्व कृत्यमेतन्मयोक्त,
निखिलजनशरीरे क्षेमसिद्ध्यर्थमुच्चैः ॥
निपुणमतिरिद यः सेवते तस्य न स्याद् ,
वपुपि गदसमूहः सर्वदाप्यगोचरी ॥ ३० ॥

इति श्रीजिनदत्तसूरिविरचिते श्रीविवेकविलास ऋतुचर्याया षष्ठ उल्लास ॥ ६ ॥

અર્થ —એવી રીતે ઋતુઓમા કરવા યોગ્ય સર્વ કૃત્ય સકળ મનુષ્યોના શરીરે કુશળને અર્થે મે કહ્યા જે મનુષ્ય નિપુણ બુદ્ધિથી એ કહ્યા પ્રમાણે વર્તે, તેના શરીર રો

નો સમુદાય કે જે હમેશાં મનુષ્યોની પાસેજ રહેલો છે, તે કોઇ સમયે પણ પ્રગટ થાય નહીં. (૩૦)

ઈતિ શ્રીજિનદત્ત-તસૂરિવિરચિત વિવેકવિલાસની ગુજર ભાષાનો ઋતુચર્યા નામે છઠ્ઠો ઉલ્લાસ સંપૂર્ણ. (૬)

अथ सप्तम उल्लासः ।

(अथ वर्षचर्या ।)

दुष्प्राप्यं प्राप्य मानुष्यं, कार्यं तत्किंचिदुत्तमैः ॥
मुहूर्तमेकमप्यस्य, याति नैव यथा वृथा ॥१॥

અર્થઃ—(હવે સંપૂર્ણ વર્ષમાં શીરીતે વર્તવું તે કહે છે.) ઉત્તમ મનુષ્યોએ આ દુર્લભ નરભવ પામીને એવું કાંઈક કાર્ય કરવું, કે જેથી પોતાનો એક ક્ષણ પણ નકામો ન જાય. (૧)

दिवा यामचतुष्केण, कार्यं किमपि तन्नरैः ॥
निश्चिन्तहृदयैर्येन, यामिन्यां सुप्यते सुखम् ॥२॥

અર્થઃ—મનુષ્યોએ દિવસના ચારે પહોરમાં એવું કાંઈ કૃત્ય કરવું, કે જેથી રાત્રિએ નિશ્ચિંતપણે સુખે નિદ્રા આવે. (૨)

तत्किंचिदष्टभिर्मासैः, कार्यं कर्म विवेकिना ॥
एकत्र स्थीयते येन, वर्षाकाले यथासुखम् ॥३॥

અર્થઃ—વિવેકી પુરૂષે આઠ માસમાં એવું કાંઈ કૃત્ય કરવું, કે જેથી વર્ષાકાળના ચોમાસામાં સુખે એક ઠેકાણે રહેવાય. (૩)

यौवन प्राप्य सर्वार्थ–सार्थसिद्धिनिबन्धनम् ॥
तत्कुर्यान्मतिमान्येन, वार्धके सुखमश्नुते ॥४॥

અર્થ —બુદ્ધિશાળી પુરૂષે સર્વ કાર્યો જેથી સાધ્ય કરી શકાય, એવી યૌવન દશા પામીને એવા કાર્યો કરવાં, કે જેથી વૃદ્ધાવસ્થામા સુખ મળે (૪)

अर्जनीय कलावद्भि–स्तत्किंचिज्जन्मनामुना ॥
मृत्युमासाद्यते येन, शुद्धं जन्मान्तरं पुनः ॥५॥

અર્થ —કળાવાન્ મનુષ્યોએ આ ભવમા એવી કાંઈ વસ્તુ કમાવી,, કે જેથી મરણ પામ્યા પછી પવિત્ર જન્મ નિશ્ચયથી મળી શકે (૫)

प्रतिवर्ष सदर्पणा, निजवित्तानुमानतः ॥
पूजनीयाः सधर्माणो, धर्माचार्याश्च धीमता ॥६॥

અર્થ —બુદ્ધિશાળી પુરૂષે પ્રતિ વર્ષે પોતાની શક્તિ પ્રમાણે સાધર્મીની અને પોતાના ધર્માચાર્યની હર્ષથી પૂજા કરવી (૬)

गोत्रवृद्धा यथाशक्ति, सम्मान्या बहुमानतः ॥
विधेया तीर्थयात्रा च, प्रतिवर्ष विवेकिना ॥७॥

અર્થ —વિવેકી પુરૂષે પોતાના કુળમા વૃદ્ધ તથા માન્ય જે પુરૂષો હોય તેમનો શક્તિ પ્રમાણે પ્રતિવર્ષ બહુમાનથી સત્કાર કરવો, તથા તીર્થયાત્રા પણ કરવી (૭)

प्रतिसवत्सरं ग्राह्य, [illegible] गुरोः पुरः ॥
[illegible] [illegible] ॥८॥

અર્થઃ—તેમજ પ્રતિવર્ષે ગુરૂ પાસે જઇ પ્રાયશ્ચિત્ત (આલોચણા) લેવું કારણ કે, તેથી શુદ્ધ થએલો પોતાનો આત્મા આરિસા સરખો નિર્મળ થાય છે. (૮)

जातस्य नियतो मृत्यु-रिति ज्ञापयितुं जने ॥
पित्रादिदिवसः कार्यः, प्रतिवर्षं महात्मभिः ॥ ९ ॥

અર્થઃ—"જન્મેલા મનુષ્યને અવશ્ય મરવું છેજ." એવું લોકમાં જણાવવાને અર્થે મહાત્મા પુરૂષોએ પોતાના પિતા, માતા વિગેરેનો દિવસ (શ્રાદ્ધ) પ્રતિ વર્ષે કરવો. (૯)

इति स्फुटं वर्षविधेयमेत-ल्लोकोपकाराय मयाभ्यधायि ॥
जायेत लोकद्वितयेऽप्यवश्यं, यत्कुर्वतांनिर्मलता जनानाम् १०

અર્થઃ—મેં આ રીતે પ્રતિવર્ષે કરવાં યોગ્ય કૃત્ય લોકો પકારને અર્થે પ્રગટ કહ્યું. એ કૃત્ય કરનારા મનુષ્યો આ લોકમાં તથા પરલોકમાં અવશ્ય પવિત્ર થાય છે. (૧૦)

ઇતિ શ્રીજિનદત્તસૂરિકૃત વિવેકવિલાસની ગૂર્જરભાષાનો વર્ષચર્યા નામે સાતમો ઉલ્લાસ સંપૂર્ણ.

अथाष्टम उल्लासः ।

(अथ जन्मचर्या ।)

(तत्र प्रथमं वसतियोग्यदेशक्रमः)

सद्धर्मदुर्गसुस्वामि-व्यवसायजलेन्धने ॥
स्वजातिलोकरम्ये च, देशे प्रायः सदा वसेत् ॥ १ ॥

અર્થઃ—(આ ઉલ્લાસમાં આખા મનુષ્યભવનો શી

રીતે વર્તવુ તે કહે છે તેમા પ્રથમ રહેવા યોગ્ય દેશનું સ્વરૂપ દેખાડે છે) જે દેશમા સારો ધર્મ, દુર્ગ (કિલ્લો), સારો રાજા, ઉદ્યમ, જળ અને ઇધન (લાકડા) એ છ વાના સારા હોય, તથા પોતાની જ્ઞાતિના લોકો વસતા હોય, તે દેશમા ધર્મી પુરૂષે પ્રાયે સદા રહેવુ (૧)

गुणिनः सूनृतं शौचं, प्रतिष्ठा गुणगौरवम् ॥
अपूर्वज्ञानलाभश्च, यत्र तत्र वसेत्सुधीः ॥२॥

અર્થ—જ્યા ગુણી લોકો વસતા હોય, તથા સત્ય વ્યવહાર, પવિત્રતા, પ્રતિષ્ઠા (આબરૂ), ગુણનો આદર અને અપૂર્વ જ્ઞાનનો લાભ એટલા વાના હોય, ત્યા બુદ્ધિશાળી પુરૂષે રહેવુ (૨)

सम्यग्देशस्य सीमादि-स्वरूपं स्वामिनस्तथा ॥
ज्ञातिमित्रविपक्षाद्य-मवबुद्ध्य वसेन्नरः ॥३॥

અર્થ—વિવેકી મનુષ્યે જ્યા રહેવુ હોય તે દેશની સીમા વિગેરે, ત્યાના રાજાની રીતભાત, પોતાની જ્ઞાતિજાતિ, તથા પોતાના મિત્ર અને શત્રુ વિગેરે વસ્તુઓનુ સ્વરૂપ બરોબર પારખીને પછી ત્યા રહેવુ (૩)

बालराज्यं भवेद्यत्र, द्वैराज्यं यत्र वा भवेत् ॥
स्त्रीराज्यं मूर्खराज्यं वा, यत्र स्यात्तत्र नो वसेत् ॥४॥

અર્થ—જ્યા બાળક અથવા મૂર્ખ રાજા હોય, બે રાજા હોય, અથવા સ્ત્રીનું રાજ્ય હોય, ત્યા વિવેકી પુરૂષે વસવુ નહી (૪)

स्ववासदेशक्षेमाय, निमित्तान्यवलोकयेत् ॥
तस्योत्पातादिकं वीक्ष्य, त्यजेत्तं पुनरुद्यमी ॥५॥

અર્થઃ—પોતાના આવાસના (વસવાના સ્થાનકના) અને સમગ્ર દેશના કલ્યાણને અર્થે નિમિત્ત (શુકન પ્રમુખ) જોવાં, જો તેમાં ઉત્પાત વિગેરે જણાય તો તે આવાસનો અથવા દેશનો ઉદ્યમી પુરૂષે તુરત ત્યાગ કરવો. (૫)

(अथ निमित्तक्रमः ।)

प्रकृतस्यान्यथाभाव, उत्पातः स त्वनेकधा ॥
स यत्र तत्र दुर्भिक्षं, देशराज्यप्रजाक्षयः ॥६॥

અર્થઃ—જે વસ્તુ જેવા સ્વરૂપમાં હમેશાં રહે છે, તેમાં ફેરફાર થવો, તે ઉત્પાત કહેવાય છે. તેના અનેક પ્રકાર છે. તે (ઉત્પાત) જ્યાં થાય, ત્યાં દુભિક્ષ, દેશનો તથા રાજ્યનો ભંગ અને પ્રજાનો નાશ થાય છે. (૬)

देवानां वैकृतं भङ्ग–श्चित्रेष्वायतनेषु च ॥
ध्वजश्चोर्ध्वमुखो यत्र, तत्र राष्ट्राद्युपप्लवः ॥७॥

અર્થઃ—જ્યાં ચિત્રામણની અથવા મંદિરમાંની પ્રતિમાઓના સ્વરૂપમાં કાંઇ ફેરફાર અથવા ભંગ થાય તથા ધ્વજા ઊંચી ચઢતી દેખાય, ત્યાં રાષ્ટ્ર વિગેરેને ઉપદ્રવ થાય. (૭)

जलस्थलपुरारण्य–जीवान्यस्थानदर्शनम् ॥
शिवाकाकादिकाक्रन्दः, पुरमध्ये पुरच्छिदे ॥ ८ ॥

અર્થઃ—જ્યાં જળચર જીવ ભૂમીએ અને ભૂચર જીવ જળમાં, નગરના જીવ જંગલમાં અને જંગલી જીવ નગરમાં

સ્વાભાવિક રીતે દેખાય, તથા શિયાળિયા અને કાગડા બહુ કોલાહલ કરે, તે નગરનો નાશ થાય (૮)

छत्रप्राकारसेनादि–दाहाग्नैर्नृपभीः पुनः ॥
अस्त्राणा ज्वलनं कोशा–न्निर्गमः स्वयमाहवे ॥ ९॥

અર્થ—છત્ર, કોટ સેના (લશ્કર) વિગેરેને જો અગ્નિનો ઉપદ્રવ થાય, તો રાજાને ભય ઉત્પન્ન થાય તથા હથીઆરો બળતા દેખાય, અથવા પોતાની મેળે મ્યાનમાથી બહાર નીકળે તો સગ્રામ થાય (૯)

अन्यायकुसमाचारो, पाखण्डाधिकता जने ॥
सर्वमाकस्मिकं जातं, उक्तं देशनाशनम् ॥१०॥

અર્થ—જો મનુષ્યોમા અન્યાય, દુરાચાર અને પાખડીપણુ વૃદ્ધિ પામે, તો દેશનો નાશ થાય તથા કોઇ પણ ફેરફાર એકાએક થાય તો પણ તેથી દેશભગ થાય (૧૦)

प्रावृष्यैन्द्रं धनुर्दुष्टं, नाह्नि सूर्यस्य संमुखम्
रात्रौ दुष्टं सदा शेष–काले वर्णव्यवस्थया ॥११॥

અર્થ—વર્ષાકાળમા ઇદ્રધનુ'ય (કમાન) જો દિવસે સૂર્યની સમુખ દેખાય, તો તેમા કાઇ દોષ નથી. પણ તેજ રાત્રિએ દેખાય, તો અશુભ જાણવુ, તથા બાકીને વખતે દેખાય તો તેના રગ પ્રમાણે શુભ અથવા અશુભ જાણવુ (૧૧)

सितरक्तपीतकृष्ण, सुरेन्द्रस्य धनुर्यदि ॥
भवेद्विप्रादिवर्णाना, चतुर्णा नाशनं क्रमात् ॥१२॥

અર્થ:—તે ઇંદ્રધનુંય જો સફેદ, રાતું, પીળું તથા કાળું દેખાય, તો અનુક્રમે બ્રહ્મણ, ક્ષત્રિય, વૈશ્ય તથા શૂદ્રનો નાશ થાય. (૧૨)

अकाले पुष्पिता वृक्षाः, फलिताश्चान्यभूभुजे ॥
अल्पेऽल्पं महति प्राज्यं, दुर्निमित्ते फलं वदेत् ॥ १३ ॥

અર્થ:—જો અકાળે વૃક્ષોને ફૂલ અથવા ફળ આવે તો રાજક્રાંતિ થાય. ઉપર કહેલાં દુષ્ટ નિમિત્ત (ઉત્પાત) અલ્પ હોય તો અલ્પ અને ઘણાં હોય તો ઘણું ફળ કહેવું (૧૩)

अश्वत्थोदुम्बरवट–प्लक्षाः पुनरकालतः ॥
विप्रक्षत्रियविट्शूद्र–वर्णानां क्रमतो भिये ॥ १४ ॥

અર્થ:—અશ્વત્થ (પીપળો) ઉદુંબર (ઉંબર) વડ અને પ્લક્ષ (પીંપરો) એ ચાર વૃક્ષો અકાળે ફૂલ, ફળ પામે તો અનુક્રમે બ્રાહ્મણ, ક્ષત્રિય, વૈશ્ય તથા શુદ્ર એ ચારે વર્ણોને ભય ઉત્પન્ન થાય. (૧૪)

वृक्षे पत्रे फले पुष्पे, वृक्षः पुष्पं फलं दलम् ॥
जायते चेत्तदा लोके, दुर्भिक्षादि महाभयम् ॥ १५ ॥

અર્થ:—જો વૃક્ષ ઉપર વૃક્ષ, પત્ર ઉપર પત્ર, ફળ ઉપર ફળ, અને ફૂલ ઉપર ફૂલ ઉગેલું દેખાય, તો જગત્‌માં મોટો ભય ઉપજાવનારૂં દુભિક્ષ (દુકાળ) વિગેરે થાય. (૧૫)

गोध्वानिर्निशि सर्वत्र, कलिर्वा दर्दुरः शिखी ॥
श्वेतकाकश्वगृध्रादि–भ्रमणं देशनाशनम् ॥ १६ ॥

અર્થ —જેગાનિરો મર્વ જગોએ ગાયનો શબ્દ સંભળાય, જ્યાં ત્યાં કકરૂ (વડવાડ) થાય, દેહમને શિખા ઉત્પન્ન થએલી દેખાય, તેમજ ઘુવડ કાગડા, શ્વાન (કુતરા) અને ગીધ વિગેરે પક્ષિયો આમતેમ ભમ્યા કરે તો દેશનો નાશ થાય (૧૬)

अपूज्यपूजा पूज्याना—मपूजा करिणीमदः ॥

नृणां गेऽहि च्न्द्रार्कौ, निशिचेत् जगद्भयं ॥ १७ ॥

અર્થ —જે પૂજ્યા યોગ્ય પુરુષોની પૂજા ન થાય, અને ન પૂજ્યા યોગ્ય પુરૂષોની પૂજા થાય, હાથણીના ગંડસ્થળ નાથી મદ ઝરે, શિયાળિયુ દિવસે ચાંદ કરે, અને રાત્રિએ તિતર પક્ષી બોલે, તો જગતના ભય ઉત્પન્ન થાય (૧૭)

[illegible] स्तनश्चापि. मपरा[illegible] यदा स्मेन ॥

मन्यां वा नगरी जीतो. दुर्भिक्षाणि सदा भवेत ॥ १८ ॥

અર્થ —જે મનષ્યે પહેરવું ભુકતું હોય, તેજ મનગે ને [illegible] હોય બીજે નગરાણો [illegible], તો દુર્ભિક્ષ (દુકાળ) વિગેરે થાય (૧૮)

भग्नतानिन्नमाते-भाँगग समाः [illegible] ॥

[illegible] न [illegible] पापि भीमगम् ॥१९॥

[illegible] —[illegible] કરિન [illegible] [illegible] કરિનત [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] (૧૯)

[illegible] [illegible] [illegible] ॥

[illegible] [illegible] ॥२०॥

અર્થઃ—બિલાડાં, સર્પ અને માછલી એ ત્રણ જીવ શિવાય શેષ જીવો જો પોતાની જાતિના જીવનું માંસ ભક્ષણ કરે, તથા કાગડા વિગેરે પણ જો પોતાનું ભક્ષ્ય સંતાડે, તો ધાન્યનો નાશ થાય. (૨૦)

अन्तःपुरपुरानीक–कोशयानपुरोधसाम् ॥
राजपुत्रप्रकृत्यादे–रपि रिष्टफलं भवेत् ॥ २१ ॥

અર્થઃ—અંતઃપુર (જનાનખાનો), નગર સેના, કોશ (ભંડાર), વાહન (હાથી ઘોડા વિગેરે), પુરોહિત (રાજાનો ગુરૂ), રાજા, રાજપુત્ર તથા પ્રધાન વિગેરે રાજાનો પરિવાર એટલાને ઉત્પાતનું ફળ થાય. (૨૧)

पक्षमासर्तुषण्मास–वर्षमध्ये न चेत्फलम् ॥
रिष्टं तद्व्यर्थमत्र स्या–दुत्पन्ने शान्तिरिष्यते ॥ २२ ॥

અર્થઃ—પખવાડિયામાં, એક માસમાં, બે માસમાં, છ માસમાં અથવા એક વર્ષમાં જો ઉત્પાતનું ફળ ન થાય, તો તે ઉત્પાત વ્યર્થ જાણવો. અને ફળ થાય તો શાંતિ કરવી હિતકારી છે, (૨૨)

दौस्थ्ये भाविनि देशस्य, निमित्तं शकुनाः सुराः ॥
देव्यो ज्योतिषमन्त्रादि, सर्वं व्यभिचरेच्छुभम् ॥ २३ ॥

અર્થઃ—દેશની માઠી અવસ્થા થવાની હોય, તો નિમિત્ત શુકન, દેવતા, દેવીઓ, જ્યોતિષ તથા મંત્રવિગેરે શુભ હોય તો પણ વિપરીત ફળ આપે છે. (૨૩)

प्रत्रासयन्ति प्रथमं, स्वदेवान् परदेवताः ॥
दर्शयन्ति निमित्तानि, भङ्गे भाविनि नान्यथा ॥ २४ ॥

અર્થ—દેશ આદિકનો નાશ થવાનો હોય, ત્યારેજ પારકા દેવતાઓ પોતાના દેવતાઓને કાઢી નાખે છે, અને દુષ્ટ ઉત્પાત દેખાડે છે પણ દેશાદિકનો ભંગ થવાનો ન હોય તો એમ થતુ નથી (૨૪)

विशाखा भरणी पुष्य, पूर्वफा पूर्वभा मघा ॥
कृत्तिका चेति नक्षत्र–माग्नेय मण्डलं मतम् ॥२५॥

અર્થ—૧ વિશાખા, ૨ ભરણી, ૩ પુષ્ય, ૪ પૂર્વા ફાલ્ગુની, ૫ પૂર્વા ભાદ્રપદા, ૬ મઘા અને ૭ કૃત્તિકા આ સાત નક્ષત્રો "અગ્નિમંડળ" એવા નામથી કહેવાય છે (૨૫)

चित्रा हस्तोऽश्विनी स्वाति–र्मृगशीर्षं पुनर्वसुः ॥
उत्तरा फाल्गुनीत्येत–द्वायव्य मण्डलं विदुः ॥२६॥

અર્થ—૧ ચિત્રા, ૨ હસ્ત, ૩ અશ્વિની, ૪ સ્વાતિ, ૫ મૃગશીર્ષ, ૬ પુનર્વસુ અને ૭ ઉત્તરા ફાલ્ગુની એ સાત નક્ષત્રો "વાયુમંડળ" એવા નામથી કહેવાય છે (૨૬)

पूर्वाषाढोत्तराभाद्रा–श्लेषार्द्रा मूलरेवती ॥
शततारेति नक्षत्र–र्वारुण मण्डलं भवेत् ॥२७॥

અર્થ—૧ પૂર્વાષાઢા, ૨ ઉત્તરાભાદ્રપદા, ૩ અશ્લેષા, ૪ આર્દ્રા, ૫ મૂળ, ૬ રેવતી અને ૭ શતતારકા એ સાત નક્ષત્ર "વરૂણમંડળ" એ નામથી કહેવાય છે (૨૭)

अनुराधाभिजिज्ज्येष्ठो–त्तराषाढा धनिष्ठिका ॥
रोहिणी श्रवणोऽप्येभि–र्भर्माहेन्द्रमण्डलम् ॥२८॥

અર્થ—૧ અનુરાધા, ૨ અભિજત, ૩ જ્યેષ્ઠા, ૪ ઉત્તરા

ષાઢા, ૫ ધનિષ્ઠા, ૬ રોહિણી અને ૭ શ્રવણ એ સાત નક્ષત્ર "મહેંદ્ર મંડળ" એવા નામથી કહેવાય છે. (૨૮)

मासैरष्टभिराग्नेये, द्वाभ्यां वायव्यके पुनः ॥
मासेन वारुणे सप्त–रात्रान्माहेन्द्रके फलम् ॥ २९ ॥

અર્થઃ—અગ્નિમંડળનું ફળ આઠ માસે, વરૂણમંડળનું એક માસે અને મહેંદ્રમંડળનું સાત રાત્રિએ થાય છે. (૨૯)

भूमिकम्पो रजोवृष्टि–र्दिग्दाहोऽकालवर्षणम् ॥
इत्याद्याकस्मिकं सर्व–मुत्पात इति कीर्त्यते ॥३०॥

અર્થઃ—ધરતીકંપ, ધૂળની વૃષ્ટિ, દિશાઓમાં દાહ, અકાળે વર્ષાદ ઇત્યાદિક અણચિંત્યું થાય, તે સર્વે "ઉત્પાત" એવા નામથી કહેવાય છે. (૩૦)

ईत्यनीतिप्रजारोग–रणाद्युत्पातजं फलम् ॥
मण्डलाख्यासमं प्रायो, वह्निवाय्वादिकं तथा ॥३१॥

અર્થઃ—ઇતિ [1] અનીતિ, પ્રજાના શરીરમાં રોગ, સંગ્રામ ઇત્યાદિક ઉત્પાતનાં ફળ મંડળના નામ પ્રમાણે જાણવાં, જેમ ઉત્પાત અગ્નિ મંડળમાં હોય તો અગ્નિનો ઉપદ્રવ, વાયુ મંડળમાં હોય તો વાયુનો ઉપદ્રવ થાય, ઇત્યાદિક જાણવું. (૩૧)

उत्पातोऽपि च माहेन्द्रे, वारुणे मण्डले च यः ॥
स शुभः पुनरित्यूचे, तस्मिन् सर्वं शुभं वदेत् ॥३२॥

૧:—ઘણી વૃષ્ટિ, વૃષ્ટિનો બિલકુલ અભાવ, તીડનો ઉપદ્રવ, ઉંદરનો ઉપદ્રવ, સર્પાદિકનો ઉપદ્રવ, સ્વસૈન્યનો ઉપદ્રવ અને પર સૈન્યનો ઉપદ્રવ એ સાત ઇતિ કહેવાય છે.

અર્થ—ઉત્પાત પણ જો વરૂણ અથવા મહેંદ્રમંડળમાં થાય, તો શુભમાર્ગી એમ પણ કહ્યું છે, માટે તેવા ઉત્પાત થયા હોય તો સર્વ શુભ ફળ કહેવું (૩૨)

आग्नेये पीड्यते याम्या, वायव्ये पुनरुत्तरा ॥
वारुणे पश्चिमा चात्र, पूर्वा माहेन्द्रमण्डले ॥३३॥

અર્થ—અગ્નિમંડળમાં ઉત્પાત થાય તો દક્ષિણ દિશા પીડાય, વાયુમંડળમાં થાય તો ઉત્તર દિશા પીડાય, વરૂણમંડળમાં થાય તો પશ્ચિમ દિશા પીડાય, અને મહેંદ્રમંડળમાં થાય તો પૂર્વ દિશા પીડાય (૩૩)

मासर्क्षात्पूर्णिमा न्यूना, समाना यदि वाधिका ॥
महर्घं च समर्घं च, महर्घं च क्रमाद्भवेत् ॥३४॥

અર્થ—જો માસના નક્ષત્રથી પૂર્ણિમા ઓછી હોય તો વસ્તુનો ભાવ ચડે, સરખી હોય તો સરખો રહે, અને અધિક હોય તો ચડે (૩૪)

एकमासे रवेर्योगाः स्युः पञ्च न शुभप्रदाः
अमावास्यार्कवारेण, सर्वेन्त्यविघातिनी ॥ ३५ ॥

અર્થ—એક માસમાં પાંચ રવિવાર આવે તો શુભ ન જાણવા તથા અમાવાસ્યાને દિવસે રવિવાર આવે તો સૌને ઘાતની થાય (૩૫)

चैत्रवर्ज्यार्कसंक्रान्तौ, मेषादिर्मृगकर्कयोः ॥
यदा तदा महर्घं स्या-द्दीपादुत्तरतस्तथा ॥ ३६ ॥

[illegible]

અર્થઃ—જો કર્ક સંક્રાંતિ (દક્ષિણાયન) અને મકર સંક્રાંતિ (ઉત્તરાયણ) રવિવારે, શનિવારે અથવા મંગળવારે થાય, તો મોંઘવારી, અતિવૃષ્ટિ, દુમાળ, યુદ્ધ વિગેરે થાય. (૩૬)

मृगकर्काजगोमीने–ष्वर्को वामांघ्रिणा निशि ॥
अह्नि सप्तसु शेषेषु, प्रचलेद्दक्षिणांघ्रिणा ॥३७॥

અર્થઃ—મકર, કર્ક, મેષ, વૃષભ અને મીન એ પાંચ રાશિમાં સૂર્ય રાત્રિએ ડાબે પગે, અને બાકીના સાત રાશિઓમાં જમણે પગે ચાલે છે. (૩૭)

स्वे स्वे राशौ स्थिते स्वास्थ्यं, भवेद्दौस्थ्यं व्यतिक्रमे ॥
चिन्तनीयस्ततो यत्ना–द्रात्र्यहःप्रोक्तसंक्रमः ॥३८॥

અર્થઃ—રાત્રિએ અને દિવસે કહેલો સંક્રાતિકાળ યત્નથી વિચારવો. કારણ કે, તે પોતપોતાની રાશિમાં હોય તો સ્વાસ્થ્ય કરનારો છે, અને વિપરીત હોય તો દુઃખદાયી છે. (૩૮)

आर्द्रान्त्यांघ्रौ तथा स्वातौ, सति राहौ यदा शशी ॥
रोहिणीशकटस्यान्त—र्याति दुर्भिक्षकृत्तदा ॥३९॥

અર્થઃ—આર્દ્રા નક્ષત્રના છેલ્લા પાયામાં અથવા સ્વાતિ નક્ષત્રમાં રાહુ છતાં જો ચંદ્રમા [1]રોહિણીશકટનો ભેદ કરે, તો તેથી દુર્ભિક્ષ (દુકાળ) પડે. (૩૯)

૧:—આકાશમાં ગાડા સરખા આકારના તારાઓ ફાગણ માસમાં સૂર્ય આથમતં જ પશ્ચિમ દિશાએ દેખાય છે. તેને રોહિણીશકટ કહે છે.

भौमस्याधो गुरुश्चेत्स्या-द्वर्यधोऽपि शनैश्चरः ॥
ग्रहाणां मुशल ज्ञेय-मिदं जगदरिष्टकृत् ॥४०॥

અર્થ—જો મગળ નીચે ગુરૂ અને ગુરૂ નીચે શની હોય તો "મુસલ" નામે યોગ થાય છે તે જગતમા અનર્થ ઉત્પન્ન કરનારો જાણવો (૪૦)

शनिर्मीने गुरुः कर्के, तुलायामपि मङ्गलः ॥
यावच्चरति लोकस्य, तावत्कष्टपरंपरा ॥४१॥

અર્થ—શનિમીન રાશિમા, ગુરૂ કર્ક રાશિમા અને મગળ તુલા રાશિમા, હોય ત્યા સુધી જગતમા કષ્ટ ઉપર કષ્ટ આવ્યા કરે (૪૧)

गुरोः सप्तान्त्यपञ्चद्वि-स्थानगा वीक्षका अपि ॥
शनिराहुकुजादित्याः, प्रत्येकं देशभञ्जनम् ॥४२॥

અર્થ—જો શનિ, રાહુ, મગળ અને સૂર્ય એ ચાર ગ્રહ પાચમે અને બીજે સ્થાને પોતે આવે અથવા તેમની દૃષ્ટિ એ સ્થાનો ઉપર આવે, તો ઉપર કહેલા ચાર ગ્રહોમા એકેક ગ્રહ પણ દેશનો ભગ કરી શકે (૪૨)

शुक्रार्किभौमजीवाना-मेकोऽपीन्दुं भिनत्ति चेत् ॥
पतत्सुभटकोटीभिः, प्रेतप्रीता तदाजिभूः ॥ ४३ ॥

અર્થ—શુક્ર, શનિ, મગળ અને ગુરૂ એમા કોઇપણ ગ્રહ જો ચદ્રમાના મડળને ભેદે, તો ક્રોડો સુભટો સગ્રામમાં પડે અને તેથી સગ્રામની ભૂમિ ક્રોડો પ્રેતોનો (મડદાનો) બલિ મળવાથી સતુષ્ટ થાય (૪૩)

कुम्भमीनान्तरेऽष्टम्यां, नवम्यां दशमीदिने ॥
रोहिणी चेत्तदा वृष्टि-रल्पा मध्याधिका क्रमात् ॥४४॥

અર્થઃ—કુંભ અને મીન સંક્રાંતિની વચ્ચે રોહિણી નક્ષત્ર આવે છે, તે જો આઠમને દિવસે આવે તો અલ્પ, નવમ દિવસે આવે તો મધ્યમ અને દસમને દિવસે આવે તો અધિક વૃષ્ટિ થાય. (૪૪)

शाकस्त्रिघ्नो युतो द्वाभ्यां, चतुर्भक्तोऽवशेषितः ॥
समाङ्के ह्यल्पका वृष्टि-र्विषमे प्रचुरा पुनः ॥४५॥

અર્થઃ—શકને ત્રણ ગણો કરી તેમાં બે ઉમેરવા અને તે સંખ્યાને ચારે ભાગતાં જો સમ સંખ્યા બાકી રહે તો અલ્પ વૃષ્ટિ અને વિષમ સંખ્યા બાકી રહે તો ઘણી વૃષ્ટિ જાણવી. (૪૫)

मेघाश्चतुर्विधास्तेषां, द्रोणाह्वः प्रथमो मतः ॥
आवर्तः पुष्करावर्त-स्तुर्यः संवर्तकस्तथा ॥४६॥

અર્થઃ—મેઘ (વાદળા) ચાર પ્રકારના છે. તેમાં પહેલાનું નામ દ્રોણ, બીજાનું આવર્ત, ત્રીજાનું પુષ્કરાવર્ત અને ચોથાનું સંવર્તક. (૪૬)

आषाढे दशमी कृष्णा, सुभिक्षाय सरोहिणी ॥
एकादशी तु मध्यस्था, द्वादशी दुःखदायिका ॥४७॥

અર્થઃ—આષાઢ વદિ દસમને દિવસે રોહિણી નક્ષત્ર હોય તો સુભિક્ષ (સુકાળ) થાય, અગ્યારસને દિવસે હોય તો મધ્યમ વૃષ્ટિ થાય, અને બારસને દિવસે હોય તો દુકાળ પડે (૪૭)

रविराशेः पुरो भौमो, दृष्टिसृष्टिनिरोधकः
भौमाद्या याम्यगाश्चन्द्र-श्चोत्तरो दृष्टिनाशनः ॥४८॥

અર્થ —સૂર્ય જે રાશિએ હોય, તે રાશિથી આગળ મગળ હોય તો તે વૃષ્ટિને હરકત કરનારો છે તથા મગળ વિગેરે ગ્રહ સૂર્યની રાશિના દક્ષિણ ભાગે અને ચદ્ર જો ઉત્તર ભાગે હોય તો તેથી વૃષ્ટિનો નાશ થાય છે (૪૮)

रेवतीरोहिणीपुष्य-मघोत्तरपुनर्वसु ॥
सेवते चेन्महीसूनु-रून तज्जगदम्बुदः ॥४९॥

અર્થ —રેવતી, રોહિણી, પુષ્ય, મઘા, ઉત્તરા અને પુનર્વસુ એ નક્ષત્રોને વિષે મગળ હોય તો જગત્મા વૃષ્ટિ અલ્પ થાય (૪૯)

चित्रास्वातिविशाखासु, यस्मिन्मासे न वर्षणम् ॥
तन्मासे निर्जला मेघा इति गर्गमुनेर्वचः ॥५०॥

અર્થ —જે માસમા ચિત્રા, સ્વાતિ અને વિશાખા એ નક્ષત્રોમા વૃષ્ટિ ન થાય, તે માસમા વાદળા પાણી વિનાના થાય એવુ ગર્ગમુનિનુ વચન છે (૫૦)

अश्लेषाया यदा भंद्रे, कर्के संक्रमते रविः ॥
तदा च मघ्ररा वृष्टि-रित्यूचे वाडवो मुनिः ॥५१॥

અર્થ —સૂર્યની કર્ક રાશિએ સક્રાતિ થાય છે, તે દિવસે અશ્લેષા નક્ષત્ર હોય તો ઘણી વૃષ્ટિ થાય, એવુ વાડવ મુનિનુ વચન છે (૫૧)

तुलासङ्क्रान्तिषट्कं चे-त्स्वस्याः स्वस्यास्तिथेश्चलेत् ॥
तदा दुःस्थं जगत्सर्वं, दुर्भिक्षडमरादिभिः ॥५२॥

અર્થઃ—જો તુલા, વૃશ્ચિક, ધન, મકર, કુંભ અને મીન એ છ સંક્રાંતિયો પોત પોતપોતાની તિથિથી ચલિત થાય, તો દુકાળ આદિકથી સર્વ જગતને પીડા થાય. (૫૨)

दीपोत्सवदिने भौम–चारो वह्निभयावहः ॥
संक्रान्तीनां च नैकट्ये, शुभकर्मादिकं न हि ॥ ५३ ॥

અર્થઃ—દિવાળીને દિવસે જો મંગળવાર આવે, તો અગ્નિનો ઉપદ્રવ થાય, અને સંક્રાંતિ સમીપ આવેલી હોય તો શુભ કાર્ય વિગેરે ન થાય. (૫૩)

अस्तस्थानं रवेर्ज्येष्ठ—जामायां वीक्ष्य चिह्नितम् ॥
तदुत्तरेण चेदिन्दो–रस्तस्तच्छुभदं वदेत् ॥५४॥

અર્થઃ—જ્યેષ્ઠ વદિ અમાવાસ્યાને દિવસે સૂર્યના આથમવાનું સ્થાનક ચિન્હે કરી રાખવું, અને સુદી બીજને દિવસે ચંદ્રમા જો સૂર્યથી ઉત્તર ભાગે આથમે તો શુભ ફળ કહેવું. (૫૪)

यावती भुक्तिराषाढे, शुक्लप्रतिपदादिने ॥
पुनर्वसोश्चतुर्मास्यां, वृष्टिः स्यात्तावती शुभा ॥५५॥

અર્થઃ—આષાઢ સુદિ પ્રતિપદાને દિવસે પુનર્વસુ નક્ષત્રનો જેટલો ભાગ હોય તેટલી ચોમાસામાં વૃષ્ટિ થાય એમ જાણવું. (૫૫)

(अथ वास्तुशुद्धगृहक्रमः ।)

वैशाखे श्रावणे मार्गे, फाल्गुने क्रियते गृहम् ॥
शेषमासेषु न पुनः, पौषो वाराहसंमतः ॥५६॥

અર્થ—(હવે વાસ્તુની (ઘરની ભૂમિની) પરીક્ષા કરી ઘરની રચના કરવાનો પ્રકાર કહે છે) વૈશાખ, શ્રાવણ, માર્ગશીર્ષ અને ફાલ્ગુન એ ચાર માસમા નવુ ઘર કરવુ બીજા માસમા ન કરવુ વરાહમિહિરના મત પ્રમાણે પોષ માસમા પણ ઘર કરવુ (૫૬)

मृगसिंहकर्ककुम्भे–ऽर्के प्राक्प्रत्यग्मुखं गृहम् ॥
वृषाजालितुलास्थे तू–दग्दक्षिणमुखं शुभम् ॥५७॥
कन्यायां मिथुने मीने, धनस्थे च रवौ सति ॥
नैव कार्यं गृहं कैश्चि–दिदमप्यभिधीयते ॥५८॥

અર્થ—કર્ક, સિંહ, મકર અને કુંભ એ ચાર રાશિઓની ગમે તે એક રાશિને વિષે સૂર્ય હોય ત્યારે પૂર્વ અથવા પશ્ચિમ દિશા સંમુખ ઘર કરવુ મેષ, વૃષભ, તુલા અને વૃશ્ચિક એ ચારમાની કોઈ પણ રાશિને વિષે સૂર્ય હોય ત્યારે ઉત્તર અથવા દક્ષિણ દિશા સંમુખ ઘર કરવુ. મિથુન, કન્યા, ધન અને મીન એ ચારમાની કોઈ પણ રાશિને વિષે સૂર્ય હોય ત્યારે નવુ ઘર ન કરવુ એવુ કેટલાક ગ્રંથકારોનો મત છે (૫૭) (૫૮)

सुयोगर्क्षे सुताराश, स्थिरांशमधिकायकम् ॥
अद्विद्वीदशकत्रित्रि–कोणषट्काष्टकं शुभम् ॥५९॥

અર્થ—જ્યા યોગ, નક્ષત્ર તથા તારા એ ત્રણે સારા, લગ્નાંશ સ્થિર અને વ્યય કરતા આય અધિક હોય, તથા દ્વિર્દ્વાદશ (બીઆબાર), ત્રિત્રિકોણ ત્રપુપાચ અથવા ત્રણ–નવ અને પટ્કાષ્ટક (છ આઠ) એ ત્રણ માઠા યોગ ન હોય તે ઘર શુભ જાણવુ (૫૯)

शोको धान्यं मृतिपशुहती द्रव्यवृद्धिर्विनाशो,
युद्धं भृत्यक्षतिरथ धनं स्त्री च वह्नेर्भयं च ॥
लक्ष्मीप्राप्तिर्भवति भवनारम्भकर्तुः क्रमेण,
चैत्रादूचे मुनिरिति फलं वास्तुशास्त्रोपदिष्टम् ॥९०॥

અર્થઃ—ચૈત્રમાં નવું ઘર બાંધે તો શોક થાય, વૈશાખમાં ધાન્ય, જેઠમાં મરણ, આષાઢમાં પશુઓનો નાશ, શ્રાવણમાં ધનની વૃદ્ધિ, ભાદરવામાં વિનાશ, આસોમાં યુદ્ધ (કજીયો), કાર્તિકમાં સેવકનો નાશ, માર્ગશીર્ષમાં ધનની વૃદ્ધિ, પોષમાં સ્ત્રીની પ્રાપ્તિ, માહમાં અગ્નિનો ભય અને ફાગણમાં લક્ષ્મીની પ્રાપ્તિ થાય. એવી રીતે વાસ્તુ શાસ્ત્રના અનુસારથી ઘર બાંધવાનું ફળ પૂર્વાચાર્યે કહ્યું છે. (૯૦)

पुष्यध्रुवमृदुस्वाति--हस्तवासववारुणे ॥
प्रथमो वेश्मनां सूत्र—प्रारम्भः सद्भिरिष्यते ॥९१॥

અર્થઃ—પુષ્ય, હસ્ત, સ્વાતિ, વિશાખા, જ્યેષ્ઠા, શતતારકા, રોહિણી, ઉત્તરા, ઉત્તરાષાઢા, ઉત્તરાભાદ્રપદા, મૃગ, ચિત્રા, અનુરાધા, રેવતી એટલા નક્ષત્રોમાંનુ કોઇ પણ નક્ષત્ર હોય ત્યારે, ઘરનું પ્રથમ સૂત્ર (પહેલી આંકણી) માંડવું. એવો વિદ્વાનોનો મત છે. (૯૧)

समाधिकव्ययं कर्तुः, समनाम यमांशकम् ॥
क्रुमासधिष्ण्यवारं च, गृहं वर्ज्यं प्रयत्नतः ॥९२॥

અર્થઃ—આય જેટલા અથવા આયથી અધિક વ્યયને અને પોતાના ધણીની સાથે મળતા નામને ધારણ કરનારૂં,

યમના અંશમાં આવેલું, તથા દુષ્ટ માસ, દુષ્ટ નક્ષત્ર, દુષ્ટ વાર ઉપર બંધાવેલું એવા ઘરનો પ્રયત્નથી ત્યાગ કરવો (૯૨)

निस्तारेण हतं दैर्घ्यं, विभजेदष्टभिस्तथा ॥
यच्छेषं स भवेदायः, स ध्वजाद्याख्ययाष्टधा ॥६३॥

અર્થ—લંબાઇનો અને પહોળાઇનો ગુણાકાર કરી આવેલી સંખ્યાને આઠે ભાગવી એમ કરતાં શેષ રહે તે આય કહેવાય તે (આય) ધ્વજ આદિક આઠ પ્રકારથી ઓળખાય છે (૯૩)

ध्वजो धूमो हरिः श्वा गौः, खरेभौ वायसोऽष्टमः ॥
पूर्वादिदिक्षु चाष्टानां, ध्वजादीनामवस्थितिः ॥६४॥

અર્થ—ઉપર કહેલી સંખ્યાને આઠે ભાગતાં એક શેષ રહે તો ધ્વજ, બે રહે તો ધૂમ, ત્રણ રહે તો સિંહ, ચાર રહે તો શ્વાન, પાંચ રહે તો વૃષભ, છ રહે તો ગર્દભ, સાત રહે તો ગજ અને સમ ભાગ આવે તો કાક એ આઠે આયની અનુક્રમે પૂર્વ દિશાથી માંડી આઠ દિશાઓને વિષે સ્થિતિ જાણવી (૯૪)

स्वे स्वे स्थाने ध्वजः श्रेष्ठो, गजः सिंहस्तथैव च ॥
ध्वज सर्वगतो देयो, वृष नान्यत्र दापयेत् ॥६५॥

અર્થ—ધ્વજ, ગજ અને સિંહ એ ત્રણ આય પોતપોતાને સ્થાનકે શ્રેષ્ઠ જાણવા ધ્વજ સર્વ ઠેકાણે દેવો, પણ વૃષભ અન્ય ઠેકાણે ન દેવો (૯૫)

वृषः सिंहो गजश्चैव, खेटे खर्वटकोट्टयोः ॥
द्विपः पुनः प्रयोक्तव्यो, वापीकूपसरस्सु च ॥६६॥

અર્થઃ— વૃષભ, સિંહ અને ગજ એ ત્રણ આય ખેટ (ગામડું), ખર્વટ (ડુંગરની તલાટીએ આવેલું ગામડું) તથા કોટ એ ત્રણુને વિષે આપવા. તેમજ ગજ નામે આય વાપી (વાવ), કૂપ (કુવા), અને તળાવ એને વિષે આપવો. (૬૬)

आसनायुधयोः सिंहः, शयनेषु गजः पुनः ॥
वृषो भोजनपात्रेषु, छत्रादिषु पुनर्ध्वजः ॥६७॥

અર્થઃ—આસન અને આયુધ (હથિયાર) એ બેને વિષે સિંહ આય, શયનને વિષે ગજ આય, ભોજન પાત્રને વિષે વૃષભ આય અને છત આદિકને વિષે ધ્વજ આય દેવો. (૬૭)

अग्निवेश्मसु सर्वेषु, गृहे वह्न्युपजीविनाम् ॥
धूमं नियोजयेत्किं च, श्वानं म्लेच्छादिजातिषु ॥६८॥

અર્થઃ— ધૂમ આય પાકસ્થાનમાં (રસોડામાં) તથા અગ્નિ ઉપર પોતાની આજીવિકા કરનારા લોહાર પ્રમુખને ઘેર આપવો. તથા મ્લેચ્છ આદિક જાતિને વિષે શ્વાન આય દેવો. (૬૮)

खरो वेश्यागृहे शस्तो, ध्वाङ्क्षः शेषकुटीषु च ॥
वृषः सिंहो गजश्चापि, प्रासादपुरवेश्मसु ॥६९॥

અર્થઃ—વેશ્યાને ઘરે ગર્દભ આય, બાકી રહેલી સર્વ કુટીને વિષે (ઝુપડાને વિષે) કાક આય, તથા પ્રાસાદ (દેવ-મંદિર અથવા રાજમહેલ) અને નગરના ઘર એ બન્નેને વિષે વૃષ, સિંહ તથા ગજ આય દેવો. (૬૯)

आयामे विस्तारहते, योऽङ्कः सजायते किल ॥
स मूलराशिविज्ञेयो, गृहस्य गणकैः सदा ॥७०॥

અર્થ—લબાઇનો અને પહોળાઇનો ગુણાકાર કરે છને જે સખ્યા આવે છે તે ઘરની મૂળરાશિ જ્યોતિષીએ નિરતર જાણવી (૭૦)

अप्टभिर्गुणिते मूल–राशावसिन्विशारदैः ॥
सप्तविशतिभक्ते य–च्छेप तद्गृहभ भवेत् ॥७१॥

અર્થ—મૂળ રાશિને આઠથી ગુણી સત્તાવિશે ભાગ દેતા જે શેષ રહે તે ઘરનુ નક્ષત્ર જાણવુ (૭૧)

नक्षत्राङ्केऽप्टभिर्भक्ते, योऽङ्कः स स्याद्गृहे व्ययः ॥
पैशाचो राक्षसो यक्षः, स त्रिधा स्मर्यते व्ययः ॥७२॥

અર્થ—નક્ષત્રની સખ્યાને આઠે ભાગતા જે શેષ રહે તે ઘરના વિષયમા વ્યય જાણવો તે વ્યય પૈશાચ, રાક્ષસ અને યક્ષ એવી રીતે ત્રણ પ્રકારનો છે (૭૨)

पैशाचस्तु समायः स्या–द्राक्षसस्त्वाधिके व्यये ॥
आयाद्न्यूनतरो यक्षो, व्ययः श्रेष्ठोऽप्यत्रा त्वयम् ॥७३॥

અર્થ—વ્યય, આય જેટલો આવે તો તે પૈશાચ, આય કરતા અધિક આવે તો રાક્ષસ અને આય કરતા ઓછો આવે તો યક્ષ કહેવાય છે એ ત્રણમા યક્ષ વ્યય શ્રેષ્ઠ જાણવો હવે આઠ પ્રકારનો વ્યય કહે છે (૭૩)

शान्तः पौरस्तथोद्योतः, श्रेयानन्दो मनोहरः ॥
श्रीवत्सो विभवश्चापि, चिन्त्यात्मेत्यष्टधा व्ययः ॥७४॥

અર્થઃ—ઉપર કહેલી રીતે નક્ષત્રની સંખ્યાને આઠે ભાગતાં શેષ એક બાકી રહેતો શાંત નામે, બે શેષ રહે તો ચોર નામે, ત્રણ શેષ રહે તો, ઉદ્યોત નામે ચાર શેષ રહે તો શ્રેયાનંદ નામે, પાંચ શેષ રહે તો મનોહર નામે, છ શેષ રહે તો શ્રીવત્સ નામે, સાત શેષ રહે તો વિભવ નામે, અને સમભાગ આવે તો ચિંત્ય નામે વ્યય જાણવો. (૭૪)

सूलराशौ व्यये क्षिप्ते, गृहनामाक्षरेषु च ॥
ततो हरेस्त्रिभिर्भागं, यच्छेषं सोऽशको भवेत् ॥७५॥
इन्द्रो यमश्च राजा चा-प्यंशकाश्च त्रयस्त्विमे ॥

અર્થઃ—મૂળ રાશિમાં વ્યયની અને ઘરના નામાક્ષરની સંખ્યા ઉમેરવી. અને ત્રણે ભાગતાં જે શેષ રહે તે અંશ જાણવો. એક શેષ રહેતો ઇંદ્રનો, બે શેષ રહે તો યમનો અને સમ ભાગ તૂટે તો રાજાનો અંશ જાણવો. (૭૫)

गृहभस्वामिभैक्यस्य, भक्तस्य नवभिः पुनः ॥७६॥
यच्छेषं सा भवेत्तारा, तारानामान्यमूनि च ॥
जन्म संपद्विपत्क्षेम; प्रत्यरिः साधनेति च ॥७७॥
नैधनी मैत्रिका चैव, तथा परममैत्रिका ॥
चत्वारः षड् नव श्रेष्टाः, सप्त पञ्च त्रयोऽधमाः ॥७८॥

અર્થઃ—ઘરનાં નક્ષત્રની અને ઘરધણીના નક્ષત્રની સંખ્યા એકત્ર કરી તેને નવે ભાગતાં શેષ રહે તે તારા કહેવાય છે. તેનાં નામ આ પ્રમાણે—નવનો ભાગ દેતાં એક શેષ રહે તો જન્મનામે તારા, બે શેષ રહે તો સંપત્નામે,

ત્રણ શેષ રહે તો વિપત્ નામે, ચાર શેષ રહે તો ક્ષેમ નામે, પાચ શેષ રહે તો પ્રત્યરિ નામે, ૭ શેષ રહે તો સાધની નામે, સાત શેષ રહેતો નૈધની નામે, આઠ શેષ રહે તો મૈત્રિકા નામે અને નવ શેષ રહે તો પરમમૈત્રિકા નામે તારા જાણવી એ નવ તારાઓમા ચોથી, છઠી અને નવમી શ્રેષ્ઠ, ત્રીજી, પાચમી અને સાતમી અધમ અને બાકી મધ્યમ જાણવી (૭૬) (૭૭) (૭૮)

राक्षसामरमर्त्यारय-गणनक्षत्रकादिकम् ॥
ज्ञेय ज्योतिर्मतरयात-मिदमत्रेति नोदितम् ॥७९॥

અર્થ—રાક્ષસ, દેવતા, મનુષ્ય નામના ગણ તથા નક્ષત્ર આદિક જ્યોતિષ શાસ્ત્રમા પ્રસિદ્ધ છે, માટે અહી કહ્યુ નથી એમ જાણવુ (૭૯)

ध्रुव धन्य जय नन्द, खर कान्तं मनोरमम् ॥
सुमुख दुर्मुख क्रूर, सुपक्ष धनद क्षयम् ॥८०॥
आक्रन्द विपुल चैत्र, विजयं चेत्यमूर्भिदाः ॥
गृहस्य स्वस्य नाम्नोऽपि, सदृश च भवेत्फलम् ॥८१॥

અર્થ—૧ ધ્રુવ (સ્થિરતા રાખનારૂ), ૨ ધન્ય (યશ દેનારૂ), ૩ જય, (જય દેનારૂ), ૪ નન્દ (આનન્દ દેનારૂ), ૫ ખર (સ્નેહ તોડનારૂ), ૬ કાન્ત (સુદરતા ઉપજાવનારૂ), ૭ મનોરમ (મનને પ્રીતિ ઉપજાવનારૂ), ૮ સુમુખ (સારા મુખનુ), ૯ દુર્મુખ (ખરાબ મુખનુ), ૧૦ ક્રૂર (ભય ઉપજાવનારૂ), ૧૧ સુપક્ષ (પરિવારને વધારનારૂ), ૧૨ ધન (ધન દેનારૂ), ૧૩ ક્ષય (નાશ કરનારૂ), ૧૪ આક્રન્દ (શોક

ઉપજાવનારૂં), ૧૫ વિપુલ (વૃદ્ધિ કરનારૂં), અને ૧૬ વિજય (ઘણો જય આપનારૂં) એવા નામથી ઘરના સોળ ભેદ છે. ઘરનાં તથા પોતાના નામનાં પણ એ નામ સરખાં ફળ જાણવાં. (૮૦) (૮)

> यो गुरुणां चतुर्णां स्या–त्प्रस्तारश्छन्दसां कृतः
> षोडशान्त इमे भेदः, स्युस्तन्नामान्यालिन्दकैः ॥८२॥

અર્થઃ—ચાર ગુરૂ વર્ણનો જે સોળ[1] પ્રકારનો છંદશાસ્ત્રમાં (પિંગળમાં) પ્રસ્તાર કર્યો છે. તેવાજ ઘરના આ સોળ ભેદ જાણવા. અને ઉપર કહેલા સોળ નામ અલિંદક (દરવાજા આગળનો ચોક) ઉપરથી થાય છે. (૮૨)

> पूर्वस्यां श्रीगृहं कार्य–माग्नेय्यां तु महानसम् ॥
> शयनं दक्षिणस्यां च, नैऋत्यामायुधादिकम् ॥ ८३ ॥
>
> भुजिक्रिया पश्चिमायां, वायव्यां धान्यसंग्रहः ॥
> उत्तरस्यां जलस्थान–मीशान्यां देवतागृहम् ॥ ८४ ॥

અર્થઃ—ઘરમાં પૂર્વ દિશાએ લક્ષ્મીનું સ્થાનક (ભાંડાગાર) કરવું,અગ્નિકોણે પાકશાળા (રસોડું) કરવી, તથા દક્ષિણ દિશાએ સુવાનું, નૈઋત્ય કોણે હથિયાર વિગેરે રાખવાનું,

---

૧:—ચાર ગુરૂ વર્ણના સોળ પ્રસ્તાર આ રીતે—(૧)SSSS ધ્રુવ, (૨)। SSSધન્ય, (૩)SSS જય (૪)।।SS નન્દ, (૫)SSS ખર, (૬)।S।S કાંત, (૭) S।।S મનોરમ, (૮)।।।S સુમુખ, (૯)SSS। દુર્મુખ (૧૦)।SS। ક્રૂર, (૧૧)S।S। સુપક્ષ, (૧૨)।।S ધનદ, (૧૩)SS।। ક્ષય, (૧૪)S।। આક્રંદ, (૧૫)S।।। વિપુલ, અને (૧૬)।।।। વિજ. અહી એ (S)ચિન્હ ગુરૂવર્ણનું અને આ (।)ચિન્હ લઘુ વર્ણનું સમજવું.

પશ્ચિમ દિશાએ ભોજન કરવાનુ, વાયવ્ય કોણમા ધાન્યના સગ્રહનુ, ઉત્તર દિશાએ જળનુ અને ઇશાન કોણમા દેવનુ સ્થાનક કરવુ (૮૩) (૮૪)

(अपरं च) गृहस्य दक्षिणे वह्नि–तोयगोमयदीपभूः ॥
वामे प्रत्यग्दिशो भुक्ति–धान्यार्थारोहदेवभूः ॥८५॥

અર્થ —વળી કહ્યુ છે કે, ઘરના દક્ષિણ ભાગમા પાક શાળા (રસોડુ), પાણીયારૂ અને છાણનુ તથા દીપક રાખવાનુ સ્થાનક કરવુ ડાબી બાજુએ પશ્ચિમ દિશામા ભોજન કરવાનુ ધાન્ય અને ધન રાખવાનુ તથા દેવનુ સ્થાનક કરવુ (૮૫)

पूर्वादिदिग्विनिर्देशो, गृहद्वारव्यपेक्षया ॥
भास्करोदयदिक्पूर्वा, न विज्ञेया यथा क्षुते ॥८६॥

અર્થ —જેમ છીંકમા જે દિશાએ મુખ હોય તે પૂર્વ દિશા લેવાય છે, તેમ ઘરની બાબતમા પણ જે દિશાએ ઘરનુ દ્વાર હોય તેજ પૂર્વ દિશા તથા તેની અપેક્ષાએ બીજી દિશાઓ જાણવી પણ જે દિશાએ સૂર્ય ઉગે છે, તે પૂર્વ દિશા અહીં ન લેવી (૮૬)

गृहेषु हस्तसख्यान, मध्यकोर्णैर्विधियिते ॥
समाः स्तम्भाः समाः पट्टा, विषमाश्च क्षणाः पुनः ॥८७॥

અર્થ —ઘર માપવુ હોય તો હાથની સખ્યા મધ્ય ખુણાથી કરાય છે ઘરના થાભલા તથા પાટિયા સમસખ્યામા રાખવા, અને ઘરના ખણ (ખડ) વિષમ સખ્યામા રાખવા (૮૭)

आये नष्टे सुखं न स्या–न्मृत्युः षट्काष्टके पुनः ॥
द्विर्द्वादशे च दारिद्र्यं, त्रित्रिकोणेऽङ्गजक्षयः ॥८८॥

અર્થઃ—ઘરને વિષે આય જેવો જોઇએ તેવો ન હોય તો સુખ ન થાય, તથા છ–આઠ હોય તો મરણ દ્વિર્દ્વાદશ (બીઆબારૂં) હોય તો ધનનો ક્ષય અને ત્રણ–પાંચ તથા ત્રણ–નવ હોય તો પુત્રનો નાશ થાય. (૮૮)

यमांशे गृहिमृत्युः स्या–न्मृत्युः सप्तमतारके ॥
निस्तेजाः पञ्चमे तारे, विपत्तारे तृतीयके ॥८९॥

અર્થ—ઘરને વિષે યમનો અંશ હોય તો ઘર ધણીનું ધણીનું મરણ થાય, સાતમી (નૈધની) તારા હોય તો પણ મરણ થાય, પાંચમી (પ્રત્યરિ) તારા હોય તો ઘર ધણીનું તેજ જાય, ત્રીજી (વિપત્)તારા હોય તો આપદા આવી પડે. (૮૯)

न्यूनाधिक्ये च पट्टानां, तुलावेध उपर्यधः ॥
एकक्षणे नीचोच्चत्वे, पट्टानां तालुवेधता ॥ ९० ॥
भूवैषम्यात्तले वेधो, द्वारवेधश्च घोटके ॥
एकास्मिन्संमुखे द्वाभ्यां पुन–र्नैव कदाचन ॥ ९१ ॥

અર્થ—ઘરનાં ઉપરના અથવા નીચેનાં પાટિયાં જો ઓછાં અથવા અધિક હોય તો તુલાવેધ કહેવાય છે. એક ખણમાં (ખંડમાં) જો પાટિયાં ઉંચાં નીચાં હોય તો તાલુવેધ કહેવાય, ઘરની જમીન ઉંચી નીચી હોય તો તલવેધ કહેવાય, અને એકજ ઘોડો સંમુખ (સામો) હોય તો દ્વારવેધ કહેવાય, પણ બે ઘોડા સામા હોય તો દ્વારવેધ ન કહેવાય. (૯૦)(૯૧)

वाम्नोर्वमासि शीर्षं च, नाभौ च स्तनयोर्द्वयोः ॥
गृहस्थानानि मर्माणि, नैषु स्तम्भादि सृजयेत् ॥ ९२ ॥

અર્થ —વાસ્તુની છાતી, મસ્તક, નાભિ અને બે સ્તન એ પાંચ ઘરના મર્મસ્થાન કહેવાય છે, માટે એ પાંચ સ્થાનકોને વિષે થાંભલા વિગેરે ન નાખવા (૯૨)

स्तम्भकूपद्रुकोणाग्र-विद्धं द्वारं शुभं नहि ॥
गृहोर्च्चा द्विगुणा भूमिं, त्यक्त्वा ते स्युर्न वेधका ॥ ९३ ॥

અર્થ —થાંભલો, કુવો, વૃક્ષ, ખૂણો તથા માર્ગ ઘરના દ્વારની વચ્ચે આવે તો તે દ્વારવેધ કહેવાય છે, તે સારો નથી પણ ઘરની ભૂમિથી બમણી ભૂમિ છોડીને ઉપર કહેલી વસ્તુ હોય તો દ્વારવેધ ન થાય (૯૩)

प्रथमान्त्ययामवर्जं, द्वित्रिप्रहरसंभवा ॥
छाया वृक्षध्वजादीनां, सदा दुःखप्रदायिनी ॥ ९४ ॥

અર્થ —પહેલો તથા છેલ્લો પહોર છોડી બીજા તથા ત્રીજા પહોરની વૃક્ષની અથવા ધ્વજાની છાયા ઘર ઉપર પડતી હોય તો તે સદાએ દુઃખ દેનાર જાણવી (૯૪)

वर्जयेदर्हतः पृष्ठं, दृष्टिं चण्डीशसूर्ययोः ॥
वामाङ्गं वासुदेवस्य, दक्षिणं ब्रह्मणः पुनः ॥ ९५ ॥

અર્થ —ઘરના દ્વાર આગળ અરિહંતની પૂઠ, ચંડીની, મહાદેવની તથા સૂર્યની દૃષ્ટિ, વાસુદેવનો ડાબો ભાગ, અને બ્રહ્માનો જમણો ભાગ વર્જવો (૯૫)

(अथ गृहश्रीवृद्धिक्रमः)

न दोषो यत्र वेधादि-र्नवं यत्राखिलं दलम् ॥
बहुद्वाराणि नो यत्र, यत्र धान्यस्य संचयः ॥९६॥
पूज्यन्ते देवता यत्र, यत्राभ्युत्थानमादरात् ॥
रक्ता यमनिका यत्र, यत्र संमार्जनादिकम् ॥९७॥
यत्र ज्येष्ठकनिष्ठादि-व्यवस्था सुप्रतिष्ठिता ॥
भानवीया विशन्त्यन्त-र्भानवो यत्र नैव च ॥९८॥
दीप्यते दीपको यत्र, पालनं यत्र रोगिणाम् ॥
श्रान्तसंवाहना यत्र, तत्र स्यात्कमला गृहे ॥९९॥
(चतुर्भिः कलापकम् ।)

અર્થઃ—જ્યાં વેધ આદિક દોષ નથી, જ્યાં ઘરનું આખું દળ નવું હોય, જ્યાં પેસવાં નીકળવાનાં બારણાં ઘણાં નથી, જ્યાં ધાન્યનો સંગ્રહ ઘણો છે. જ્યાં દેવતા પૂજાય છે. જ્યાં પરોણા આદિકનું આદરમાન ઘણું થાય છે, જ્યાં રાતા પડદા હોય છે, જ્યાં ચોખ્ખાઇ ઘણી હોય છે, જ્યાં ન્હાના મોટાની મર્યાદા બરાબર સચવાય છે, જ્યાં સૂર્યના કિરણ છાપરામાંથી અંદર પેસતા નથી, જ્યાં દીવો સારી પેઠે પ્રકાશ આપે છે, જ્યાં રોગી લોકોનું રક્ષણ થાય છે, અને જ્યાં થાકેલા માણસને આરામ મળે છે, તે ઘરમાં લક્ષ્મી વાસ કરે. (૯૬) (૯૭) (૯૮) (૯૯)

चन्दनादर्शहेमोक्ष-व्यजनासनवाजिनः ॥
शङ्खाज्यदधिताम्राणि, मतानि गृहवृद्धये ॥१००॥

અર્થ —ચંદન, દર્પણ, સુવર્ણ, બળદ, વ્યજન (ચામર પંખો ઇત્યાદિ), આસન, અશ્વ, શંખ ઘૃત, દહીં, તથા ત્રાંબાના પાત્ર એટલી વસ્તુ ઘરની વૃદ્ધિને અર્થે છે, (૧૦૦)

दृग्वात्सल्या दृशं वाच-मभ्युत्थानमथासनम् ॥
शक्त्या भोजनताम्बूल, शत्रावपि गृहागते ॥१०१॥

અર્થ —આપણે ઘેર આપણો વૈરી કદાચ આવે, તો પણ તેને શાંત દૃષ્ટિથી જોવો, મીઠી વાણીથી બોલાવવો, સામુ જવુ, તેને આસન આપવુ અને શક્તિ પ્રમાણે ભોજન તથા તાંબૂલ (પાનબીડુ) આપવા (૧૦૧)

मूर्खाधार्मिकपाखण्डी-पतितस्तेनरोगिणाम् ॥
क्रोधनान्त्यजदृप्तानां, गुरुतल्पगवैरिणाम् ॥१०२॥

स्वामिवञ्चकलुब्धाना-मृषिस्त्रीबालघातिनाम् ॥
इच्छन्नात्महितं धीमान्, प्रातिवेश्मिकता त्यजेत् ॥१०३॥

અર્થ —પોતાનુ કલ્યાણ ઇચ્છનાર પુરૂષે મૂર્ખ, અધર્મી, પાખંડી, મહાપાતકથી ભ્રષ્ટ થએલા, ચોર, રોગી, ક્રોધી, ચાંડાળ, અહંકારી, ગુરૂની સ્ત્રીની સાથે સંભોગ કરનાર, વૈરી પોતાના શેઠને ઠગનાર, લોભી અને ઋષિની, સ્ત્રીની તથા બાળકની હત્યા કરનાર એટલા લોકોની પડોશમાં ન રહેવુ. (૧૦૨) (૧૦૩)

दुःखं देवकुलासन्ने, गृहे हानिश्चतुष्पथे ॥
धूर्तामात्यगृहाभ्याशे, स्याता सुतधनक्षयौ ॥१०४॥

અર્થ —ઘર દેવમંદિરની પાસે હોય તો દુઃખ થાય,

ચોટામાં હોય તો હાનિ થાય, ધુતારાના તથા મંત્રીના સમીપ ભાગમાં હોય તો પુત્રનો અને ધનનો નાશ (બગાડ, નુકસાન) થાય. (૧૦૪)

खर्जूरी दाडिमी रम्भा, कर्कन्धूर्बीजपूरिका ॥
उत्पद्यन्ते गृहे यत्र, तन्निकृन्तति मूलतः ॥१०५॥

અર્થઃ—ખજૂરી, દાડમી, કેળ, બોરડી અને બિજોરી એટલાં વૃક્ષ જ્યાં ઉગે, તે ઘરનો સમૂળ નાશ થાય. (૧૦૫)

प्लक्षाद्रोगोदयं विद्या-दश्वत्थात्तु सदा भयम् ॥
नृपपीडां वटाद्गे त्र्व्याधिमुदुम्बरात् ॥ १०६ ॥

અર્થઃ—ઘરમાં પીંપરનું વૃક્ષ હોય તો રોગ થાય, પીંપળો હોય તો સદાકાળ ભય ઉત્પન્ન થાય, વડ હોય તો રાજાનો ઉપદ્રવ થાય, અને ઉંબર હોય તો નેત્રનો વ્યાધિ થાય. (૧૦૬)

लक्ष्मीनाशकरः क्षीरी, कण्टकी शत्रुभीप्रदः ॥
अपत्यघ्नः फली तस्मा-देषां काष्ठमपि त्यजेत् ॥१०७॥

અર્થઃ—ક્ષીરી (જેમાંથી દૂધ નીકળે એવા આંકડા વિગેરે) વૃક્ષ ઘરમાં હોય તો લક્ષ્મીનો નાશ થાય, કંટકી (કંટારૂ) વૃક્ષ હોય તો શત્રુનો ભય ઉપજાવે, ફૂલવાળું વૃક્ષ હોય તો સંતતિનો નાશ થાય, માટે એ વૃક્ષનું લાકડું પણ ન લેવું. (૧૦૭)

कश्चिदूचे पुरो भागे, वटः श्लाघ्य उदुम्बरः ॥
दक्षिणे पश्चिमे भागे-ऽश्वत्थः प्लक्षस्त गोत्तरे ॥१०८॥

અર્થઃ—કોઈએ કહ્યું છે કે, ઘરના આગળના દક્ષિણ ભાગમાં ઉંબર, પશ્ચિમ ભાગમાં પીંપળો અને ઉત્તર ભાગમાં પીપર સારો જાણવો. (૧૦૮)

(अथ शिष्यावबोधक्रमः ।)

गुरः सोमश्च सौम्यश्च, श्रेष्ठोऽनिष्टो कुजासितौ ॥

विद्यारम्भे बुधैः प्रोक्तौ, मध्यमौ भृगुभास्करौ ॥ १०९ ॥

અર્થ —(હવે શિષ્યને બોધ રી રીતે કરવો તે કહેછે) વિદ્યાનો આરંભ કરવો હોય તો ગુરૂ, સોમ અને બુધ એ ત્રણ વાર શ્રેષ્ઠ, શુક્ર અને રવિ મધ્યમ તથા મંગળ અને શનિ અનિષ્ટ (નઠારા) જાણવા (૧૦૯)

पूर्वात्रयं श्रुतिद्वन्द्व, विद्यार्दा मूलमश्विनी ॥

हस्तः शतभिषक् स्वाति-श्चित्रा च मृगपञ्चकम् ॥११०॥

અર્થ —વિદ્યાનો આરંભ કરવો હોય તો પૂર્વા ફાલ્ગુની, પૂર્વાષાઢા, પૂર્વા ભાદ્રપદા, શ્રવણ, ધનિષ્ઠા, મૂળ, અશ્વિની, હસ્ત, શતતારકા, સ્વાતિ, ચિત્રા, મૃગ, આર્દ્રા, પુનર્વસુ, પુષ્ય અને અશ્લેષા એટલા નક્ષત્ર શ્રેષ્ઠ જાણવ (૧૧૦)

अक्रुद्धः शास्त्रमर्मज्ञो-ऽनालस्यो व्यसनोज्झितः

दृसासिद्धस्तथा वाग्मी, कलाचार्यो मतः सताम् ॥१११॥

અર્થ —ક્રોધ વિનાનો, શાસ્ત્રના મર્મનો જાણ, આળસવી અને વ્યસનથી દૂર રહેલો, દસનક્રિયામાં જસ પામેલો, અને યુક્તિથી વચન બોલનારો એવો કળાચાર્ય સત્પુરૂષોને માન્ય છે (૧૧૧)

पितृभ्यामर्पणीयस्तु, कलाचार्यस्य बालकः ॥

व सरात्पञ्चमादूर्ध्व-मर्पणीयः कृतोत्सवम् ॥ ११२ ॥

અથ —માતાપીતાએ પોતાના બાળકને પાચમુ વર્ષ બેઠા પછી ઉત્સવ કરી એવા કળાચાર્યને હાથે સોંપવો (૧૧૨)

इष्टानामप्यपत्यानां, वरं भवतु मूर्खता ॥
नास्तिकाद्दुष्टचित्ताच्च, विद्या विद्यागुरोर्न तु ॥११३॥

અર્થ:—પોતાના વહાલા પુત્ર મૂર્ખ રહી જાય તે સારૂં. પણ તેમને નાસ્તિક અને દુષ્ટ ચિત્તવાળા ગુરૂ પાસે વિદ્યાગ્રહણ કરાવવું ઠીક નથી. (૧૧૩)

विद्ययापि तया किं नु, या नास्तिक्यादिदूषिता ॥
स्वर्णेनापि हि किं तेन, कर्णच्छेदो भवेद्यतः ॥११४॥

અર્થ:—નાસ્તિકપણું વિગેરે દોષોથી ભરેલી વિદ્યાનું શું પ્રયોજન ? જેથી કાન કપાઇ જાય, તે સુવર્ણ હોય તો પણ શા કામનું ? (૧૧૪)

आचार्यो मधुरैर्वाक्यैः, साभिप्रायविलोकनैः ॥
शिष्यं शिक्षेत निर्लज्जं, न कुर्याद्बन्धताडनैः ॥ ११५ ॥

અર્થ:—ગુરૂએ મીઠા વચનથી તેના મનના અભિપ્રાય સૂચવનારી દૃષ્ટિથી શિષ્યને શિક્ષણ દેવું. પણ નિરંતર બંધન તથા તાડન કરીને તેમને નિર્લજ્જ (શરમ વિનાના) ન કરવા. (૧૧૫)

मस्तके हृदये वापि, प्राज्ञश्छात्रं न ताडयेत् ॥
अधोभागे शरीरस्य, पुनः किं चन शिक्षयेत् ॥ ११६ ॥

અર્થ:—જાણ ગુરૂએ શિષ્યના મસ્તકમાં અથવા હૃદયમાં (છાતીમાં) મારવું નહીં. પણ અવસર પડે શરીરના નીચલા ભાગમાં થોડી શિક્ષા કરવી. (૧૧૬)

कृतज्ञाः शुचयः प्राज्ञाः, कल्पा द्रोहविवर्जिताः ॥
गुरुभिस्त्यक्तशाठ्याश्च, पाठ्याः शिष्या विवेकिभिः॥११७॥

અર્થ —કરેલા ઉપકારના જાણનારા, પવિત્ર, બુદ્ધિશાળી, અભ્યાસ કરવા સમર્થ, અને મત્સર તથા કપટ વિનાના: એવા શિષ્યોને વિવેકી ગુરૂએ ભણાવવા (૧૧૭)

मधुराहारिणा प्रायो, ब्रह्मव्रतविधायिना ॥
दयादानादिशीलेन, कौतुकालोकवर्जिना ॥११८॥
कपर्दमुखक्रीडा—विनोदपरिहारिणा ॥
विनीतेन च शिष्येण, पठता भाव्यमन्वहम् ॥११९॥युग्मम्॥

અર્થ —ગુરૂ પાસે ભણનાર શિષ્યે પ્રાયે મધુર આહાર કરવો, બ્રહ્મચર્ય પાળવુ, દયા કરવી, દાન આદિક આપવું, કૌતુક જોવા નહીં, કોડી, પાનાં આદિકથી રમવુ નહીં, મશ્કરી કરવી નહીં, અને નિરતર ગુરૂનો વિનય આચરવો (૧૧૮) (૧૧૯)

गुरुष्वविनयो धर्मे, विद्वेषः स्वगुणैर्मदः ॥
गुणिषु द्वेष इत्येताः, कालकूटच्छटाः स्मृताः ॥१२०॥

અર્થ —ગુરૂને વિષે અવિનય, ધર્મ ઉપર દ્વેષ, પોતાના ગુણનો અહકાર અને ગુણી જનનો દ્વેષ એટલા વાના કાળકૂટ વિષના છાંટા સરખા સમજવાં (૧૨૦)

कलाचार्यस्य चाजस्रं, पाठको हितमाचरेत् ॥
निःशेषमपि चात्मीयं, तस्य तस्य निवेदयेत् ॥ १२१ ॥

અર્થ —શિષ્યે પોતાના કળાચાર્યનું નિરતર હિત ચિતવવુ તથા પોતાને જે જે વસ્તુ મળે તે સર્વ તેને (કળાચાર્યને) આપવી (૧૨૧)

गुरोः सनगरग्रामां, ददाति यदि मेदिनीम् ॥
तथापि न भवत्येव, कदाचिदनृणः पुमान् ॥१२२॥

અર્થઃ—શિષ્ય કદાચ પોતાના ગુરૂને જો ગ્રામ નગર સહિત પૃથ્વી આપે, તોપણ તે ગુરૂના ઋણમાંથી મુક્ત થાય નહીં (૧૨૨)

उपाध्यायमुपासीत, तदनुद्धतवेषभृत् ॥
विना पूज्यपदं पूज्य—नाम नैव सुधीर्वदेत् ॥ १२३ ॥

અર્થઃ—માટે બુદ્ધિશાળી શિષ્યે ઉન્નત (બહુ દીપતો) વેષ (પોશાક) ન પહેરતાં ઉપાધ્યાયની સેવા કરવી. પોતાના પૂજ્ય ગુરૂનું "પૂજ્ય" એવું પદ મૂકીને મૂળનામ ન બોલવું. અર્થાત્ "પુજ્ય" એવા નામથી ગુરૂને બોલાવવા. (૧૨૩)

(उक्तं च) "आत्मनश्च गुरोश्चैव, भार्यायाः कृपणस्य च ॥
क्षीयते वित्तमायुश्च, मूलनामानुकीर्तनात् ॥१२४॥"

અર્થઃ—કહ્યું છે કે,—'પુરૂષે પોતાનું, પોતાના ગુરૂનું, પોતાની સ્ત્રીનું તથા કૃપણનું મૂળ નામ ન લેવું. કારણ કે, તેથી ધનનો અને આયુષ્યનો ક્ષય થાય છે." (૧૨૪)

चतुर्दशीकुहूराका—ष्टमीषु न पठेन्नरः ॥
मृतकेऽपि तथा राहु—ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ॥ १२५ ॥

અર્થ—ચતુર્દશીએ, અમાવાસ્યાએ, પૂર્ણિમાએ, અષ્ટમીએ, મરણ સૂતકમાં તથા ચંદ્રસૂર્યનાં ગ્રહણને વખતે ભણવું નહીં (૧૨૫)

तथोल्कापातनिर्घात—भूमि कम्पेषु गर्जिते ॥
पञ्चत्वं च प्रयातानां, बन्धूनां प्रेतकर्मणि ॥१२६॥

अकालविद्युति भ्रष्ट–मलिनामेध्यसन्निधौ ॥
श्मशाने शवगन्धे वा, नाधीतात्मनि चाशुचौ ॥१२७॥

અર્થ —તેમજ ઉલ્કા (અગ્નિની જ્વાળા સરખો ચળક નારો તારો) આકાશમાથી પડે છતે, તોફાની પવન વાતે છતે, ભૂમિકપ (ધરતી કપ) થએ છતે, મેઘની ગર્જના થએ છતે, મરી ગએલા પોતાના સગા સબધીના પ્રેતકર્મ ચાલતા હોય ત્યારે, અકાળે (આર્દ્રા નક્ષત્રથી પહેલા અને હસ્ત નક્ષત્ર ઉતર્યા પછી) વીજળી થાય તો, આચારથી ભ્રષ્ટ થએલા મલિન અને અપવિત્ર એવા લોકો પાસે, શ્મશાનમા શબની દુર્ગંધ આવતી હોય એવા સ્થાનકે અને પોતાનુ શરીર અપવિત્ર હોય ત્યારે ન ભણવુ (૧૨૬) (૧૨૭)

नात्युच्चैर्नातिनीचैश्च, नानेकाग्रमनास्तथा ॥
न विच्छिन्नपद चैव, नास्पष्ट पाठकः पठेत् ॥१२८॥

અર્થ —વિદ્યાર્થિએ બહુજ ઘાટો પાડીને, બહુજ ધીમે, મન બીજે રાખીને, પદ વચ્ચે તટી જાય, અને સ્પષ્ટ ઉચ્ચાર ન થાય તેવી રીતે ન ભણવુ (૧૨૮)

शास्त्रानुरक्तिरारोग्य, विनयोद्यमबुद्धयः ॥
आन्तराः पञ्च विज्ञेया, धन्याना पाठहेतवः ॥१२९॥

અર્થ—૧ શાસ્ત્ર ઉપર અનુરાગ (પ્રીતિ,) ૨ શરીરે વ્યાધિનો અભાવ, ૩ વિનય, ૪ ઉદ્યમ, અને બુદ્ધિ એ પાચ ભણવાના અતરગ કારણ જાણવા તે જેમને મળે તે વિદ્યાર્થિઓને ધન્ય છે (૧૨૯)

सहाया भोजनं वास, आचार्यः पुस्तकं तथा ॥
अमी बाह्या अपि ज्ञेयाः, पञ्च पाण्डित्यहेतवः ॥१३०॥

અર્થઃ—સાથે ભણનારા, ભોજન, વસ્ત્ર, ગુરૂ તથા પુસ્તક એ પાંચ ભણવાનાં બાહ્ય કારણ જાણવાં. (૧૩૦)

संस्कृते प्राकृते चैव, शौरसेने च मागधे ॥
पैशाचकेऽपभ्रंशे च, लक्ष्यं लक्षणमादरात् ॥१३१॥

અર્થઃ—૧ સંસ્કૃત, ૨ પ્રાકૃત, ૩ શૌરસેની, ૪ માગધી, ૫ પૈશાચી અને ૬ અપભ્રંશ એ ૭ ભાષાઓનાં લક્ષણ જાણવાં. (૧૩૧)

कवित्वहेतुः साहित्यं, तर्को वक्तृत्वकारणम् ॥
बुद्धिवृद्धिकरी नीति-स्तस्मादभ्यस्यते बुधैः ॥१३२॥

અર્થઃ—વિદ્યાર્થિ સાહિત્ય શાસ્ત્રના અભ્યાસથી કવિતાની રચના કરી શકે, તર્કશાસ્ત્રના અભ્યાસથી વક્તા થાય, નીતિ શાસ્ત્રના અભ્યાસથી બુદ્ધિ ખીલે, માટે ડાહ્યા પુરૂષો એ શાસ્ત્રોનો સારો અભ્યાસ કરે છે. (૧૩૨)

पाटीगोलकचक्राणां, तथैव ग्रहवीजयोः ॥
गणितं सर्वशास्त्रौघ-व्यापकं पठ्यतां सदा ॥१३३॥

અર્થઃ—પાટી ગણિત, ગોલ ગણિત, ચક્ર ગણિત, ગ્રહ ગણિત અને બીજ ગણિત એ પાંચ પ્રકારનું સર્વ શાસ્ત્રોમાં વ્યાપી રહેલું ગણિત નિરંતર ભણવું. (૧૩૩)

धर्मशास्त्रश्रुतौ शश्व-दालसं यस्य मानसम् ॥
परमार्थं स एवेह, सम्यग्जानाति नापरः ॥१३४॥

અર્થ —જે પુરૂષનુ મન નિરંતર ધર્મશાસ્ત્ર સાભળવાની ઘણી ઇચ્છા ધારણ કરતું હોય, તે પુરૂષજ પરમાર્થ સારી પેઠે જાણી શકે છે બીજો કોઇ જાણી શકતો નથી (૧૩૪)

ज्योतिःशास्त्रं समीक्ष्य च त्रिस्कन्धं विहितादरः ॥
गणित संहिता होरे–त्येत्स्कन्दत्रय विदुः ॥१३५॥

અર્થ —ગણિત, સંહિતા અને હોરા એ ત્રણ સ્કંદ જેના કહેવાય છે, એવું જ્યોતિશાસ્ત્ર પણ આદરથી જાણવું (૧૩૫)

प्रकृति भैषज व्याधिं, सात्म्य देह बलं वयः ॥
काल देश तथा वह्नि, विभव प्रतिचारकम् ॥१३६॥
विजानन् सर्वदा सम्यक्, फलदं लोकयोर्द्वयोः ॥
अभ्यसेद्वैद्यक धीमान्, यशोधर्मार्थसिद्धये ॥१३७॥

અર્થ —રોગની પ્રકૃતિ, ઓસડ, વ્યાધિ, સાત્મ્ય (રોગીને સદવારૂપ વસ્તુની અદર રહેલો એક ગુણ), શરીર બળ, વય, કાળ, દેશ, જઠરાગ્નિ, વૈભવ અને પ્રતિચારક (રોગની માવજત કરનાર), એટલી વસ્તુ બરાબર જાણીને બુદ્ધિશાળી પુરૂષે આ લોકમા તથા પરલોકમા સારૂ ફળ આપનારા વૈદ્યક શાસ્ત્રનો યશ, ધર્મ અને ધન એ ત્રણેના લાભને અર્થે નિરંતર અભ્યાસ કરવો (૧૩૬) (૧૩૭)

कायबाल्यग्रहोर्द्धाङ्ग–शल्यदंष्ट्राजराविषैः ॥
एतैरष्टभिरङ्गैश्च, वैद्यक त्यातमष्टधा ॥१३८॥

અથ —૧ કાયચિકિત્સા, ૨ બાલચિકિત્સા, ૩ ભૂતચિકિત્સા, ૪ ઉર્ધ્વાંગચિકિત્સા, ૫ શલ્યચિકિત્સા, ૬ વિષચિકિ-

૬સા, ૭ રસાયન અને ૮ વાજીકરણ વૈદ્યકશાસ્ત્રના એ આઠ અંગ (ભેદ) પ્રસિદ્ધ છે. (૧૩૮)

जठरस्यानलः कायो, बालो बालचिकित्सितम् ॥
शल्यं भूतादिविन्यास, ऊर्ध्वाङ्गमूर्द्धशोधनम् ॥१३९॥
शल्यं लोहादि दंष्ट्राहे-र्जरापि च रसायनम् ॥
वृषः पोषः शरीरस्य, व्याख्याष्टाङ्गस्य लेशतः ॥१४०॥

અર્થઃ—કાય એટલે જઠરાગ્નિ તેના વિકારથી નિપજતા રોગોને મટાડવા તે કાયચિકિત્સા, બાળકને થતા રોગોને મટાડવા તે બાલચિકિત્સા, ભૂત, પિશાચ વિગેરેનો ઉપદ્રવ મટાડવો તે ભૂતચિકિત્સા, હડપચીથી ઉપર આવેલા મુખ, નાસિકા, કર્ણ, નેત્ર, મસ્તક વિગેરેના રોગોના ઉપાય કરવા તે ઊર્ધ્વાંગ ચિકિત્સા, શલ્ય એટલે બાણની અણી વિગેરે શરીરમાં પેઠું હોય તેને બહાર કાઢવાના ઉપાય કરવા તે શલ્યચિકિત્સા, સર્પાદિકના વિષના (ઝેરના) ઉપચાર કરવા તે વિષચિકિત્સા, વૃદ્ધાવસ્થાને અટકાવવાનો તથા યુવાવસ્થા વધારે ટકી રાખવાનો જે ઉપાય તે રસાયન અને જેથી સ્ત્રી સંભોગ યથેચ્છ કરાય એવી શક્તિ શરીરમાં લાવવાના જે ઉપાય તે વાજીકરણ કહેવાય છે આ રીતે ઉપર કહેલા આઠે અંગની સંક્ષેપમાં વ્યાખ્યા કહી. (૧૩૯) (૧૪૦)

चित्राक्षरकलाभ्यासो, लक्षणं च गजाश्वयोः ॥
गवादीनां च विज्ञेयां, विद्वद्गोष्ठीं विविक्षुणा ॥१४१॥

અર્થઃ—વિદ્વાન્ લોકોની સભામાં પ્રવેશ કરવાની ઈચ્છા કરનારે ચિત્રકળા (ચિત્રામણની કળા) અને લેખનકળા (લ-

ખવાની કળા) એમનો અવશ્ય અભ્યાસ કરવો તથા અશ્વના (ઘોડાના), ગજના (હાથીના), તથા ગાય, બળદ વિગેરેના લક્ષણ પણ જાણવા (૧૪૧)

सामुद्रिकस्य रत्नस्य, स्वप्नस्य शकुनस्य च ॥
मेघमालोपदेशस्य, सर्वाङ्गस्फुरणस्य च ॥१४२॥
तथैव चाङ्गविद्यायाः, शास्त्राणि निखिलान्यपि ॥
ज्ञातव्यानि बुधैः सम्यग्, वाञ्छद्भिः कीर्तिमात्मनः॥१४३॥

અર્થ—પોતાના યશની વાંછા કરનાર જાણ પુરૂષોએ ૧ સામુદ્રિક શાસ્ત્ર, ૨ રત્નપરીક્ષાશાસ્ત્ર, ૩ સ્વપ્નશાસ્ત્ર ૪ શકુનશાસ્ત્ર, ૫ વૃષ્ટિશાસ્ત્ર, ૬ અંગસ્ફુરણશાસ્ત્ર અને ૭ ગારીગરશાસ્ત્ર એમનું પૂર્ણ જ્ઞાન અવશ્ય મેળવવું (૧૪૨) (૧૪૩)

शास्त्रं वात्स्यायनं ज्ञेयं, न प्रकाश्यं यतस्ततः ॥
ज्ञेयं भरतशास्त्रं च, नाचर्यं धीमता पुनः ॥१४४॥

અર્થ—બુદ્ધિશાળી પુરૂષે કામશાસ્ત્રનું જ્ઞાન મેળવવું, પણ જ્યાં ત્યાં તેનો ફેલાવ ન કરવો તેમજ નાટકશાસ્ત્ર (નાટક વિગેરેનું શાસ્ત્ર) અવશ્ય જાણવું, પણ પોતે નાટકનો ધંધો ન કરવો (૧૪૪)

गुरोरतिशयं ज्ञात्वा, पिण्डशुद्धिं तथात्मनः ॥
क्रूरमन्त्रान्परित्यज्य, ग्राह्यो मन्त्रक्रमो हितः ॥१४५॥

અર્થ—વિવેકી પુરૂષે ગુરૂનો અતિશય કેવો છે, અને પોતાના શરીરની શુદ્ધિ કેવી છે, એ બે વાતનો વિચાર કરીને હિતકારી મંત્ર ગુરૂ પાસેથી ગ્રહણ કરવા પણ જારણ, મારણ કરનારા ક્રૂર મંત્રોનું તો નામ પણ ન લેવું (૧૪૫)

(अथ विषविचारः)

सत्यामपि विषाज्ञायां, न भक्ष्यंस्थावरं विषम् ॥
पाणिभ्यां पन्नगार्दीश्च, स्पृशेनैव जिजीविषुः ॥१४६॥

અર્થઃ—જીવવાની ઇચ્છા કરનાર પુરૂષોએ વિષની આજ્ઞા છતાં પણ સ્થાવરવિષ[1] ભક્ષણ ન કરવું. તથા જંગમ વિષને ધારણ કરનાર સર્પ વિગેરે જાનવરોને પણ હાથે સ્પર્શ ન કરવો. (૧૪૬)

जाङ्गल्याः कुरुकुल्लाया–स्तोत्तलाया गरुत्मतः ॥
विषार्त्तस्य जनस्यास्य, कः परित्रायकः परः ॥१४७॥

અર્થઃ—ઝેરથી પીડાતા મનુષ્યને જાંગુલી, કુરૂકુલ્લા, તોતલા અને ગરૂડ એ ચાર વિના કોણ બીજો રક્ષણ કરનાર છે ? (૧૪૭)

आदिष्टाः कोपिता मत्ताः, क्षुधिताः पुर्ववैरिणः ॥
दन्दशूका दशन्त्यन्यान्, प्राणिनस्त्राणवर्जितान् ॥१४८॥

અર્થઃ—સર્પો કોઈના આદેશથી, કોપથી, મદોન્મત્ત થવાથી, ભૂખથી તથાં પૂર્વ ભવના વૈરથી, બરોબર પોતાની જતના ન કરનાર બીજા પ્રાણિયોને કરડે છે. (૧૪૮)

ते देवा देवतास्ताश्च, मन्त्रास्ते मन्त्रपाठकाः ॥
अगदा अपि धन्या, यैस्त्राणं प्राणिनां विषात् ॥१४९॥

અર્થઃ—તે દેવ, તે દેવતાઓ, તે મંત્રો, તે માંત્રિકો તથા તે ઔષધો પણ ઉત્તમ જાણવાં, કે જેઓ જીવોને ઝેરથી બચાવી શકે છે. (૧૪૯)

૧:—બચનાગ, ઝેરકુચલો, સોમલ વિગેરે વસ્તુમાં સ્થાવર વિષ અને સર્પ, વીંછી વિગેરે પ્રાણીમાં રહેલું જંગમ વિષ કહેવાય છે.

विषार्तस्याङ्गिनः पूर्वं, विमृश्यं काललक्षणम् ॥
अपरं तज्जीवितव्य-चिह्न तदनु मन्त्रिणः ॥ १५० ॥

અર્થ —ઝેરથી પીડાયલા માણસનુ કાલલક્ષણ (જે વખતે ઝેર ચઢયુ તે વખત કેવો હતો તે) પ્રથમ જોવુ, પછી જીવવાના લક્ષણ જોવા, અને તે પછી માન્ત્રિક લોકોને બોલાવવા (૧૫૦)

वारस्तिथिर्भादिग्दशा, दूतो मर्माणि दष्टकः ॥
स्थानं हंसप्रचाराद्याः, कला: कालनिवेदकाः ॥१५१॥

અર્થ —વાર, તિથિ, રાશિ, નક્ષત્ર, દિશા, દશા (દશ), દૂત (વૈદ્યને અથવા માન્ત્રિકને તેડવા જનાર માણસ), મર્મના સ્થાન, ઝેરથી પીડાતો માણસ અને હંસપ્રચાર પ્રમુખ કલાઓ એટલા વાના કાલના લક્ષણ કહેનારા છે (૧૫૧)

(अथ वारविचारः।)

भौमभास्करमन्दाना, दिने सन्ध्याद्वयेऽपि च ॥
संक्रान्तिकाले दष्टश्च, संक्रीडति सुरस्त्रिया ॥१५२॥

અર્થ —(હવે વારનો વિચાર કહે છે) મંગળવારે, રવિવારે અને શનિવારે પ્રભાતકાળે, સાંઝે અથવા સૂર્યની સંક્રાતિને અવસરે જેને સર્પદંશ થાય તે મરણ પામી દેવાંગનાઓની સાથે ક્રીડા કરે છે (૧૫૨)

(अथ तिथिविचारः।)

पञ्चमीषष्ठिकाष्टम्यो, नवमी च चतुर्दशी ॥
अमावास्याप्यवश्यं स्या-द्दष्टाना मृतिहेतवे ॥१५३॥

અર્થ —(હવે તિથિનો વિચાર કહે છે) પાંચમ, છઠ,

આઠમ, નવમ, અને ચૌદશ અને અમાસ એમાં કોઈ પણ તિથિએ સર્પદંશ થાય તો તે માણસ અવશ્ય મરણ પામે. (૧૫૩)

(अथ राशिविचारः ।)

मीनचापद्वये कुम्भ–वृषयोः कर्कटाजयोः ॥
कन्यामिथुनयोः सिंहा–लिनोर्मृगतुलाख्ययोः ॥१५४॥
एकान्तरा द्वितीयाद्या, दग्धाः स्युस्तिथयः क्रमात् ॥
एतद्योगयुते चन्द्रे, दष्टानां जीवसंशयः ॥१५५॥

અર્થઃ—(હવે રાશિનો વિચાર કહે છે. મીન અથવા ધન રાશિમાં ચંદ્ર હોય તો દ્વિતીયા (બીજ), કુંભ અથવા વૃષભ રાશિમાં હોય તો ચતુર્થી (ચોથ), કર્ક અથવા મેષ રાશિમાં હોય તો ષષ્ઠી (છઠ), કન્યા અથવા મિથુન રાશિમાં હોય તો અષ્ટમી (આઠમ), સિંહ અથવા વૃશ્ચિક રાશિમાં હોય તો દશમી (દસમ) અને મકર અથવા તુલા રાશિમાં હોય તો દ્વાદશી (બારસ) દગ્ધ થાય છે. આ રીતે ચંદ્રમાના યોગથી દગ્ધ થએલી તિથિને દિવસે જેને સર્પદંશ થાય, તે જીવશે કે નહી તે વાતનો શક છે. (૧૫૪) (૧૫૫)

(अथ नक्षत्रविचारः ।)

मूलाश्लेषा मघा पूर्वा–त्रयं भरणिकाश्विनी ॥
कृत्तिकार्द्रा विशाखा च, रोहिणी दष्टमृत्युदा ॥१५६॥

અર્થઃ—(હવે નક્ષત્રનો વિચાર કહે છે) મૂળ, અશ્લેષા, મઘા, પૂર્વાફાલ્ગુની, પૂર્વાષાઢા, પૂર્વાભાદ્રપદા, ભરણી, અશ્વિની, કૃત્તિકા, આર્દ્રા, વિશાખા અને રોહિણી એમાં કોઇપણ નક્ષત્રને વિષે જેને સર્પદંશ થાય તેનું મરણ નીપજે. (૧૫૬)

(अथ दिग्विचारः ।)

नैऋत्याग्नेयका याम्या, दिगाभिस्त्रो विहाय च ॥
अन्यादिग्भ्य' समायातै-र्दष्टो जीवत्यसंशयम् ॥१५७॥

અર્થ —(હવે દિશાનો વિચાર કહે છે) નૈઋત્ય, આગ્નેય અને દક્ષિણ એ ત્રણ દિશા મૂકીને બીજી કોઈ પણ દિશાથી આવેલા સર્પાદિક જેને દંશ કરે, તે માણસ જીવે એમાં સંશય નથી. (૧૫૭)

(अथ दंशविचारः ।)

सपयःशोणिता दंशा-श्चत्वारो युगपद्यदि ॥
एको वा शोफवान् सूक्ष्मो, दंश आवर्तसंनिभः॥१५८॥
दंशः काकपदाकारो, रक्तवाही सगर्तकः॥
त्रिरेखः श्यामल'शुष्क', प्राणसंहारकारकः ॥ १५९ ॥

અર્થ —(હવે ડંખનો વિચાર કહે છે) જેમાંથી પાણી અને લોહી જુદુ જુદુ ઝરે છે એવા ચાર દંશ (ડંખ) સાથે થયા હોય, એકજ દંશ જો સોજાવાળો, જળના ભમરા સરખો અને ઝીણો, કાગડાના પગના સરખા આકારનો, લોહીને ઝરતો અને ખાડાવાળો હોય, અથવા ત્રણ રેખાવાળો, કાળો અને સુકાયલો હોય, તો તે અવશ્ય પ્રાણ નાશ કરે (૧૫૮) (૧૫૯)

सज्वर कीटिकासृष्ट, इव येशी च दाहकृत् ॥
कण्डूमान् सविषो ज्ञेयो, दंशोऽन्यो निर्विष• पुन• ॥१६०॥

અર્થ —કીડીએ ચટકો માર્યા સરખો, વિંધ્યા જેવો, બળતરા તથા ખરજને ઉપજાવનારો દંશ (ડંખ) ઝેરવાળો અને એવા લક્ષણ ન હોય તો ઝેર વિનાનો જાણવો (૧૬૦)

(अथ दूतविचारः।)

तैलाक्तो मुक्तकेशश्च, सशस्त्रः प्रस्खलद्वचाः ॥
ऊर्ध्वीकृतकरद्वन्द्वो, रोगग्रस्तो विहस्तकः ॥१६१॥
रासभं महिषं मत्त-करभं चाधिरूढवान् ॥
अपद्वारसमायातः, कांदिशीकश्चलेक्षणः ॥१६२॥
एकवस्त्रो विवस्त्रश्च, वृतास्यो जीर्णचीवरः ॥
वाहिनीविकृतः क्रुद्धो, दूतो नूतनजन्मने ॥१६३॥

અર્થઃ—(હવે દૂતનો વિચાર કહે છે.) માથે તેલ ચોપડી, વાળ છૂટા સાખી, ઉઘાડે માથે અને હાથમાં શસ્ત્ર લઈ આવેલો, લથડતાં વચન બોલતો, બે હાથ ઉંચા કરી આવેલો, રોગી, આકુળ વ્યાકુળ થએલો, ગધેડું, પાડું અથવા ઉંટ ઉપર બેસીને આવેલો, ડરેલો, ચંચળ આંખવાળો, પહેરેલા વસ્ત્ર વિના બીજું વસ્ત્ર ન રાખનારો, વસ્ત્ર વિનાનો, મોઢું ઢાંકીને આવેલો, જીર્ણ વસ્ત્ર પહેરનારો, નદી ઉતરવાથી પલળેલો અથવા રીસાએલો એવો દૂત વૈદ્યને અથવા માંત્રિકને તેડવા આવે તો રોગી (ઝેરથી પીડાયલો માણસ) મરણ પામે. (૧૬૧) (૧૬૨) (૧૬૩)

स्थिरो मधुरवाक् पुष्पा-क्षतपाणिर्दिशि स्थितः ॥
एकजातिव्रतो दूतो, धूतोरगविषव्यथः ॥१६४॥

અર્થઃ—સ્થિર, મધુર વચન બોલનારો, હાથમાં ફુલ તથા અક્ષત (આખા ચોખા) લઇને આવેલો, કોણ દિશા મૂકી પૂર્વ આદિક ચાર દિશાઓમાંની એક દિશામાં ઉભો રહેલો, રોગીની જાતનો તથા ધર્મનો એવો દૂત વૈદ્યને અથવા

માન્ત્રિકને તેડવા આવે તો ઝેરથી પીડાતા માણસનુ ઝેર ઉતરી જાય (૧૬૪)

विषमः शस्यते दूतः, स्त्रीणा तु स्त्री नरो नृणाम् ॥
एव सर्वेषु कार्येषु वर्जनीयो विपर्ययः ॥१६५॥

અર્થ—દૂત વિષમ સખ્યામા એટલે એક, ત્રણ, પાચ ઈત્યાદિ પરિમાણમા તથા સ્ત્રી તરફથી સ્ત્રી દૂત અને પુરૂષ દૂત આવે તો શ્રેષ્ઠ જાણવો સર્વ કાર્યોમા એથી ઉલટો પ્રકાર વર્જવો (૨૬૫)

दष्टस्य नाम प्रथम, गृह्णस्तदनु मन्त्रिणः ॥
वक्ति दूतो यमाहूतो; दष्टोऽयं मुच्यतामिति ॥१६६॥

અર્થ—દૂત ઝેરથી પીડાતા માણસનુ નામ પ્રથમ લઇ પાછળથી જો માન્ત્રિકનુ નામ લે, તો માન્ત્રિકે જાણવુ કે, આ દૂત "ઝેરથી પીડાતા માણસને યમનુ આમ ત્રણ (તેડુ) આવ્યુ છે માટે એને તમે મૂકો" એમજ મને કહે છે. અર્થાત્ ઝેરથી પીડાતો માણસ જીવે નહીં એમ માન્ત્રિકે સમજવુ (૧૬૬)

दूतस्य यदि पादः स्या–दाक्षिणात्यस्थितस्तदा ॥
पुमान्दष्टोऽथ वामे तु, स्त्री दष्टेत्यपि निश्चयः ॥१६७॥

અર્થ—માન્ત્રિકને ઘેર પેસતા દૂતનો જો જમણો પગ આગળ હોય તો ઝેરથી પીડાતો પુરૂષ છે, અને ડાબો પગ આગળ હોય તો ઝેરથી પીડાતી સ્ત્રી છે એવો નિશ્ચય જાણવો (૧૬૭)

ज्ञानिनोऽग्र स्थितो दूतो, यदङ्गंकिमपि स्पृशेत् ॥
तस्मिन्नङ्गेऽस्ति दंशोऽपि, ज्ञानिना ज्ञेयमित्यपि ॥१६८॥

અર્થઃ—માંત્રિકની આગળ ઉભો રહેલો દૂત પોતાના શરીરના જે ભાગને સ્પર્શ કરે, તે ભાગને વિષે સર્પાદિકનો દંશ થયો છે, એમ માંત્રિકે જાણવું. (૧૬૮)

अग्रतःस्थे यदा दूते, वामा वहति नासिका ॥
सुखाशिका तदादेया, दष्टस्यागदकारिणी ॥१६९॥

અર્થઃ—આગળ દૂત ઉભો હોય ત્યારે જો ડાબી નાસિકા વહેતી રહે, તો ' ઝેરથી પીડાતા માણસની વ્યથા મટશે " એવી વચન રૂપ સુખડી દૂતને આપવી. (૧૬૯)

वामायामेव नासायां, यदि वायुप्रवेशने ॥
दूतः समागतः शस्य--स्तदा नेवान्यथा पुनः ॥ १७० ॥

અર્થઃ—ડાબી નાસિકામાં સ્વર વહેતો હોય, ત્યારેજ આવેલો દૂત શ્રેષ્ઠ જાણવો, અન્યથા નહીં. (૧૭૦)

दूतोक्तवर्णसंख्याङ्को, द्विगुणो भज्यते त्रिभिः ॥
यद्येकः शेषतां याति, तच्छुभं नान्यथा पुनः ॥१७१॥

અર્થઃ—દૂતના મુખમાંથી નીકળેલા અક્ષર બમણા કરી આવેલી સંખ્યાને ત્રણે ભાગવું; બાકી એક રહે તો શુભ જાણવું. નહીં તો નહીં. (૧૭૧)

दूते दिगाश्रिते जीव--त्याहिदष्टो विदिक्षु न ॥
प्रश्नोऽप्यन्तर्वहे वायौ, सति दूतेन चेत्कृतः ॥१७२॥

અર્થઃ—દૂત જો દિશામાં ઉભો હોય તો ડંખેલો માણસ જીવે, તેમજ નાસિકા દ્વારે અંદર શ્વાસ લેતાં પ્રશ્ન કરે, અને વિદિશામાં ઉભો હોય તો ન જીવે. (૧૭૨)

प्रश्नं कृत्वा मुखं दूतो, धत्ते स्व मीलितं यदि ॥
तदा दष्टादरो युक्तो, विपर्यासे मृतस्तु सः ॥१७४॥

અર્થ—દૂત પ્રશ્ન કરી રહ્યા પછી જો પોતાનુ મુખ બંધ રાખે તો ડખેલા માણસનો આદર કરવો યોગ્ય છે અને ઉઘાડુ રાખે તો તે મરણ પામે, એમ સમજવુ (૧૭૩)

दूतस्य वदनं रात्रौ, यदि सम्यग्न दृश्यते ॥
तदा स्वस्य मुखे ज्ञेय, मन्त्रिणा मीलनादिकम् ॥१७५॥

અર્થ—રાત્રિનો સમય હોવાથી જો દૂતનુ મુખ બરાબર ન દેખાય, તો માન્ત્રિક પુરૂષે મુખનુ બંધ થવા પ્રમુખ ચિન્હ પોતાના મુખને વિષે જાણવુ (૧૭૪)

(अथ मर्मविचारः ।)

कण्ठे वक्षःस्थले लिङ्गे, मस्तके चिबुके गुदे ॥
नासापुटे भ्रुवोर्मध्ये, नाभावोष्ठे स्तनद्वये ॥१७५॥
पाणिपादतले शङ्खे, स्कन्धे कर्णेऽलिके दृशोः ॥
केशा[illegible]क्षयोर्दृष्टौ, दष्टोऽन्तकपुरीजनः ॥१७६॥

અથ—(હવે દશના (ડખના) સ્થાનકનો વિચાર કહે છે) ૧ કંઠ, ૨ છાતી, ૩ લિંગ, ૪ મસ્તક, ૫ દાઢી, ૬ ગુદા, ૭ નાક, ૮ બે ભમરાનો મધ્યભાગ ૯ નાભિ, ૧૦ હોઠ, ૧૧ બે સ્તન, ૧૨ હાથના તથા પગના તળિયા, ૧૩ આંખનો કાન પાસેનો ભાગ, ૧૪ ખભો, ૧૫ કાન, ૧૬ કપાળ, ૧૭ બન્ને આંખો, ૧૮ કેશાન્ત (કપાળનો મથાળા

વાળ પાસેનો ભાગ) અને ૧૯ કાખ એટલા સ્થાનકે જે માણસને દંશ (ડંખ) થાય તો તે મરણ પામે. (૧૭૫) (૧૭૬)

(अथ दष्टविचारः।)

त्रुट्यन्ति मूर्धजा यस्य, दृग्मध्ये धवलो लवः ॥
कण्ठग्रहो वपुः शीतं, हिक्का क्षामकपोलता ॥ १७७ ॥
अग्निर्मोहोऽङ्गदाहश्च, शशिरव्योरवीक्षणम् ॥
गात्राणां कम्पनं भङ्गो, दृशो रक्ते सनिद्रता ॥ १७८॥
लाला विरूक्षता पाण्डु-स्वरं वाक्सानुनासिका ॥
विपरीतार्थवीक्षा च, जृम्भा छर्दिः स्वरान्यता ॥१७९॥
छेदे स्रावो न रक्तस्य, न रेखा यदि ताडने ॥
नाधस्तात्स्तनयोः स्पन्द-दर्शनं गलकेऽपि च ॥१८०॥
दशनाकारधारित्वं, सुव्यक्तं कर्णपृष्ठतः ॥
निश्वासस्य च शीतत्वं, कंधराप्यतिभङ्गुरा ॥ १८१ ॥
शोणिते पयसि क्षिप्ते, विस्तरस्तैलविन्दुवत् ॥
ओष्ठसंपुटयोर्मुद्रा, भेदो मेलितयोरपि ॥ १८२ ॥
जिह्वाविलोकनं नैव, न नासाग्रनिरीक्षणम् ॥
आत्मीयो विषयः कश्चि-दिन्द्रियाणां न गोचरः ॥१८३॥
मुखे श्वासो न नासायां, विकाशो नेत्रवक्त्रयोः ॥
चन्द्रे सूर्यभ्रमः सूर्ये, चन्द्रोऽयमिति च भ्रमः ॥१८४॥
कक्षायां रसनायां च, श्रवणाद्वितयेऽपि च ॥
ध्वाङ्क्षपादोपमं नीलं, यदि चोत्पद्यते स्फुटम् ॥१८५॥

दर्पणे सलिले वापि, स्वमुखस्यानिरीक्षणम् ॥
न दृशोः पुत्तिका स्पष्टा, पुरस्त्रींखलोक्यते ॥ १८६ ॥
शोफः कुक्षौ नखाना च, मालिन्य सहसा तथा ॥
स्वेदः शूल गले भक्ष्य–प्रवेशो न मनागपि ॥ १८७॥
उत्कम्पः पुलको दन्त–घर्षश्चाधरपीडनम् ॥
सीत्कारस्तापजडते, कूजन च मुहुर्मुहुः ॥१८८॥
नेत्रयोः शुक्लयोरह्नि, रक्तयोः सायमेव च ॥
नीलयोर्निशि मृत्युः स्या–त्तस्य दष्टस्य निश्चितम् ॥१८०॥

અર્થ —(હવે ઝેરથી પીડાતા માણસના લક્ષણ કહે છે) ઝેરથી પીડાતા જે માણસના વાળ ત્રુટે, આખમા મ્હેદ બિંદુ દેખાય, ગળુ રૂધાય, શરીર ઠડુ પડે, હીક (હેડકી) આવે, ગાલ કરમાય, ફેર આવે, બેભાન થાય, શરીર સૂકાય, ચદ્ર અને સૂર્ય છતા ન દેખાય, શરીર ધ્રુજે અને ત્રુટે. આખો રાતી થાય નિદ્રા આવે, લાળ ઝરે, નાસિકા સૂકાય, શરીર ફીકુ પડે નાકમાથી વચન નીકળે, વસ્તુ એક હોય તો બીજી દેખાય, બગાસા આવે ઉલટી થાય, સ્વર બદલાઇ જાય, શરીર છિદવાથી લોહી ન નીકળે, લાકડી મારવાથી શરીરે નિશાની ન પડે, બે સ્તનોની નીચે અને ગળામા ધબકારો ન જણાય, કાનની પાછલ દાતના આકાર પ્રગટ દેખાય, નિશ્વાસ (નિશાસો) ઠડો જણાય, ટોક કરે નહી, લોહી પાણીમા નાખવાથી તેલની માફક પસરી જાય, બન્ને હોઠ કોઈ ઉઘાડે તો પણ પાછા બીડાઇ જાય, પોતાની જીભને તથા નાસિકાના અગ્રભાગને જોઇ ન શકે, પાચે ઇદ્રિયો પોતાનો

વિષય જાણી ન શકે, નાસિકાને બદલે મુખમાંથી શ્વાસ નીકળે, આંખો અને મુખ ખુલ્લાં રહે, ચંદ્રમા હોય તો સૂર્ય દેખાય, સૂર્ય હોય તો ચંદ્રમા દેખાય, કાનમાં, ઉદરમાં તથા બે કાનમાં કાગડાના પગ સરખું નીલવર્ણ ચિન્હ દેખાય, આરિસામાં તથા જળમાં પોતાનું મુખ ન જુવે, આંખની કીકીઓ આગળ બેઠેલાને ન દેખાય, ઉદર ઉપર સોજો ચઢે, નખો એકદમ કાળાં પડે, પરસેવો તથા શૂળ થાય, ગળેથી કાંઇ ખાવાની વસ્તુ ઉતરે નહીં, આંકડી આવે, રોમાંચ (રૂંવાટાં) ઉભા રહે, દાંત ઘસે, હોઠ કરડે, મુખથી સીત્કાર શબ્દ કરે, વારંવાર તાપ (બળતરા) અને જડતા (મૂર્છા) થાય, તથા હુંકાર કરે, આંખો દિવસે સફેદ રહે, સંધ્યા સમયે રાતી થાય, અને રાત્રિએ કાળી થાય, એટલાં લક્ષણોમાં કેટલાક અથવા સર્વ લક્ષણો જેને થાય, તે ઝેરથી પીડાતો માણસ અવશ્ય મરણ પામે. (૧૭૭-૧૮૯)

दष्टस्य देहे शीताम्बु-धारासेक्तैर्भवेद्यदि ॥
रोमाञ्चः कम्पनाद्यं वा, तदा दष्टोऽनुगृह्यते ॥१९०॥

અર્થઃ—ઝેરથી પીડાતા માણસને શરીરે ઠંડા પાણીની ધાર કરવાથી જો તે રોમાંચ ઉભા કરે અથવા હાલચાલ કરે તો મંત્ર, ઔષધ પ્રમુખ ઉપચાર કરવા. કારણ કે, તેથી તે સાજો થાય. (૧૯૦)

यो हस्तनखनिर्मुक्तैः, पयोबिन्दुभिराहते ॥
निमीलयति नेत्रे स्वे, यमस्तास्मिन्न सोद्यमः ॥१९१॥

અર્થ—ઝેરથી પીડાતો જે માણસ, હાથના નખોવડે પાણીના બિંદુ આંખોમા છાટવાથી પોતાની આખો મીટે, તે મરણ ન પામે (૧૯૧)

यस्य पाणिनखासक्त-मासेऽन्यनखपीडिते ॥
जायते वेदना तस्य, नान्तको भजतेऽन्तिकम् ॥१०२॥

અર્થ—હાથના નખના માંસને બીજા માણસે પોતાના નખોવડે દબાવવાથી જેને વેદના ઉત્પન્ન થાય, તે ઝેરથી પીડાતો માણસ મરણ ન પામે (૧૯)

(अथ स्थानविचारः ।)

इष्टिकाचितिवल्मीका-द्रिद्रुकूपसरित्तटे ॥
वृक्षे कुञ्जे श्मशाने च, जीर्णशालगृहान्तरे ॥१०३॥
पापाणसचये दिव्य-देवतायतनादिके ॥
स्थानेष्वेतेषु यो दष्टो, यमस्तस्मिन्दद्योद्यमः ॥१९४॥

અર્થ—(હવે ડખનો સ્થળવિચાર કહે છે) ઈંટોમા, ચિતામા, રાફડામા, પર્વતમા, ઝાડને તળે, કુવાને અથવા નદીને કાંઠે, વેલડીઓથી તથા ઝાડથી ઢકાયલા પ્રદેશમા, સ્મશાનમા, જીર્ણ ઘરમા, પત્થરના ઢગલામા, દેવસ્થાન આદિકમા જેને સર્પદંશ થાય, તે અવસ્ય મરણ પામે (૧૯૩) (૧૯૪)

(अथ सर्पजातिविचारः ।)

विषभेदाववुद्ध्यर्थं, ज्ञेयो नागोदयः पुरा ॥
अज्ञातविषभेदः स-न्निर्विषीकुरुते कथम् ॥१०५॥

અર્થઃ—(હવે સર્પ જાતિનો વિચાર કહે છે.) ઝેરના પ્રકાર સમજવાને અર્થે પ્રથમ નાગનો ઉદય જાણવો જોઇએ કારણ કે, ઝેરના પ્રકાર જાણ્યા વગર ઝેર શી રીતે ઉતારી શકાય ? (૧૯૫)

रविवारे द्विजोऽनन्तो, नागः पद्मशिराः सितः ॥
वायवीयविषो यामा–र्धमात्रमुदयी भवेत् ॥१९६॥

અર્થઃ—વાયુમય વિષને ધારણ કરનારો અને જાતે બ્રાહ્મણ એવો અનંત નામે નાગ રવિવારે પોણાચાર ઘડી સુધી ઝેરનો ઉદય ધારણ કરે છે. તેને મસ્તકે કમળ હોય છે તથા તે શરીરે સફેદ વર્ણનો હોય છે. (૧૯૬)

वासुकिः सोमवारे तु, क्षत्रियः शुभविग्रहः ॥
नीलोत्पलाङ्क आग्नेय–गरलोऽभ्युदयं व्रजेत् ॥१९७॥

અર્થઃ—અગ્નિમય વિષ ધારણ કરનારો વાસુકિ નામે ક્ષત્રિય જાતિનો નાગ સોમવારે શરીરે પોણાચાર ઘડી સુધી ઝેરનો ઉદય ધારણ કરે છે. તેનું શરીર સુંદર હોય છે તથા તેના માથા ઉપર નીલકમળ હોય છે. (૧૯૭)

भवत्यभ्युदयी भौमे, तक्षको विश्वरक्षकः ॥
आरक्तः पार्थिवविषो, वैश्यः स्वस्तिकलाञ्छनः ॥१९८॥

અર્થઃ—જગતનું રક્ષણ કરનાર અને પૃથ્વીમય વિષ ધારણ કરનાર તક્ષક નામે વૈશ્ય જાતિનો નાગ મંગળવારે પોણાચાર ઘડી સુધી ઝેરનો ઉદય ધારણ કરે છે. તેનું શરીર રાતું હોય છે અને તેને મસ્તકે સ્વસ્તિક હોય છે. (૧૯૮)

बुधे लब्धोदयः शूद्रः, कर्कोटोऽञ्जनसन्निभः ॥
स वारुणविषो रेखा–त्रितयाश्रितमूर्तिमान् ॥१९९॥

અર્થ —જળમય વિષ ધારણ કરનારો કર્કોટક નામે શૂદ્ર જાતિનો નાગ બુધવારે પોણાચાર ઘડી સુધી ઝેરનો ઉદય ધારણ કરે છે તેના શરીરનો રંગ અંજનસરખો હોય છે અને તેના શરીર ઉપર ત્રણ રેખા હોય છે (૧૯૯)

गुरुवारोदयी पद्मः, स्वर्णवर्णसमद्युतिः ॥
शूद्रो माहेन्द्रगरलः, पञ्चचन्द्राभबिन्दुकः ॥२००॥

અર્થ —માહેંદ્ર વિષને ધારણ કરનારો પદ્મ નામે શૂદ્ર જાતિનો નાગ ગુરૂવારે પોણાચાર ઘડી સુધી ઝેરનો ઉદય ધારણ કરે છે તેના શરીરનો રંગ સુવર્ણ સરખો હોય છે અને તેના શરીરઉપર ચંદ્રમા સરખા સફેદ પાંચ બિંદુ હોય છે (૨૦૦)

शुक्रवारोदितो वैश्यो, महापद्मो घनच्छविः ॥
लक्षिताङ्गस्त्रिशूलेन, दधानो वारुणं विषम् ॥२०१॥

અર્થ —જળમય વિષ ધારણ કરનારો મહાપદ્મ નામે શૂદ્ર જાતિનો નાગ શુક્રવારે પોણાચાર ઘડી સુધી ઝેરનો ઉદય ધારણ કરે છે તેના શરીરનો રંગ મેઘ સરખો હોય છે અને તેને મસ્તકે ત્રિશળ હોય છે (૨૦૧)

धत्ते शङ्खः शनौ शक्ति–मुदेतुमरुणारुणः ॥
क्षत्रियो गरमाग्नेय, बिभ्रद्रेखा सिता गले ॥२०२॥

અર્થ —તેજોમય વિષ ધારણ કરતો શંખ નામે ક્ષત્રિ-

ય જાતિનો નાગ શનિવારે પોણાચાર ઘડી સુધી ઝેરનો ઉદય ધારણ કરે છે. તેના શરીરનો રંગ અરૂણ સરખો રાતો હોય છે અને તેને ગળે સફેદ રેખા હોય છે. (૨૦૨)

राहुः स्यात्कुलिकः श्वेतो, वायवीयविषो द्विजः ॥
सर्ववारेषु यामार्ध-संधिष्वस्योदयो मतः ॥२०३॥

અર્થઃ—વાયુમય વિષ ધારણ કરતો રાહુસરખો કુલિક નામે બ્રાહ્મણ જાતિનો નાગ સર્વ વારને વિષે ચોઘડિયાના સંધિકાળમાં ઝેરનો ઉદય ધારણ કરે છે. તેના શરીરનો રંગ સફેદ હોય છે. (૨૦૩)

अहर्निशामियं वेला, ख्याता विषमयी किल ॥
तदादौ विषमाग्नेयं, माहेन्द्रं मध्यमे पुनः ॥२०४॥
वारुणं पश्चिमे भागे, तत्राद्यमतिदुःखदम् ॥
कष्टसाध्यं परं साध्यं, भवेत्परतरं पुनः ॥२०५॥

અર્થઃ—રાત્રિનો તથા દિવસનો આ સર્વ સમય વિષમય કહ્યો છે. તેમાં પ્રથમ અગ્નિમય વિષ, મધ્યમાં માહેંદ્ર વિષ અને પાછલે ભાગે જળમય વિષ હોય છે. તેમાં પહેલું અગ્નિમય વિષ અત્યંત દુઃખ આપનારૂં, બીજું માહેન્દ્ર કષ્ટસાધ્ય (મહેનતથી ઉતારી શકાય એવું) અને ત્રીજું જળમય વિષ સુસાધ્ય (સુખેથી ઉતારી શકાય એવું) હોય છે. (૨૦૪) (૨૦૫)

विषं साध्यमिति ज्ञात-मपि चेन्नैव नश्यति ॥
तदापरान्तो विज्ञेय-स्तस्य स्थितिमितिस्त्वियम् ॥२०६॥

અર્થ—સાધ્ય વિષ જાણ્યા છતાં પણ જો દૂર ન થાય, તો અપરાન્ત યોગ જાણવો તેની (અપરાન્તની) સ્થિતિનું માન એ છે (૨૦૬)

रविरोहिण्यमावास्या, चेद्द्वौ यामौ तदा विषम् ॥
चन्द्राश्लेषाष्टमीयोगे, चतुर्यामावधौ विषम् ॥२०७॥

અર્થ—રવિવાર, રોહિણી નક્ષત્ર તથા અમાવાસ્યા હોય તો બે પહોર સુધી અને સોમવાર, અશ્લેષા નક્ષત્ર તથા અષ્ટમી તિથિ હોય તો ચાર પહોર સુધી વિષની મર્યાદા હોય છે (૨૦૭)

भौमोत्तरफा नवमी, यामान् षट् सतत विषम् ॥
बुधे चतु र्थ्यनुराधा, यात्र्यामाष्टक विषम् ॥२०८॥

અર્થ—નવમીને દિવસે મંગળવાર તથા ઉત્તરા ફાલ્ગુની નક્ષત્ર હોય તો એક સરખી છ પહોર સુધી અને ચતુર્થીને દિવસે બુધવાર તથા અનુરાધા નક્ષત્ર હોય તો આઠ પહોર સુધી વિષની મર્યાદા હોય છે (૨૦૮)

गुरौ च प्रतिपज्ज्येष्ठा, षोडश प्रहरान् विषम् ॥
शुक्रे मघा तृतीयायां, द्वात्रिंशत्प्रहरान् विषम् ॥२०९॥

અર્થ—પ્રતિપદાને દિવસે ગુરૂવાર તથા જ્યેષ્ઠા નક્ષત્ર હોય તો સોળ પહોર સુધી અને તૃતીયાને દિવસે શુક્રવાર તથા મઘા નક્ષત્ર હોય તો બત્રીસ પહોર સુધી વિષની મર્યાદા હોય છે (૨૦૯)

शनावार्द्राचतुर्दश्यां, षड्दिनान्त महाविषम् ॥
कैश्चिदिन्त्यपरान्तोऽयं, तिथिवार्क्षतो मत. ॥२१०॥

અર્થઃ—ચતુર્દશીને દિવસે શનિવાર તથા આર્દ્રા નક્ષત્ર હોય તો ૭ દિવસ સુધી વિષની મર્યાદા હોય છે. આ રીતે કેટલાક લોકોએ અપરાન્ત યોગ તિથિ, વાર અને નક્ષત્રના યોગથી માન્યો છે. (૨૧૦)

(प्रकारान्तरमाह्)

यामार्धमाद्यमन्त्यं च, द्युवारस्याह्नि निश्यपि ॥
तत्तत्षष्ठस्य शेषं स्या–न्निशि तत्पञ्चमस्य तु ॥२११॥

અર્થઃ—(હવે બીજો પ્રકાર કહે છે) પહોરનો પહેલો અને છેલ્લો અર્ધ ભાગ દિવસ સંબંધી વારના દિવસે તથા રાત્રિએ પણ જાણવો. દિવસે તે તેના છઠ્ઠાનો શેષ અને રાત્રિએ પાંચમાનો શેષ હોય છે. (૨૧૧)

सूर्यादौ षड्विवर्ते आ–शुबुसोशगुमं दिने ॥
त्रिवर्ते पञ्चमे आवृ–सोशुमंशबु निश्यपि ॥२१२॥

અર્થઃ—સૂર્યાદિકને વિષે છઠ્ઠે વિવર્તે દિવસમાં રવિ, શુક્ર, બુધ, ચંદ્ર, શનિ, ગુરૂ અને મંગળ જાણવા તથા રાત્રિએ પાંચમે વિવર્તે રવિ, ગુરૂ, ચંદ્ર, શુક્ર, મંગળ, શનિ અને બુધ જાણવા. (૨૧૨)

नागार्धयामकाश्चैते, तेषु कालो भवेच्छनौ ॥
अपरान्तो भवेज्जीवो, ज्ञेयं युक्त्यानया त्रयम् ॥२१३॥

અર્થઃ—એ નાગના અર્ધ પ્રહર જાણવા. એમાં શનિને વિષે કાળ, અપરાન્ત અને જીવ એવી રીતે એ ત્રણ વસ્તુ જાણવી. (૨૧૩)

कालदष्टोऽपि सूर्यस्य, दिनेऽष्टाविंशतिं घटीः ॥
जीवत्यतो मृतो नो चे-द्गलित कालमर्म तत् ॥२१४॥

અર્થ—રવિવારને દિવસે કાળસર્પનો દંશ થાય તો-પણ માણસ અઠાવીશ ઘડી સુધી જીવે તે ઉપરાંત મરણ ન પામે તો, કાળનુ મર્મ તૂટી ગયુ એમ સમજવુ (૨૧૪)

दिनेऽर्कस्यापरान्तोऽपि, स्वास्थ्यकृद्विंशति घटीः ॥
पश्चादष्टादश घटी-र्मोहो भवति निश्चितम् ॥२१५॥

અર્થ—રવિવારે વીસ ઘડી સુધી અપરાન્ત હોય છે તે તેટલી મુદત સુધી ઝેરથી પીડાતા માણસને સ્વસ્થ રાખે છે પછી અઢાર ઘડી સુધી નિશ્ચયથી મોહ (બેભાનપણુ) થાય છે (૨૧૫)

सोमादीना दिनेष्वेव, घट्यः कालापरान्तयोः ॥
कालस्य प्रथमाः पश्चा-दपरान्तस्य च क्रमात् ॥२१६॥

અર્થ—આ રીતેજ સોમવાર વિગેરે દિવસને વિષે પણ કાળની અને અપરાન્તની ઘડી જાણવી તેમા પહેલા કાળની અને પછી અપરાન્તની ઘડી અનુક્રમે હોય છે (૨૧૬)

सोमस्य दिवसे काल-श्चेर्था प्रख्यो जिनैः समाः ॥
स्वास्थ्याय षोडश ततो, मोहायाष्टादश स्फुटाः ॥२१७॥

અર્થ—સોમવારને દિવસે કાળની ચોવીશ, રોગીને સ્વસ્થ રાખનારી અપરાન્તની સોળ અને તે પછી મોહની (બેભાનપણાની) અઢાર ઘડી પ્રગટ હોય છે (૨૧૭)

भौमस्य दिवसे कालो, घटिका विंशतिर्भवेत् ॥
घटिका द्वादश स्वास्थ्यं, मोहः षट्त्रिंशदेव च ॥२१८॥

અર્થઃ—મંગળવારને દિવસે પહેલાં કાળની વીસ, પછી રોગીને સ્વસ્થ રાખનારી અપરાન્તની બાર અને તે પછી મોહની છત્રીસ ઘડી હોય છે. (૨૧૮)

बुधस्य दिवसे ज्ञेया, घट्यः कालस्य षोडश ॥
स्वास्थ्यस्य घटिका अष्टौ, मोहः सार्धं दिनं ततः ॥२१९॥

અર્થઃ—બુધવારને દિવસે પહેલાં કાળની સોળ, પછી રોગીને સ્વસ્થ રાખનારી અપરાન્તની આઠ ઘડી અને તે પછી દોઢ દિવસ સુધી મોહની મર્યાદા હોય છે. (૨૧૯)

बृहस्पतिदिने काल-घटिका द्वादश स्मृताः ॥
चतस्रो घटिकाः स्वास्थ्ये ऽत्र्यहं मोहोऽथ षड् घटीः॥२२०॥

અર્થઃ—ગુરૂવારને દિવસે કાળની બાર અને અપરાન્તની ચાર ઘડી તથા મોહની બે દિવસ અને છ ઘડી સુધી મર્યાદા કહી છે. (૨૨૦)

शुक्रस्य दिवसे काल-घटिका अष्ट निश्चिताः ॥
घट्योऽष्टाविंशतिः स्वास्थ्यं, मोहो दिनचतुष्टयम् ॥२२१॥

અર્થઃ—શુક્રવારને દિવસે પહેલાં કાળની આઠ ઘડી પછી અપરાન્તની અઠાવીસ ઘડી અને તે પછી મોહના ચાર દિવસ હોય છે. (૨૨૧)

शनैश्चरदिने कालो, घटिकानां चतुष्टयम् ॥
घट्यो जिनैः समाः स्वास्थ्यं, मोह षट् सार्धवासराः॥२२२॥

અર્થ—શનિવારને દિવસે કાળની ચાર ઘડી, અપરાન્તની ચોવીશ ઘડી અને મોહના સાડા છ દિવસ હોય છે (૨૨૨)

कालोऽन्त्यैर्द्धे शनेरन्त्या, घटी जीवेऽपरान्तकः ॥
काल एव भवेन्नित्य, सर्वप्रहरकान्तरे ॥ २२३ ॥

અર્થ—શનિવારે છેટલો અર્ધ ભાગ કાળનો અને ગુરૂવારે છેહ્લી ઘડી અપરાન્તની હોય છે તથા નિરંતર સર્વ પહોરને છેડે કાળ હોય છે (૨૨૩)

नाभिदेशे नखे स्पष्टो, निर्दग्धस्येव वह्निना ॥
दष्टस्य जायते स्फोटो, ज्ञेयोऽनेनापरान्तकः ॥२२४॥

અર્થ—ઝેરથી પીડાતા માણસના નાભિપ્રદેશના નીચલા ભાગમા જો બળેલા જેવો ફોડલો પ્રગટ દેખાય તો તે લક્ષણ ઉપરથી અપરાન્ત જાણવો (૨૨૪)

अनन्तो दक्षिणाद्वेक्षी, वासुकिर्व्योमवीक्षकः ॥
तक्षकः श्रवणस्पर्शी, नासा कर्कोटकः स्पृशेत् ॥२२५॥

અર્થ—અનંત નામે નાગ જમણી બાજુ જુવે છે, અને વાસુકિ ડાબી જુવે છે, તક્ષક કાનને સ્પર્શ કરે છે, અને કર્કોટક નાકને સ્પર્શ કરે, છે (૨૨૫)

पद्मः कण्ठसंस्पर्शी, महापद्मः श्वसित्यलम् ॥
शङ्खो हन्ति भूमिंसदा, कुलिको वामवेष्टकः ॥२२६॥

અર્થ—પદ્મનાગ કંઠને સ્પર્શ કરે, મહાપદ્મ ઘણો શ્વાસ મૂકે, શંખ ભૂમિ તરફ જોઇ હણે, અને કુલિક ડાબે ભાગે વેષ્ટન કરે (૨૨૬)

विषं दंशे द्विपञ्चाश-न्मात्रास्तिष्ठत्ततोऽलिके ॥
नेत्रयोर्वदने नाडी-ष्वथो धातुषु सप्तसु ॥२२७॥

अर्थः—झेर डंखमां बावन मात्र[1] सुधी रही, पछी कपाळ, आंख, मुख नाडीओ अने सात धातुओमां जाय. (२२७)

रसस्थं कुरुते कण्डूं, रक्तस्थं बाह्यतापकृत् ॥
मांसस्थं जनयेच्छर्दि, मेदस्थं हन्ति लोचने ॥२२८॥

अर्थ—झेर रस धातुमां होय तो कंडू (खरज) उत्पन्न करे, लोहीमां होय तो शरीरना बहारना भागे ताप उपजावे, मांसमां होय तो उलटी उत्पन्न करे, अने मेद धातुमां होय तो बन्ने आंखने नुकसान करे. (२२८)

अस्थिस्थं मर्मपीडां च, मज्जस्थं दाहमान्तरम् ॥
शुक्रस्थमानयेन्मृत्युं, विषं धातुक्रमादहेः ॥२२९॥

अर्थः—झेर हाडमां होय तो मर्मस्थानके पीडा करे, मज्जामां होय तो शरीरनी अंदर बळतरा उत्पन्न करे, अने शुक्र धातुमां होय तो मृत्यु पमाडे. आ रीते धातुना अनुक्रमथी सर्पनुं विष जाणवुं. (२२९)

निराकर्तुं विषं शक्यं, पूर्वं स्थानचतुष्टये ॥
अतःपरमसाध्यं तु, कष्टं कष्टतरं स्मृतम् ॥२३०॥

अर्थः—उपर कहेला स्थानकोमां पहेले चार स्थानके

[1]:-दीयणुने हथे प्रदक्षिणा दइ एक चपटी वगाडतां जेटलो काल लागे छे, तेने मात्रा कहे छे.

વિષ હોય તો તે દૂર થઇ શકે છે અને બાકીના સ્થાનકોમા હોય તો કષ્ટસાધ્ય, અતિશય કષ્ટસાધ્ય તથા અસાધ્ય હોય છે (૨૩૦)

आग्नेय स्याद्विषे तापो, जडता वारुणेऽधिका ॥
प्रलापो वायवीये तु, त्रिविध विषलक्षणम् ॥२३१॥

અર્થ—અગ્નિનુ વિષ હોય તો તાપ ઘણો થાય, વરૂણનુ હોય તો જડતા ઘણીવાર થાય, વાયુનુ હોય તો પ્રલાપ (બકબકાટ) થાય આ રીતે ઝેરના ત્રણ લક્ષણ જાણવા (૨૩૧)

निक्षिप्ते मारिचे चूर्णे, दशोर्यदि पयः क्षरेत् ॥
तदा जीवति दष्टः स-न्नन्यथा तु न जीवति ॥२३२॥

અર્થ—ડખાયલા માણસની બન્ને આખોમા મરીનુ ચૂર્ણ આજવાથી જો પાણી નીકળે તો તે જીવે, નહી તો નહી (૨૩૨)

पादाङ्गुष्ठेऽथ तत्पृष्ठे, गुल्फे जानुनि लिङ्गके ॥
नाभौ हृदि कुचे कण्ठे, नासाक्षश्रुतिषु भ्रुवोः ॥२३३॥
शङ्खे मूर्ध्नि क्रमात्तिष्ठ-त्पीयूषस्य कलान्वहम् ॥
शुक्लप्रतिपदः पूर्वं, कृष्णपक्षे विपर्ययात् ॥ २३४ ॥

અર્થ—શુકલ પક્ષના પડવાથી માંડી પૂનમ સુધી અનુક્રમે ૧ પગને અગૂઠે, ૨ પગને કાંડે, ૩ ઘુટણે, ૪ ઢીંચણે, ૫ લિંગ ઉપર, ૬ નાભિમા, ૭ હૃદયમા, ૮ સ્તનમા, ૯ કંઠમા, ૧૦ નાકમા, ૧૧ આખમા, ૧૨ કાનમા, ૧૩ બે ભમરમા, ૧૪

શંખમાં (લમણામાં) તથા મસ્તકમાં અમૃતની કળા રહે છે. તથા કૃષ્ણ (અંધારિયા) પક્ષમાં પડવાથી માંડી અમાસ સુધી ઉલટા ક્રમથી એટલે પડવાને દિવસે મસ્તકે, બીજને દિવસે શંખમાં એ રીતે અમૃતની કળા હોય છે. (૨૩૩) (૨૩૪)

सुधाकला स्मरो जीव–स्त्रयाणामेकवासिता ॥
पुंसो दक्षिणभागे स्या–द्वामभागे तु योषितः ॥२३५॥

અર્થઃ—પુરૂષની જમણી બાજુએ અને સ્ત્રીઓની ડાબી બાજુએ અમૃતની કળા, કામ અને જીવ એ ત્રણે એકજ ઠેકાણે રહે છે. (૨૩૫)

सुधास्थानाद्विषस्थानं, सप्तमं ज्ञेयमन्वहम् ॥
सुधाविषस्थानमर्दो, विषघ्नो विषवृद्धिकृत् ॥२३६॥

અર્થઃ—અમૃતના સ્થાનકથી સુધાનું સ્થાનક નિરંતર સાતમું જાણવું. અમૃતના સ્થાનકને મસળવાથી અમૃતની અને વિષના સ્થાનકને મસળવાથી વિષની વૃદ્ધિ થાય છે. (૨૩૬)

स्त्रियोऽप्यवश्यं वश्याः स्युः, सुधास्थानविमर्दनात् ॥
स्पृष्टा विशेषाद्गुह्याय, गुह्यमाप्ता सुधाकला ॥२३७॥

અર્થઃ—અમૃતનું સ્થાનક મસળવાથી સ્ત્રિયો પણ અવશ્ય વશ થાય છે. વિશેષે કરી ગુહ્યસ્થાને અમૃતકળા આવી હોય તો તેને મસળવાથી તુરત સ્ત્રિયો વશ થાય છે. (૨૩૭)

सुधास्थानेषु नैव स्या-त्कालदष्टोऽपि मृत्यवे ॥
विषस्थानेषु दष्टस्तु, सगरस्तोप्याशु मृत्यवे ॥२३८॥

અર્થ—અમૃતની કળા જ્યાં વસતી હોય ત્યાં કાળગર્પનો દંશ થાય તોપણ મરણ ન થાય અને વિષના સ્થાનકમાં વગેરો દંશ સારો હોય તોપણ તેથી તુરત મરણ નીપજે છે (૨૩૮)

सुधाकलास्थितान् प्राणान्, ध्यायन्नात्मनि चात्मना ॥
निर्विषत्वं जयत्स्तम्भ, कान्ति प्राप्नोति दष्टकः ॥२३९॥

અર્થ—ડખાયલો માણસ અમૃતની કળાને વિષે રહેલા પ્રાણનું પોતે પોતાના આત્માને વિષે ચિંતન કરે, તો તેથી વિષનો નાશ થાય, તરૂણ અવસ્થા ટકી રહે, અને શરીરે કાંતિ આવે (૨૩૯)

जिह्वायास्तालुना योगा-दमृतस्त्रवण च यत् ॥
विलिप्तस्तेन दष्टः स्या-न्निर्विषः क्षणमात्रतः ॥२४०॥

અર્થ—જીભ તાળવે લગાડવાથી જે અમૃત ઝરે છે, તેનો ડખ ઉપર લેપ કરે તો ક્ષણ માત્રમાં વિષનો નાશ થાય (૨૪૦)

घृतादि पेय दष्टेन, भक्ष्य चिर्भटिकादिकम् ॥
दशे कर्णमलो दद्याच-शूर्णं चाभिनवं क्षणात् ॥२४१॥

અર્થ—ડખાયલા માણસે ઘી પીવું, ચીભડાં વિગેરે ભક્ષણ કરવાં, ડખ ઉપર કાનનો મળ ચોપડવો કળીચુનો બાંધવો (૨૪૧)

पुनर्नवायाः श्वेताया, गृहीत्वा मूलमम्बुभिः ॥
पिष्टं पानं प्रदातव्यं, विषार्तस्यार्तिनाशनम् ॥२४२॥

અર્થઃ—ઝેરથી પીડાતા માણસને ધોળી સાટોડીનાં મૂળીયાં પાણીમાં વાટી પાવાં. તેથી ઝેરની પીડા દૂર થાય. (૨૪૨)

कन्दः सुदर्शनायाश्च, जलैः पिष्टो विपीयते ॥
अथवा तुलसीमूलं, निर्विषत्वविधित्सया ॥ २४३ ॥

અર્થઃ—ઝેર દૂર કરવાની ઇચ્છાએ સુદર્શનનો કંદ અથવા તુળસીનાં મુળિયાં પાણીમાં ઘસીને પીવાય છે. (૨૪૩)

जलपिष्टरसस्तस्य, पत्रैर्नस्ये कृते सति ॥
राक्षसादिकदोषेण, विषेण च विमुच्यते ॥२४४॥

અર્થઃ—અગથિયાનાં પાન પાણીમાં વાટીને નાકમાં તેનું નસ્ય કરવાથી રાક્ષસાદિકની અને વિષની પીડા દૂર થાય છે. (૨૪૪)

(अथ षड्दर्शनविचारक्रमः ।)

जैनं मैमांसकं बौद्धं, सांख्यं शैवं च नास्तिकम् ॥
स्वस्वतर्कविभेदेन, जानीयाद्दर्शनानि षट् ॥२४५॥

અર્થઃ—૧ જૈન, ૨ મીમાંસક, ૩ બૌદ્ધ, ૪ સાંખ્ય, ૫ શૈવ અને ૬ નાસ્તિક એ છ દર્શનો પોત પોતાના તર્કના ભેદથી થએલાં જાણવાં. (૨૪૫)

(अथ जैनमतम् ।)

बलभोगोपभोगाना-मुभयोर्दानलाभयोः ॥
नान्तरायस्तथा निद्रा, भीरज्ञानं जुगुप्सनम् ॥२४६॥

हासो रत्यरती राग–द्वेषावविरतिः स्मरः ॥
शोको मिथ्यात्वमेतेऽष्टा–दश दोषा न यस्य सः ॥२४७॥
जिनो देवो गुरुः सम्य–क्तत्त्वज्ञानोपदेशकः ॥
ज्ञानदर्शनचारित्रा–ण्यपवर्गस्य वर्तनी ॥२४८॥

અર્થ —તેમા પ્રથમ જૈન મત કહે છે ૧ વીર્યાતરાય, ૨ ભોગાતરાય, ૩ ઉપભોગાતરાય, ૪ દાનાતરાય અને ૫ લાભાતરાય, એ પાચ અતરાય ૬ નિદ્રા, ૭ ભય, ૮ અજ્ઞાન, ૯ દુગછા, ૧૦ હાસ્ય, ૧૧ રતિ, ૧૨ અરતિ, ૧૩ રાગ, ૧૪ દ્વેષ, ૧૫ અવિરતિ, ૧૬ કામવિકાર, ૧૭ શોક અને ૧૮ મીથ્યાત્વ એ અઢાર દોષ જેનામા નથી તે ભગવાન્ શ્રીજિન દેવ કહેવાય છે સારી પેઠે તત્ત્વજ્ઞાનનો ઉપદેશ કરે તે ગુરૂ કહેવાય છે અને જ્ઞાન, દર્શન તથા ચારિત્ર એ ત્રણે મળીને મોક્ષનો માગ કહેવાય છે (૨૪૬) (૨૪૭) (૨૪૮)

स्याद्वादश्च प्रमाणे द्वे, प्रत्यक्ष च परोक्षकम् ॥
नित्यानित्य जगत्सर्व, नव तत्त्वानि सप्त वा ॥२४९॥

અર્થ —તેમજ જૈનમતમા ' સ્યાદસ્તિ, સ્યાન્નાસ્તિ " ઇત્યાદિક ભગવાળો સ્યાદ્વાદ તથા પ્રત્યક્ષ અને પરોક્ષ એ બે પ્રમાણો મનાય છે સર્વ જગત્ દ્રવ્યથી નિત્ય અને પર્યાયથી અનિત્ય છે તથા નવ અને (અપેક્ષાથી) સાત પણ તત્ત્વો છે (૨૪૯)

जीवाजीवौ पुण्यपापे, आस्रवः सवरोऽपि च ॥
बन्धो निर्जरण मुक्ति–रेषां व्याख्याधुनोच्यते ॥२५०॥

અર્થઃ—૧ જીવ, ૨ અજીવ. ૩ પુણ્ય, ૪ પાપ, ૫ આશ્રવ, ૬ સંવર, ૭ બંધ, ૮ નિર્જરા અને ૯ મોક્ષ, એ નવ તત્ત્વ જાણવાં, એમનાં લક્ષણ હવે કહે છે. (૨૫૦)

चेतनालक्षणो जीवः, स्यादजीवस्तदन्यकः ॥
सत्कर्मपुद्गलाः पुण्यं, पापं तस्य विपर्ययः ॥ २५१ ॥
आस्रवः कर्मसंबन्धः कर्मरोधस्तु संवरः ॥
कर्मणां बन्धनाद्बन्धो, निर्जरा तद्वियोजनम् ॥ २५२ ॥
अष्टकर्मक्षयान्मोक्षो, ह्यन्तर्भावश्च कैश्चन ॥
पुण्यस्य संवरे पाप-स्यास्रवे क्रियते पुनः ॥ २५३ ॥

અર્થઃ—૧ જેમાં ચેતના છે તે જીવ, ૨ જેમાં તે (ચેતના) નથી તે અજીવ, ૩ કર્મના શુભ પુદ્ગલ તે પુણ્ય, ૪ કર્મના અશુભ પુદ્ગલ તે પાપ, ૫ જીવનો કર્મની સાથે સંબંધ થવો તે આશ્રવ, ૬ જીવને બંધન કરનારાં કર્મોને રોકવાં તેનું સંવર ૭ કર્મનો બંધ થવો તે બંધ, ૮ કર્મને ખપાવવું તે નિર્જરા અને ૯ આઠે કર્મો ખપાવીને સર્વે કર્મોથી છૂટવું, તે મોક્ષ કહેવાય છે. કેટલાક આચાર્યો પુણ્ય અને સંવર તથા પાપ અને આશ્રવ એ બન્નેને જુદા ગણતા નથી. તેથી તેમને મતે સાત તત્ત્વો થાય છે. (૨૫૧) (૨૫૨) (૨૫૩)

लब्धानन्तचतुष्कस्य, लोकाग्रस्थस्य चात्मनः ॥
क्षीणाष्टकर्मणो मुक्ति-र्व्यावृत्तिर्जिनोदिता ॥२५४॥

અર્થઃ—જેમની જ્ઞાન, દર્શન, વીર્ય અને સ્થિતિ એ ચારે વસ્તુ અનંત (કોઇ કાળે નાશ ન પામનારી) છે, એવા

તથા આઠ કર્મના ક્ષયથી સિદ્ધશિલાએ રહેલા જીવનુ જે પાછુ આ સંસારમા ન આવવુ તે મુક્તિ છે, એમ શ્રી જિન ભગવાને કહ્યુ છે (૨૫૪)

सरजोहरणा भैक्ष्य-भुजो लुञ्चितमूर्द्धजाः ॥
श्वेताम्बराः क्षमाशीला, निःसङ्गा जैनसाधवः ॥२५५॥

અર્થ —ઓઘો ધારણ કરનારા, ગોચરી (ભિક્ષા) ઉપર પોતાનો નિર્વાહ કરનારા, કેશનો લોચ કરનારા, કોઈ ઠેકાણે મમતા, આસક્તિ ન રાખનારા અને ક્ષમાશીળ એવા શ્વેતાંબરી જૈનના સાધુ હોય છે (૨૫૫)

लुञ्चिताः पिच्छिकाहस्ताः, पाणिपात्रा दिगम्बराः ॥
ऊर्ध्वाशनागृहे दातु-र्द्वितीयाः स्युर्जिनर्षयः ॥२५६॥

અર્થ —કેશનો લોચ કરનારા, મોરપીછનો ઓઘો હાથમા ધારણ કરનારા, નગ્ન રહેનારા અને ભિક્ષા આપનારના ઘરેજ હાથ ઉપર ભિક્ષા લઈ ત્યાજ ઉભા રહીને આહાર કરનારા એવા દિગંબરી જૈનના સાધુ હોય છે (૨૫૬)

भुङ्क्ते न केवली न स्त्री-मोक्षमाहुर्दिगम्बराः ॥
एषामयं महान्भेदः, सदा श्वेताम्बरैः सह ॥२५७॥

અર્થ —કેવળી ભોજન ન કરે, અને સ્ત્રી મોક્ષે ન જાય, એમ દિગંબરો કહે છે દિગંબરોનો શ્વેતાંબરોની સાથે એજ મોટો સદાકાળનો ભેદ રહ્યો છે (૨૫૭)

(अथ मैमांसकम् ।)

मीमांसका द्विधा कर्म-ब्रह्ममीमांसकत्वतः ॥
वेदान्ती मन्यते ब्रह्म, कर्म भट्टप्रभाकरौ ॥ २५८ ॥

અર્થઃ—(હવે મીમાંસક મત કહે છે.) મીમાંસક બે પ્રકારના. એક કર્મમીમાંસક અને બીજા બ્રહ્મમીમાંસક કુમારિલ ભટ્ટ અને પ્રભાકર એ કર્મમીમાંસક હોવાથી કર્મ માને છે. અને વેદાંતી લોકો બ્રહ્મમીમાંસક હોવાથી બ્રહ્મ માને છે. (૨૫૮)

प्रत्यक्षमनुमानं च, शब्दश्चोपमया सह ॥
अर्थापत्तिरभावश्च, भट्टानां षट्प्रमाण्यसौ ॥ २५९ ॥

અર્થઃ—ભટ્ટને મતે પ્રત્યક્ષ, અનુમાન, શબ્દ, ઉપમાન, અર્થાપત્તિ અને અનુપલબ્ધિ એ ૭ પ્રમાણ છે. (૨૫૯)

प्रभाकरमते पञ्चैवै-तान्यभाववर्जनात् ॥
अद्वैतवादिवेदान्ति-प्रमाणं तु यथा तथा ॥ २६० ॥

અર્થઃ—પ્રભાકરને મતે અનુપલબ્ધિ બાદ કરતાં બાકી રહેલાં પાંચ પ્રમાણ છે. અદ્વૈતવાદી વેદાન્તી પણ એમજ માને છે. (૨૬૦)

सर्वमेतादिदं ब्रह्म, वेदान्तेऽद्वैतवादिनाम् ॥
आत्मन्येव लयो मुक्ति-र्वेदान्तिकमते मता ॥२६१॥

અર્થઃ—અદ્વૈતવાદી વેદાન્તીને મતે એ સર્વ જગત્ બ્રહ્મરૂપ છે. તથા પોતાના સ્વરૂપમાં લય પામવો, એજ તેમને મતે મુક્તિ છે. (૨૬૧)

अकुकर्मा सपट्कर्मा, शूद्रान्नादिविवर्जकः ॥
ब्रह्मसूत्री द्विजो भट्टो, गृहस्थाश्रमसंस्थितः ॥२६२॥

અર્થ —પાપ કર્મને વર્જનારો, ભણવુ, ભણાવવુ ઇત્યાદિક છ ક્રિયાઓને યથાવિધિ કરનારો, શૂદ્રનુ અન્ન વિગેરે ન લેનારો, જનોઈ ધારણ કરનારો એવો બ્રાહ્મણ જાતનો ગ્રહસ્થ ભટ્ટ કહેવાય છે (૨૬૨)

भगवन्नामधेयास्तु, द्विजा वेदान्तदर्शने ॥
विप्रगेहभुजस्त्यक्तो-पवीता ब्रह्मवादिनः ॥२६३॥

અર્થ —વેદાન્ત મતના બ્રાહ્મણ સન્યાસીઓ "ભગવન્" એવા નામથી કહેવાય છે તે જનોઈ પહેરતા નથી, બ્રાહ્મણને ઘેર જમે છે, અને એક બ્રહ્મનેજ સદ્વસ્તુ માને છે (૨૬૩)

चत्वारो भगवद्भेदाः, कुटीचरबहूदकौ ॥
हंसः परमहंसश्चा-धिकोऽमीषु परः परः ॥२६४॥

અર્થ —"ભગવન્" નામથી કહેવાતા સન્યાસીઓના ચાર પ્રકાર છે એક કુટીચર, બીજા બહૂદક, ત્રીજા હંસ અને ચોથા પરમહંસ એ ચારે પ્રકારમા એકથી બીજો, બીજાથી ત્રીજો એમ પહેલા કરતા ઉત્તરોત્તર શ્રેષ્ઠ ગણાય છે (૨૬૪)

(अथ बौद्धमतम् ।)

बौद्धाना सुगतो देवो, विश्व च क्षणभङ्गुरम् ॥
आर्यसत्याख्यया तत्त्व-चतुष्टयमिद क्रमात् ॥२६५॥

અર્થ —બૌદ્ધો બુદ્ધને દેવ માને છે, અને જગતને

ક્ષણભંગુર તથા આર્યસત્ય નામથી પ્રસિદ્ધ એવાં ચાર તત્ત્વ માને છે (૨૬૫)

दुःखमायतनं चैव, ततः समुदयो मतः ॥
मार्गश्चैतस्य च व्याख्या, क्रमेण श्रूयतामतः ॥२६६॥

અર્થઃ—૧ દુઃખ, ૨ આયતન, ૩ સમુદાય અને માર્ગ એ ચાર તત્ત્વ જાણવાં હવે એ તત્ત્વોની વ્યાખ્યા અનુક્રમે સાંભળો. (૨૬૬)

दुःखं संसारिणः स्कन्धा-स्ते च पञ्च प्रकीर्तिताः ॥
विज्ञानं वेदना संज्ञा, संस्कारो रूपमेव च ॥२६७॥

અર્થ—સંસારી જીવનાં સ્કંધ તે દુઃખ કહેવાય છે. તે સ્કંધ પાંચ છે. ૧ વિજ્ઞાનસ્કંધ, ૨ વેદનાસ્કંધ, ૩ સંજ્ઞાસ્કંધ, ૪ સંસ્કારસ્કંધ અને ૫ રૂપસ્કંધ. (૨૬૭)

पञ्चेन्द्रियाणि शब्दाद्या, विषयाः पञ्च मानसम् ॥
धर्मायतनमेतानि, द्वादशायतनानि च ॥२६८॥

અર્થઃ—૫ પાંચ ઇંદ્રિયો, ૧૦ શબ્દાદિક પાંચ વિષયો ૧૧ મન અને ૧૨ ધર્મ એ બાર આયતન કહેવાય છે. (૨૬૮)

रागादीनां गणो यस्मा-त्समुदेति नृणां हृदि ॥
आत्मात्मीयस्वभावाख्यः, स स्यात्समुदयः पुनः॥२६९॥

અર્થઃ—આત્માત્મીય સ્વભાવ એવા નામથી પ્રસિદ્ધ જે રાગ, દ્વેષ વિગેરે વિકાર મનુષ્યના મનમાં ભેગા થાય છે, તે સમુદાય કહેવાય છે. (૨૬૯)

क्षणिकाः सर्वसंस्कारा, इति या वासना स्थिरा ॥
स मार्ग इति विज्ञेयः, स च मोक्षोऽभिधीयते ॥२७०॥

અર્થ—સર્વ સંસ્કાર ક્ષણિક છે, એવી જે દૃઢ વાસના તેજ માર્ગ જાણવો અને તેજ મોક્ષ કહેવાય છે (૨૭૦)

प्रत्यक्षमनुमानं च, प्रमाणद्वितयं पुनः ॥
चतुःप्रस्थानिका बौद्धाः, ख्याता वैभाषिकादयः ॥२७१॥

અર્થ—બૌદ્ધો પ્રત્યક્ષ અને અનુમાન એ બે પ્રમાણો માને છે વૈભાષિક, સૌત્રાંતિક, યોગાચાર અને માધ્યમિક એવા બૌદ્ધના ચાર પ્રકાર છે (૨૭૧)

अर्थो ज्ञानान्वितो वैभा-षिकेण बहु मन्यते ॥
सौत्रान्तिकेन प्रत्यक्ष-ग्राह्योऽर्थो न बहिर्मतः ॥२७२॥

અર્થ—વૈભાષિક લોકો જ્ઞાનવિષય વસ્તુમાત્રને માને છે સૌત્રાંતિક લોકો કેવળ પ્રત્યક્ષ પ્રમાણથી લેવાય એવી બાહ્ય વસ્તુને માનતા નથી (૨૭૨)

आचारसहिता बुद्धि-र्योगाचारस्य संमता ॥
केवलां संविदं स्वस्थां, मन्यन्ते माध्यमाः पुनः ॥२७३॥

અર્થ—યોગાચાર મતવાળાને આચાર સહિત બુદ્ધિ સંમત છે માધ્યમિક લોકો કેવળ પોતાને વિષેજ રહેલી સંવિદ (જ્ઞાન) માને છે (૨૭૩)

रागादिज्ञानसंतान-वासनोच्छेदसंभवा ॥
चतुर्णामपि बौद्धानां, मुक्तिरेषा प्रकीर्तिता ॥२७४॥

અર્થઃ—રાગાદિકના જ્ઞાનની સંતાનની વાસનાનો સમૂળ ઉચ્છેદ થવાથી મુક્તિ થાય છે, એ વાત ઉપર કહેલા ચારે પ્રકારનાં બૌદ્ધોને સંમત છે. (૨૭૪)

कृतिः कमण्डलुर्मौण्ड्यं, चीरं पूर्वाह्णभोजनम् ॥
संघो रक्ताम्बरत्वं च, शिश्रिये बौद्धभिक्षुभिः ॥२७५॥

અર્થ—ચામડું, કમંડલુ, મુંડન, ચીર, બપોરની અંદર જમવું, સંઘ, અને રાતાં વસ્ત્ર એટલી વસ્તુ બૌદ્ધ મતના યતિયોએ માનેલી છે. (૨૭૫)

(अथ सांख्यमतम् ।)

सांख्यैर्देवः शिवः कैश्चि-न्मतो नारायणः परैः ॥
उभयोः सर्वमप्यन्य-त्तत्त्वप्रभृतिकं समम् ॥२७६॥

અર્થઃ—(હવે સાંખ્ય મત કહે છે.) કેટલાક સાંખ્ય લોકો શિવને અને કેટલાક વિષ્ણુને દેવ માને છે. બાકી તત્ત્વની ગણતિ વિગેરે સર્વે બન્નેને મતે સરખું જ છે. (૨૭૬)

सांख्यानां स्युर्गुणाः सत्त्वं, रजस्तम इति त्रयः ॥
साम्यावस्था भवेत्येषां, त्रयाणां प्रकृतिः पुनः ॥२७८॥

અર્થઃ—સાંખ્યને મતે સત્ત્વ, રજ અને તમ એ ત્રણ ગુણ છે. અને એ ત્રણ ગુણોની સ્થિતિ સરખા પ્રમાણમાં હોય તો તે પ્રકૃતિ કહેવાય છે. (૨૭૮)

प्रकृतेः स्यान्महत्तत्त्व-महंकारस्ततोऽपि च ॥
पञ्च बुद्धीन्द्रियाणि स्यु-श्चक्षुरादीनि पञ्च च ॥२७९॥

कर्मेन्द्रियाणि वाक्पाणि-चरणोपस्थपायवः ॥
मनश्च पञ्चतन्मात्राः, शब्दो रूप रसस्तथा ॥२८०॥
स्पर्शो गन्धोऽपि तेभ्यः स्या-त्पृथ्व्यात्र भूतपञ्चकम् ॥
इय प्रकृतिरेतस्याः परस्तु पुरुषो मतः ॥२८१॥
पञ्चविंशतितत्त्वीयं, नित्य सांख्यमते जगत् ॥
प्रमाणत्रितय चात्र, प्रत्यक्षमनुमागमः ॥२८२॥

અર્થ—પ્રકૃતિથી મહત્તત્ત્વ, મહત્તત્ત્વથી અહંકાર, અહંકારથી પાંચ જ્ઞાનેન્દ્રિયો, પાંચ કર્મેન્દ્રિયો, શબ્દ, રૂપ, રસ, સ્પર્શ અને ગંધ એ પાંચ તન્માત્ર તથા મન થાય છે પાંચ તન્માત્રથી અનુક્રમે પૃથ્વી, જળ, તેજ, વાયુ અને આકાશ એ પાંચ મહાભૂતો થાય છે એ સર્વ ચોવીસ તત્ત્વ રૂપ પ્રકૃતિનો વિસ્તાર થયો, અને એ પ્રકૃતિથી તદન વેગળો રહેલો પુરૂષ પચીશમો એ સર્વ મળી પચીશ તત્ત્વોથી થએલુ જગત્ સાંખ્યને મતે છે તથા પ્રત્યક્ષ, અનુમાન અને ઉપમાન મળી ત્રણ પ્રમાણ એમને મતે છે (૨૭૯) (૨૮૦) (૨૮૧) (૨૮૨)

यदैव जायते भेदः, प्रकृतेः पुरुषस्य च ॥
मुक्तिरुक्ता तदा सांख्यैः, ख्यातिः सैवः च भण्यते॥२८३॥

અર્થ—જ્યારે પ્રકૃતિ અને પુરૂષ જુદા પડે ત્યારે મોક્ષ થાય છે, એમ સાંખ્યો કહે છે અને તે મોક્ષજ "ખ્યાતિ" એવા નામથી ઓળખાય છે (૨૮૩)

सांख्यः शिखी जटी मुण्डी, कषायाद्यम्बरोऽपि च ॥
वेषेऽनास्थैव सांख्यस्य, पुनस्तत्त्वे महाग्रहः ॥२८४॥

અર્થઃ—સાંખ્ય મતના સંન્યાસિયો શિખાધારી (ચોટલીને ધારણ કરનારા). જટાધારી અને મુંડી પણ હોય છે, તથા ભગવા વિગેરે વસ્ત્રો પહેરે છે. તાત્પર્ય, સાંખ્ય લોકોને વેષની દરકાર નથી, પણ ઉપર કહેલા તત્ત્વની બાબતમાં ઘણોજ આગ્રહ છે. (૨૮૪)

(अथ शैवमत ।)

शिवस्य दर्शने तर्का–वुभौ न्यायविशेषकौ ॥
न्याये षोडशतत्त्वी स्या–त्षट्तत्त्वी च विशेषके ॥२८५॥

અર્થઃ— શૈવ દર્શનમાં ન્યાય અને વૈશેષિક એ બે નામના તર્કમત છે. ન્યાય મતમાં સોળ તત્ત્વો છે, અને વૈશેષિક મતમાં છ તત્ત્વો છે. (૨૮૫)

अन्योऽन्यतत्त्वान्तर्भावा–द्वयोर्भेदोऽस्ति नास्ति वा ॥
द्वयोरपि शिवो देवो, नित्यः सृष्ट्यादिकारकः ॥२८६॥

અર્થઃ—એક જણ સોળ અને બીજો છ તત્ત્વ માનતો હોવાથી માહો માહે ભેદ છે, તોપણ સોળ તત્ત્વોનો છ તત્ત્વોમાં સમાવેશ (સમાસ) થતો હોવાથી એનો ભેદ નહીં જેવો છે. બન્નેને મતે શિવ દેવ છે. તે નિત્ય તથા સૃષ્ટિ, સ્થિતિ (રક્ષા) અને સંહારનો કર્તા છે. (૨૮૬)

नैयायिकानां चत्वारि, प्रमाणानि मतानि च ॥
प्रत्यक्षमागमोऽन्यच्चा–नुमानमुपमापि च ॥२८७॥

અર્થ—પ્રત્યક્ષ, અનુમાન, ઉપમાન અને શબ્દ એ ચાર પ્રમાણ ન્યાય મતે છે (૨૮૭)

प्रमाण च प्रमेय च, संशयश्च प्रयोजनम् ॥
दृष्टान्तोऽप्यथ सिद्धान्ता-वयवौ तर्कनिर्णयौ ॥२८८॥
वादो जल्पो वितण्डा च, हेत्वाभासाश्छलानि च ॥
जातयो निग्रहस्थाना-नीति तत्त्वानि षोडश ॥२८९॥

અર્થ—૧ પ્રમાણ, ૨ પ્રમેય, ૩ સંશય, ૪ પ્રયોજન, ૫ દૃષ્ટાંત, ૬ સિદ્ધાંત, ૭ અવયવ, ૮ તર્ક, ૯ નિર્ણય, ૧૦ વાદ, ૧૧ જલ્પ, ૧૨ વિતંડા, ૧૩ હેત્વાભાસ, ૧૪ છળ, ૧૫ જાતિ અને ૧૬ નિગ્રહસ્થાન એ સોળ પદાર્થ ન્યાયમતે છે (૨૮૮) (૨૮૯)

वैशेषिकमते ताव-त्प्रमाणत्रितय भवेत् ॥
प्रत्यक्षमनुमान च तार्तीयिकमथागम ॥२९०॥

અર્થ—પ્રત્યક્ષ, અનુમાન અને શબ્દ એ ત્રણજ પ્રમાણ વૈશેષિકને મતે છે (૨૯૦)

द्रव्य गुणस्तथा कर्म, सामान्य सविशेषकम् ॥
समवायश्च षट्तत्त्वी, तद्व्याख्यानमथोच्यते ॥२९१॥

અર્થ—૧ દ્રવ્ય, ૨ ગુણ, ૩ કર્મ, ૪ સામાન્ય, ૫ વિશેષ અને ૬ સમવાય એ ૬ પદાર્થ વૈશેષિકને મતે છે (૨૯૧)

द्रव्य नवविध प्रोक्त, पृथिवीजलपावकाः ॥
वायुराकाशमात्मा च, गगन मन एव च ॥२९२॥

અર્થઃ—૧ પૃથ્વી, ૨ જળ, ૩ તેજ, ૪ વાયુ, ૫ આકાશ, ૬ કાળ, ૭ દિશા, ૮ આત્મા અને ૯ મન એ નવ દ્રવ્ય (વૈશેષિકમતે) છે. (૨૯૨)

नित्यानित्यानि चत्वारि, कार्यकारणभावतः ॥
व्योम दिक्काल आत्मा च, मनो नित्यानि पञ्च च॥२९३॥

અર્થઃ—પૃથ્વી, જળ, તેજ અને વાયુ એ ચાર દ્રવ્ય કારણ રૂપથી નિત્ય અને કાર્યરૂપથી અનિત્ય છે. અને આકાશ, દિશા, કાલ, આત્મા તથા મન એ પાંચ દ્રવ્ય કેવળ નિત્યજ છે. (૨૯૩)

स्पर्शो रूपं रसो गन्धः, संख्याथ परिमाणकम् ॥
पृथक्त्वमथ संयोगो, विभागश्च परत्वकम् ॥ २९४ ॥
अपरत्वं बुद्धिसौख्ये, दुःखेच्छे द्वेषयत्नकौ ॥
धर्माधर्मौ च संस्कारो गुरुत्वं द्रवतेत्यपि ॥ २९५ ॥
स्नेहः शब्दो गुणा एवं, विंशतिश्चतुरन्विता ॥

અર્થ—૧ સ્પર્શ, ૨ રૂપ, ૩ રસ, ૪ ગંધ, ૫ સંખ્યા, ૬ પરિમાણ, ૭ પૃથક્ત્વ, ૮ સંયોગ, ૯ વિભાગ, ૧૦ પરત્વ, ૧૧ અપરત્વ, ૧૨ બુદ્ધિ, ૧૩ સૌખ્ય ૧૪ દુઃખ, ૧૫ ઇચ્છા ૧૬ દ્વેષ, ૧૭ પ્રયત્ન ૧૮ ધર્મ, ૧૯ અધર્મ ૨૦ સંસ્કાર, ૨૧ ગુરૂત્વ ૨૨ દ્રવત્વ ૨૩ સ્નેહ અને ૨૪ શબ્દ એ ચોવીશ ગુણ (વૈશેષિક મતે) છે, (૨૯૪) (૨૯૫)

अथ कर्माणि वक्ष्यामः, प्रत्येकमभिधानतः ॥ २९६ ॥
उत्क्षेपणापक्षेपणा-कुञ्चनं च प्रसारणम् ॥
गमनानीति कर्माणि, पञ्चोक्तानि तदागमे ॥ २९७ ॥

અર્થ —હવે પ્રત્યેકનુ નામ દઈને કર્મના ભેદ કહીશુ ૧ ઉત્ક્ષેપણ (ઉપર ફેંકવુ), ૨ અપક્ષેપણ (નીચે ફેંકવુ), ૩ આકુંચન (ખેંચી લેવુ, ૪ પ્રસારણ (પહોળુ કરવુ) અને ગમન (જવુ) એવા પાચ પ્રકારના કર્મ વૈશેષિક મતે છે (૨૯૬) (૨૯૭)

सामान्यं भवति द्वेधा, परं चैवापरं तथा ॥
परमाणुषु वर्तन्ते, विशेषा नित्यारत्वयः ॥ २९८ ॥

અર્થ —પર તથા અપર એ બે પ્રકાર સામાન્યના છે નિત્ય દ્રવ્ય ઉપર રહેનારા વિશેષ પરમાણુને વિષે તે રહે છે (૨૯૮)

भवेत्युतसिद्धाना—माधाराधेयवर्तिनाम् ॥
सम्बन्ध समवायाख्य, इह प्रत्ययहेतुकः ॥ २९९ ॥

અર્થ —અવયવઅને અવયવી, ગુણ અને ગુણી ઇત્યાદિક અયુતસિદ્ધ વસ્તુ માહોમાહે રહેલો જે આધારાધેય ભાવરૂપ સબંધ, તે વૈશેષિક મતે સમવાય કહેવાય છે સમવાયની સાથેજ વસ્તુનું જ્ઞાન થાય છે (૨૯૯)

विषयेन्द्रियबुद्धीना, वपुष सुखदुःखयो ॥
अभावादात्मसंस्थान,मुक्तिर्नैयायिकैर्मता ॥३००॥

અર્થ —શબ્દ, સ્પર્શ વિગેરે વિષય, ઇંદ્રિય, બુદ્ધિ, શરીર, સુખ અને દુ ખ એટલી વસ્તુનો અત્યત અભાવ થયા પછી જે એક આત્માનુ રહેવું તેને નૈયાયિક (ન્યાયમતના) લોકો મુક્તિ કહે છે (૩૦૦)

चतुर्विंशतिवैशेषि-कगुणान्तर्गुणा नव ॥
बुद्ध्यादयस्तदुच्छेदो, मुक्तिर्वैशेषिकी तु सा ॥३०१॥

અર્થઃ—ચોવીશ ગુણોમાંના ૧ બુદ્ધિ, ૨ સુખ, ૩ દુઃખ, ૪ ઇચ્છા, ૫ દ્વેષ, ૬ પ્રયત્ન, ૭ ધર્મ ૮ અધર્મ અને ૯ સંસ્કાર એ નવ ગુણોનો સમૂળ નાશ થવાથી મુક્તિ થાય છે, એમ વૈશેષિક લોકો કહે છે. (૩૦૧)

आधारभस्मकौपीन-जटायज्ञोपवीतिनः ॥
मन्त्राचारादिभेदेन, चतुर्धा स्युस्तपस्विनः ॥३०२॥

અર્થઃ—આધાર (પાત્ર) ભસ્મ, કૌપીન (લંગોટી), જટા અને યજ્ઞોપવીત (જનોઇ) એટલાં વાનાં ધારણ કરનારા તાપસ મંત્રના તથા આચારના ભેદથી ચાર પ્રકારના હોય છે. (૩૦૨)

शैवाः पाशुपताश्चैव, महाव्रतधरास्तथा ॥
तुर्याः कालमुखा मुख्या, भेदा एते तपस्विनाम् ॥३०३॥

અર્થઃ—૧ શૈવ, ૨ પાશુપત ૩ મહાવ્રતધર અને ૪ કાલમુખ એ મુખ્ય ચાર પ્રકાર તાપસોના છે. (૩૦૩)

(अथ नास्तिकमतम् ।)

पञ्चभूतात्मकं वस्तु, प्रत्यक्षं च प्रमाणकम् ॥
नास्तिकानां मते नान्य-दात्मामुत्र शुभाशुभम् ॥३०४॥

અર્થઃ—નાસ્તિકને મતે સર્વે વસ્તુ પંચ મહાભૂતથી બનેલી છે, અને એક પ્રત્યક્ષ માત્ર પ્રમાણ છે બાકી આત્મા, પરલોક, પુણ્ય તથા પાપ નથી. (૩૦૪)

प्रत्यक्षमविसंवादि, ज्ञानमिन्द्रियगोचरः ॥
लिङ्गतोऽनुमितिर्प्रमा-दिव वह्नेरवस्थितिः ॥ ३०५ ॥
अनुमानं त्रिधा पूर्व-शेषसामान्यतो यथा ॥
वृष्टेः सस्य नदीपूरा-द्वृष्टिरस्ताद्रवेर्गतिः ॥ ३०६ ॥
ख्यातं सामान्यतः साध्य-साधन चोपमा यथा ॥
स्याद्गोवद्गवयः सास्ना-दिमत्त्वमुभयोरपि ॥ ३०७ ॥
आगमश्चाप्तवचन, स च कस्यापि कोऽपि च ॥
वाच्याप्रतीतौ तत्सिद्ध्यै, प्रोक्तार्थापत्तिरुत्तमैः ॥३०८॥
पट्टः पीनो दिवा नात्ति, रात्रावित्यर्थतो यथा ॥
पञ्चप्रमाणासामर्थ्ये, दस्तुसिद्धिरभावतः ॥ ३०९॥

અર્થ —ખોટું ન પડે એવું જ્ઞાન તે પ્રત્યક્ષ પ્રમાણ કહેવાય છે ઇંદ્રિયોને જે ચોત ચોતાના વિષયનું જ્ઞાન થાય છે તે પ્રત્યક્ષમાં સમાય છે જેમ ધુમાડા ઉપરથી અગ્નિની કલ્પના કરાય છે, તેમ કોઇ હેતુ ઉપરથી કલ્પના કરવી તે અનુમાન કહેવાય છે ૧ પૂર્વ અનુમાન, ૨ શેષ અનુમાન અને સામાન્ય અનુમાન એવા અનુમાનના ત્રણ પ્રકાર છે ૧ વરસાદ અનુકૂળ વરસે ત્યારે "ભાવિકાળે પાક સારો થશે" એવી કલ્પના કરવી તે પૂર્વ અનુમાન ૨ નદીનું પૂર જોઇ તે ઉપરથી વરસાદ થયાની કલ્પના કરવી તે શેષ અનુમાન ૩ રવિનો અસ્ત(આથમવું) જોઇ તે ઉપરથી સૂર્યની ગતિની કલ્પના કરવી એ સામાન્ય અનુમાન સાદૃશ્યથી (સરખામણીથી) સાધ્ય વસ્તુ સિદ્ધ કરવી તે ઉપમિતિ કહેવાય છે જેમ બળદ અને રોઝ બન્નેના સાસ્નાદિક અવયવ

સરખા હોવાથી બળદ સરખો રોઝ કહેવાય છે, તે ઉપમિતિ જાણવી. આપ્ત (રાગ દ્વેષરહિત) પુરૂષનું જે વચન તે આગમ (શબ્દ) કહેવાય છે. આપ્ત પુરૂષો તે તે મતવાદીના જુદા જુદા છે. શબ્દાર્થનું જ્ઞાન બરોબર ન થતું હોય તો તે બરોબર થવા ને અર્થે જેપ્રમાણ લેવાય છે, તે અર્થાપત્તિ કહેવાય છે. જેમ "ભણનારો બાળક દિવસે ભોજન કરતો નથી. તો પણ પુષ્ટ છે." એ વાક્યનો બરોબર અર્થ થવાને અર્થે જે "રાત્રિએ ભોજન કરે છે" એવી કલ્પના કરાય છે તે અર્થાપત્તિ કહેવાય છે. આ પાંચે પ્રમાણોથી જે વસ્તુ સિદ્ધ ન થતી હોય તે અભાવ અનુપલબ્ધિ, પ્રમાણથી સિધ્ધ કરાય છે. (જેમ ઓરડામાં ઘટ નથી. કારણ કે, જણાતો નથી.) એ અભાવ પ્રમાણ જાણવું. (૩૦૫) (૩૦૬) (૩૦૭) (૩૦૮) ૩૦૯)

स्थापितं वादिभिः स्वं स्वं, मतं तत्त्वप्रमाणतः ॥
तत्त्वं सत्परमार्थेन, प्रमाणं तत्त्वसाधकम् ॥३१०॥

અર્થઃ—વાદીઓએ તત્ત્વના પ્રમાણથી પોતપોતાના મતનું આ રીતે સ્થાપન કર્યું છે. પરમાર્થથી જે સત્ય તે તત્ત્વ અને તત્ત્વનું સાધક તે પ્રમાણ કહેવાય છે. (૩૧૦)

सन्तु शास्त्राणि सर्वाणि सरहस्यानि दूरतः ॥
एकमप्यक्षरं सम्यक्, शिक्षितं निष्फलं नहि ॥३११॥

અર્થ—સર્વે શાસ્ત્રો તથા તેના રહસ્યો દૂર રહો. એક અક્ષર પણ સમ્યક્ પ્રકારે શીખાયો હોય, તો તે પણ નિષ્ફળ જાય નહીં. (૩૧૧)

विमर्शपूर्वकं स्वार्थ-स्थापकं हेतुसंयुतम् ॥
स्तोकं कार्यकरं स्वादु, निगर्व निपुणं वदेत् ॥ ३१२ ॥

અર્થ —ડાહ્યા માણસે સ્વાર્થને સ્થાપન કરનારૂ, થોડુ, મીઠુ, અહંકાર વિનાનુ, અને કાર્યને સાધે એવુ વચન સયુક્તિક અને વિચાર પૂર્વક બોલવુ (૩૧૨)

उक्तः समतिभो ब्रूया-त्सभायां सूनृतं वचः ॥
अनुत्कण्ठमदैन्यं च, सार्थकं हृदयंगमम् ॥ ३१३ ॥

અર્થ—સભામા કોઇ પુછે તો ડાહ્યા માણસે સાચુ, મીઠુ, ઉતલકાઇ તથા દીનતા વિનાનુ વચન લોકોના મન ખેચાય એવી રીતે સાર્થક બોલવુ (૩૧૩)

उदारं विकथोन्मुक्तं, गम्भीरमुचितं स्थिरम् ॥
अपशब्दोज्झितं लोक-मर्मास्पर्शि सदा वदेत् ॥३१४॥

અર્થ —ઉદાર, વિકથા વિનાનુ, ગભીર, ઉચિત, સ્થિર, અપશબ્દ વિનાનુ અને કોઇના મર્મને સ્પર્શ ન કરે એવુ વચન સદાકાળ બોલવુ (૩ ૪)

सजलं शुद्धसंस्कारं, सत्यानृतमनाहतम् ॥
स्पष्टार्थं मार्दवोपेत-महसंश्च वदेद्वचः ॥ ३१५॥

અર્થ —ડાહ્યા માણસે મળધને અનુસરતુ, વ્યાકરણના નિયમ પ્રમાણે શુદ્ધ, કોઇ રીતે બાધ ન આવે તથા સ્પષ્ટ અર્થ જણાય એવુ કોમળ વચન વ્યવહારની બાબતમા ન હસતા બોલવુ (૩૧૫)

प्रस्तावेऽपि कुलीनानां, हसनं स्फुरदोष्ठकम् ॥
अट्टहासोऽतिहासश्च, सर्वथानुचितः पुनः ॥३१६॥

અર્થઃ—કુલીન પુરૂષોનું હસવું અવસર આવે હોઠ પહોળા થાય એટલુ જ હોય છે. પણ મર્યાદા ઉપરાંત ખડખડ હસવું એ સર્વથા અનુચિત્ત છે. (૩૧૬)

न गर्वः सर्वथा कार्यो, भट्टादीनां प्रशंसया ॥
व्युत्पन्नश्लाघया कार्यः, स्वगुणानां तु निश्चयः ॥३१७॥

અર્થઃ—ડાહ્યા માણસે યાચક વિગેરે લોકોના મુખથી પોતાની પ્રશંસા સાંભળી ગર્વ ન કરવો, પણ પંડિતોના મુખથી પોતાની પ્રશંસા સાંભળી પોતાના ગુણનો નિશ્ચય કરવો. (૩૧૭)

कस्यापि चाग्रतो नैव, प्रकाश्यः स्वगुणः स्वयम् ॥
अतुच्छत्वेन तुच्छोऽपि, वाच्यः परगुणः पुनः ॥३१८॥

અર્થઃ—ડાહ્યા માણસે કોઇની આગળ પોતાનો ગુણ પોતે પ્રગટ ન કરવો. તેમજ પારકો ગુણ સ્વલ્પ માત્ર હોય તો પણ મોટો કરીને વખાણવો. (૩૧૮)

अवधार्या विशेषोक्तिः, परवाक्येषु कोविदैः ॥
नीचेनं स्वं प्रति प्रोक्तं, यत्तन्नानुवदेत्सुधीः ॥३१९॥

અર્થઃ—ડાહ્યા પુરૂષોએ પારકા વચનનો ગૂઢ અભિપ્રાય બરોબર ધ્યાનમાં લેવો. તથા નીચ માણસ ભૂડું વચન બોલે તો પણ પોતે તેને ભૂંડાં વચન ન કહેવાં. (૩૧૯)

अनुवादादरासूया–न्योक्तिसम्भ्रमहेतुषु ॥
विस्मयस्तुतिवीप्सासु, पौनरुक्त्यं स्मृतौ न च ॥३२०॥

અર્થ —અનુવાદ, આદર, અદેખાઇ, અન્યોક્તિ, સભ્રમ, હેતુ, આશ્ચર્ય, સ્તુતિ, વીપ્સા અને સ્મરણ એટલામા કોઇ કારણ હોય તો પુનરુકિત દોષ નથી (૩૨૦)

न च प्रकाशयेद्गुह्यं, दक्षः स्वस्य परस्य च ॥
चेत्कर्तुं शक्यते मौन–मिहामुत्र च तच्छुभम् ॥३२१॥

અર્થ —ડાહ્યા માણસે પોતાની તથા પારકી ગુહ્ય વાત પ્રગટ ન કરવી કારણ જો મૌન રહી શકાય તો આ લોકમાં તથા પરલોકમા શુભ થાય (૩૨૧)

सदा मूकत्वमासेव्य, वाच्यमानेऽन्यमर्मणि ॥
श्रुत्वा तथा स्वमर्माणि, बाधिर्यं कार्यमुत्तमै ॥३२२॥

અર્થ —જ્યા પારકા મર્મ (નિંદાના વચન) બોલાતા હોય ત્યા ડાહ્યા માણસોએ હમેશા મૌન રહેવુ, તથા પોતાના મર્મ બોલાતા હોય તે સાભળી પોતે બહેરા થવુ. અર્થાત તે વચન સાભળ્યા અણસાભળ્યા જેવા કરવા (૩૨૨)

कालत्रयेऽपि यत्किंचि–दात्मयन्ययवर्जितम् ॥
एवमेतदिति स्पष्टं, न वाच्य चतुरेण तत् ॥ ३२३ ॥

અર્થ —ચતુર પુરુષે જે કોઇ બાબતમા પોતાની ખાત્રી ખાત્રી ન હોય, તે બાબતમા " એ એમજ છે " એવો પોતાનો સ્પષ્ટ અભિપ્રાય ન જણાવો (૩૨૩)

परार्थस्वार्थराजार्थ–कारकं धर्मसाधकम् ॥
वाक्यं प्रियं हितं वाच्यं, देशकालानुगं बुधैः ॥३२४॥

અર્થઃ—ડાહ્યા માણસોએ મધુર, હિતકારિ, પોતાનું, પારકું તથા રાજાનું કાર્ય કરી શકે, તથા ધર્મને સાધે એવું વચન દેશ તથા કાળ ધ્યાનમાં લઇને બોલવું. (૩૨૪)

स्वामिनां स्वगुरूणां च, नाधिक्षेप्यं वचो बुधैः ॥
कदाचिदपि चैतेषां, जल्पतां नान्तरा वदेत् ॥ ३२५ ॥

અર્થઃ—ડાહ્યા માણસોએ પોતાના ધણીનાં તથા ગુરૂના વચન ઉપર તકરાર ન કરવી. તથા તેઓ (ધણી અથવા ગુરૂ) વાત કરતા હોય તો વચમાં કોઇ કાળે પણ ન બોલવું. (૩૨૫)

आरभ्यते नरैर्यच्चा–कार्यं कारयितुं परैः ॥
दृष्टान्तान्योक्तिभिर्वाच्यं, तदग्रे पूर्वमेव तत् ॥३२६॥

અર્થઃ—બીજા પાસે કાંઇ કાર્ય કરાવવું હોય તો, પ્રથમ-જ તે કાર્ય અન્યોક્તિથી તથા દૃષ્ટાંતથી તેની આગળ કહેવું. (૩૨૬)

यदि वान्येन केनापि तत्पूर्वं जल्पितं भवेत् ॥
प्रमाणमेव तत्कार्यं, स्वप्रयोजनसिद्धये ॥३२७॥

અર્થઃ—હરકોઇ કાર્યમાં આપણા વચનને મળતું બીજા કોઇનું વચન હોય, તો તે પોતાના કાર્યની સિદ્ધિને અર્થે પ્રમાણજ કરવું. (૩૨૭)

यस्य कार्यमशक्यं स्या–त्तस्य प्रागेव कथ्यते ॥
नैहिरैयाहिरां कार्यो, वचोभिर्वितथैः परः ॥३२८॥

અર્થ.—જેનુ કામ આપણાથી નહી થઇ શકે એમ હોય, તેને પ્રથમજ તેમ કહેવુ મિથ્યા વચન કહીને ફોગટ તેને ધક્કા ન ખવરાવવા (૩૨૮)

न भाष्य नैव कस्यापि, वक्तव्य द्विषता तु चेत् ॥
उच्यते तदपि प्राज्ञै-रन्योक्तिच्छलभङ्गिभिः ॥३२०॥

અર્થ —કોઈનુ વાકુ ન બોલવુ ડાહ્યા માણસોએ શત્રુ ને વાકુ વચન કહેવુ હોય તો તે પણ અન્યોક્તિથી, કાઇ મિષથી અથવા વ્યગ્યોક્તિથી કહેવુ, (૩૨૯)

शिक्षा तस्मै प्रदातव्या, यो भवेत्तत्र यत्नवान् ॥
गुरु साहसमेतद्धि, कथ्यते यदपृच्छत. ॥ ३३० ॥

અર્થ —જે શીખામણ પ્રમાણે ચાલવામા ઘણી કાળજી લેતો હોય, તે માણસનેજ શીખામણ દેવી વિના પૂછે કોઇને કાઇ કહેવુ, એ મોટુ સાહસ કહેવાય છે (૩૩૦)

मातृपित्रातुराचार्या-तिथिभर्तृतपोधनैः ॥
वृद्धबालावलस्त्रैद्य-पत्यदायादकिंकरैः ॥ ३३१ ॥
श्वशुराश्रितसम्बन्धि-वयस्यैः सार्धमन्वहम् ॥
वाग्विग्रहमकुर्वाणो, विजयेत जगत्रयम ॥३३२॥

અર્થ —પોતાના માબાપ, માદો માણસ, આચાર્ય, અતિથિ ધણી તપસ્વી, વૃદ્ધ બાળક, દુર્બળ માણસ, વૈદ્ય, પોતાના છોકરા, ભાઈગત, ચાકર, સસરો આશ્રિત, સબધી અને મિત્ર એટલા લોકોની સાથે નિરતર કલહ ન કરે, તે પુરૂષ ત્રણ લોકને જીતે (૩૩૧) (૩૩૨)

(अथ लोक्यानालोक्यप्रक्रमः ।)

पश्येदपूर्वतीर्थानि, देशान्वस्त्वन्तराणि च ॥
लोकोत्तरान्नरांश्छाया-पुरुषं शकुनं तथा ॥ ३३३ ॥

અર્થઃ—(હવે જોવા લાયક તથા ન જોવા લાયક શું તેનો વિચાર કહે છે.) અપૂર્વ તીર્થો, જુદા જુદા દેશો, નાનાવિધ વસ્તુઓ, અલૌકિક પુરૂષ, છાયા પુરૂષ તથા શકુન એટલાં વાનાં જોવાં. (૩૩૩)

न पश्येत्सर्वदादित्यं, ग्रहणं चार्कसोमयोः ॥
नेक्षेताम्भो महाकूपे, संध्यायां गगनं तथा ॥३३४॥

અર્થઃ—સર્વકાળ સૂર્ય તરફ ન જોવું. તથા સૂર્યનું અને ચંદ્રનું ગ્રહણ, મોટા કુવાની અંદર રહેલું જળ તથા સંધ્યાકાળને સમયે આકાશ ન જોવું. (૩૩૪)

मैथुनं मृगया नग्नां, स्त्रियं प्रकटयौवनाम् ॥
पशुक्रीडां च कन्यानां; योनिं नालोकयेन्नरः ॥३३५॥

અર્થઃ—ડાહ્યા પુરૂષે સ્ત્રીપુરૂષનો સંભોગ, નગ્ન અવસ્થામાં રહેલી તરૂણ સ્ત્રી, કન્યાની યોનિ અને પશુની ક્રીડા એટલાં વાનાં ન જોવાં. (૩૩૫)

न तैले न जले नास्त्रे, न मूत्रे रुधिरे नच ॥
वीक्षेत वदनं विद्वा-नित्थमायुस्त्रुटिर्भवेत् ॥३३६॥

અર્થઃ—જાણ પુરૂષ પોતાના મુખનું પ્રતિબિંબ તેલમાં, જળમાં, હથિયારમાં, મૂત્રમાં તથા લોહીમાં ન જુવે. કારણકે, તેમ કરવાથી આયુષ્ય ત્રૂટે છે. (૩૩૬)

(अथ निरीक्षणमक्रमः ।)

ऋजु शुभ्र प्रसन्नस्य, रौद्र तिर्यक् च कोपिनः ॥
सविकास सपुण्यस्या–धोमुख पापिनः पुनः ॥ ३३७॥
शून्यं व्यग्रमनस्कस्य, वलित चानुरागिणः ॥
मध्यस्थं वीतरागस्य, सरल सज्जनस्य च ॥ ३३८ ॥
असमुख निलक्षस्य, सविकारं तु कामिनः ॥
भ्रूभङ्गवक्रमीर्ष्यालो–र्भ्रान्त मत्तस्य सर्वतः ॥ ३३९ ॥
जलाविल च दीनस्य, चञ्चल तस्करस्य च ॥
अलक्षितार्थ निद्रालो–र्विनस्त भीरुकस्य च ॥ ३४० ॥
बहवो वीक्षणस्यैवं, भेदाः कति तु दर्शिताः ॥

અથ —(હવે દૃષ્ટિનો વિચાર કહે છે) પ્રસન્ન માણસની દ્રષ્ટિ (નજર) સરળ તથા ઉજળી, ક્રોધી માણસની ભય ઉપજાવનારી અને વાંકી, પુણ્યશાળી પુરૂષની પ્રફુલ્લિત, પાપી પુરૂષની નીચી, વ્યગ્ર ચિત્ત વાળાની શુન્ય, રાગી પુરૂષની પાછી વળનારી, મધ્યસ્થ પુરૂષની મધ્ય પ્રદેશે રહેનારી, સજ્જન પુરૂષની સરળ, વિલખા માણસની આડી અવળી, કામી પુરૂષની વિકારવાળી, અદેખાઈ કરનાર માણસની ભમરાના મરડવાથી વાંકી, મદોન્મત્ત પુરૂષની આમ તેમ ભમનારી, દીન પુરૂષની આંસુથી મલિન થએલી, ચોરની ચપળ, નિદ્રાળુ પુરૂષની ભાન વિનાની અને ડરી ગએલા માણસની આચકી ખાનારી હોય છે એવા દૃષ્ટિના ઘણા ભેદ છે તેમાથી અહીં કેટલાક દેખાડયા (૩૩૭) (૩૩૮) (૩૩૯) (૩૪૦)

(अथ नेत्रस्वरूपम् ।)

दृक्स्वरूपमथो वक्ष्ये, स्वभावोपाधिसंभवम् ॥३४१॥
रक्तत्वं धवलत्वं च, श्यामत्वमतिनिर्मलम् ॥
पर्यन्तपार्श्वतारासु, दृशोः शस्यं यथाक्रमम् ॥३४२॥

અર્થઃ—હવે સ્વભાવથી તથા કારણથી નીપજેલું આંખોનું સ્વરૂપ કહીશું. આંખોના છેડા રાતા તથા નિર્મળ સારા, કીકીના બે પડખા સફેદ તથા નિર્મળ સારા અને કીકી કાળી તથા નિર્મળ સારી. (૩૪૧) (૩૪૨)

हरितालप्रभैश्चक्री, नेत्रैर्नीलैरहंमदः ॥
रक्तैर्नृपः सितैर्ज्ञानी, मधुपिङ्गैर्महाधनः ॥३४३॥

અર્થઃ—હરતાળ સરખી આંખો હોય તો ચક્રવર્તી, નીલવર્ણ હોય તો અહંકારી, રાતી હોય તો રાજા, ધોળી હોય તો જ્ઞાની અને મધ સરખી ભૂરા રંગની હોય તો મોટો દ્રવ્યવાન્ થાય. (૩૪૩)

सेनाध्यक्षो गजाक्षः स्या-द्दीर्घाक्षश्चिरजीवितः ॥
विस्तीर्णाक्षो महाभोगी, कामी पारावतेक्षणः ॥३४४॥

અર્થઃ—હાથી સરખી આંખો હોય તો સેનાપતિ થાય, લાંબી આંખો હોય તો ચિરકાળ જીવે, પહોળી હોય તો સુખનો ઘણો ભોગવનાર થાય, અને પારેવા સરખી હોય તો કામી થાય. (૩૪૪)

नकुलाक्षा मयूराक्षा, मध्यमाः पुरुषाः पुनः ॥
काकाक्षा धूमराक्षाश्च, मण्डूकाक्षाश्च तेऽधमाः ॥३४५॥

અર્થ —નોળીઆ સરખી તથા મોર સરખી આખવાળા પુરૂષો મધ્યમ હોય છે કાગડા સરખી, દેડકા સરખી તથા ધૂમાડા સરખા રંગની આખવાળા માણસ અધમ હોય છે (૩૪૫)

दुष्टो दारुणदृष्टिः स्या–त्कुक्कुटाक्षः कलिप्रियः ॥
दृष्टिरोगी भुजङ्गाक्षो, मार्जाराक्षस्तु पातकी ॥ ३४६ ॥

અર્થ —ક્રૂર આખવાળો પુરૂષ દુષ્ટ, કૂકડા સરખી આખવાળો કજીઆખોર, સર્પ સરખી આખવાળો આખનો રોગી અને બિલાડી સરખી આખવાળો પાપી હોય છે (૩૪૬)

श्यामदृक्सुभगः स्निग्ध–लोचनो भोगभाजनम् ॥
स्थूलदृग्धीघनो दीन–दृष्टिः स्याद्‌गनो जनः ॥३४७॥

અર્થ —શ્યામ આખવાળો માણસ દૈવશાળી, સ્નિગ્ધ (ચોપડી) આખવાળો ભોગી, જાડી આખવાળો બુદ્ધિમાન્ અને દીન આખવાળો નિર્ધન હોય છે (૩૪૭)

निम्नयोः प्रचुरं प्रायः, स्तोकमुन्नतयोः पुनः ॥
वृत्तयोर्नेत्रयोरल्प–तरमायुस्तनूभृताम् ॥ ३४८ ॥

અર્થ —ઉંડી આખ હોય તો ઘણુંજ આયુષ્ય, ઉથલી આખ હોય તો અલ્પ આયુષ્ય અને ગોળ આખ હોય તો ઘણુંજ અલ્પ આયુષ્ય હોય છે (૩૪૮)

विवर्णैः पिङ्गलैर्भ्रान्तै–श्चञ्चलैरतिपूर्वकैः ॥
अधमाः स्युः कृशैरूक्षैः, सजलैर्निर्धनाः पुनः ॥३४९॥

અર્થઃ—ખરાબ વર્ણવાળી, ભૂરા રંગની ભમતી, અને ઘણી ચંચળ એવી આંખો જેની હોય તે અધમ હોય છે, તથા પાતળી લૂખી અને પાણીને ઝરતી એવી જેની આંખો હોય તે નિર્ધન હોય છે. (૩૪૯)

अचक्षुरेकचक्षुश्च, तथाकेकरनेत्रकः ॥
अथ काकरनेत्रः स्या–देषां क्रूरः परः परः ॥३५०॥

અર્થઃ—આંધળો, કાણો, ટેકરાક્ષ અને કાકરાક્ષ એ ચારેમાં ઉત્તરોત્તર અધિક ક્રૂર હોય છે. (૩૫૦)

भूतात्तस्य दृष्टिः स्या–त्प्रायेणोर्द्धविलोकिनी ॥
मीलिता मुद्गलार्तस्य, देवतात्तस्य दुःसहा ॥३५१॥

અર્થઃ—ભૂત વળગેલા માણસની દૃષ્ટિ પ્રાયે ઊંચું જોનારી હોય છે, મુદ્ગલ વળગેલા માણસની મીચાયલી હોય છે, અને દેવતા વળગેલા માણસની ઘણી આકરી હોય છે. (૩૫૧)

शाकिनीभिर्गृहीतस्या–धोमुखी च भयानका ॥
रेपलार्तस्य भीरुः स्या–च्छून्याधिकतरं चला ॥३५२॥

અર્થઃ—શાકિની વળગેલા માણસની દ્રષ્ટિ નીચું જોનારી તથા ભયાનક હોય છે. રેપલાથી પીડાયલા માણસની શુન્ય, ઘણી ચંચળ તથા બીકવાળી હોય છે. (૩૫૨)

अरुणा श्यामला वापि, जायते वातरोगिणः ॥
पित्तदोषवतः पीता, नीला च शुकपिच्छवत् ॥ ३५३ ॥

श्लेष्मलस्य तथा पाण्डु-मिश्रदोषस्य मिश्रिता ॥
दृष्टेः प्रतिदिनं भेदा, भवन्त्येवमनेकधा ॥ ३५४ ॥

અર્થ—વાત રોગથી પીડાયલા માણસની દૃષ્ટિ ગતી તથા શ્યામ વર્ણની હોય છે પિત્ત રોગથી પીડાયલા માણસની પીળી તથા પોપટના પીછ જેવી લીલા રંગની હોય છે કફ રોગથી પીડાયલા માણસની દૃષ્ટિ મિશ્ર હોય છે (૩૫૩) (૩૫૪)

(अथ च ङ्गमणक्रमः ।)

उद्यमेऽसत्यपि प्रायो, न व्रजेन्निष्फलं क्वचित् ॥
मुक्त्वा ताम्बूलमेकं च, भक्ष्यमन्यन्न गच्छता ॥३५५॥

અર્થ—(હવે જવા આવવાનો નિયમ કહે છે) ડાહ્યા માણસે ઉદ્યમ નહીં હોય તો પણ કોઇ ઠેકાણે વગર પ્રયોજને ન જવું અને માર્ગે ચાલતા એક તાંબૂલ વગર બીજુ કાઇ પણ ન ખાવું (૩૫૫)

युगमात्रान्तरन्यस्त-दृष्टिः पश्यन्पदे पदम् ॥
रक्षार्थं स्वशरीरस्य, जन्तूनां च सदा व्रजेत् ॥३५६॥

અર્થ—માણસ માર્ગે ચાલતા પોતાના શરીરની તથા બારમા છવોની રક્ષાને અર્થે ગાડાના ધોંસરા જેટલી આગળ દૃષ્ટિ રાખીને પગે પગે જોતા ચાલે (૩૫૬)

[illegible] गतिः सदा ॥
[illegible] ॥३५७॥

અર્થ—[illegible]

ન ચાલવું. ગજ, હંસ તથા બળદ એમની ચાલ પ્રમાણે ચાલવું. ઘણું પ્રશસ્ત છે. (૩૫૭)

कार्याय चलितः स्थाना-द्वहन्नाडीपदं पुरः ॥
कुर्वन् वाञ्छितसिद्धीनां, जायते भाजनं नरः ॥३५८॥

અર્થઃ—માણસ, કોઇ કામને અર્થે પોતાના સ્થાનકથી જવું હોય ત્યારે જે બાજુની નાડી વહેતી હોય તે બાજુનો પગ આગળ મૂકે તો વાંછિત ફળની સિદ્ધિ પામે. (૩૫૮)

एकाकिना न गन्तव्यं, कस्याप्येकाकिनो गृहे ॥
नैवोपरिपथेनापि, विशेकस्यापि वेश्मनि ॥३५९॥

અર્થઃ—એકલા માણસને ઘેર એકલાએ ન જવું. તથા કોઇના પણ ઘરમાં ઉપર ચઢીને ન જવું. (૩૫૯)

रोगिवृद्धद्विजान्धानां, धेनुपूज्यक्ष्माभुजाम् ॥
गर्भिणीभारभुग्नानां, दत्त्वा मार्गं व्रजेद्बुधः ॥ ३६० ॥

અર્થઃ—ડાહ્યા માણસે રોગી, વૃદ્ધ, બ્રાહ્મણ, આંધળો, ગાય, પૂજ્ય પુરૂષ, રાજા, ગર્ભિણી સ્ત્રી અને માથે ભાર હોવાથી નમેલા એટલા લોકોને પ્રથમ માર્ગ દઇને પછી પોતે જવું. (૩૬૦)

धान्यं पक्वमपक्वं च, पूजार्हं मन्त्रमण्डलम् ॥
न त्यक्तोद्वर्तनं लङ्घ्यं, स्नानाम्भोऽसृक्शवानि च॥३६१॥

અર્થઃ—ડાહ્યા પુરૂષે કાચું અથવા પાકું ધાન્ય, પૂજવા યોગ્ય મંત્રમંડલ, નાંખી દીધેલું ઉવટણું, ન્હાવાનું પાણી,

લોહી તથા રાવ (મડદુ) એટલા વાના ઉલ્લંઘીને ન જવુ (૩૬૧)

निष्ठ्यूतश्लेष्मविण्मूत्र-ज्वलद्वह्निभुजंगमम् ॥
मनुष्यं सायुधं धीमान्, कदाप्युल्लङ्घयेन्न च ॥ ३६२॥

અર્થ—ડાહ્યા પુરૂષે થુંક, કફ, વિષ્ઠા, મૂત્ર, સળગાયલો અગ્નિ, સર્પ અને શસ્ત્રધારી મનુષ્ય એટલા વાના કોઇ કાળે પણ ન ઉલ્લંઘવા (૩૬૨)

क्षेमार्थी वृक्षमूलं न, निशीथिन्यां समाश्रयेत ॥
नासमाप्ते नरो दूरं, गच्छेदुत्सवसूतके ॥३६३॥

અર્થ—કલ્યાણના અર્થી પુરૂષે રાત્રિને સમયે વૃક્ષને તળે ન રહેવુ તેમજ ઉત્સવ અથવા સૂતક પૂરૂ થયા વગર દૂર ગમન ન કરવુ (૩૬૩)

क्षीरं भुक्त्वा रतं कृत्वा, स्नात्वा हत्वा गृहाङ्गनाम् ॥
वान्त्वा निष्ठीव्य चाक्रोशं, श्रुत्वा च प्रचलेन्नहि ॥३६४॥

અર્થ—વિવેકી પુરૂષે દૂધ વાપરીને, સ્ત્રીસભોગ કરીને, ન્હાઇને, પોતાની સ્ત્રીને તાડના કરીને, વમન કરીને, થુંકીને, તથા કોઇને રોતા સાંભળીને પ્રયાણુ ન કરવુ (૩૬૪)

कारयित्वा नरः क्षौर-मश्रुमोक्षं विधाय च ॥
गच्छेद् ग्रामान्तरं नैव, शकुनापाटवे न च ॥३६५॥

અર્થ—વિવેકી પુરૂષે ક્ષૌર (હજામત) કરાવીને આંસુ આણીને તથા સારૂ શુકન જોઇને પરગામ ન જવું (૩૬૫)

नद्याः परतटाद्गोष्ठा-त्क्षीरद्रोः सलिलाशयात् ॥
निवर्तेतात्मनोऽभीष्टा-ननुव्रज्य प्रवासिनः ॥३६६॥

અર્થઃ—ડાહ્યા માણસે પોતાના સગા વહાલા પરગામ જતા હોય તો તેમને નદીના પાર સુધી, ગાયોના સ્થાનક સુધી, રાયણ, વડ પ્રમુખ દૂધવાળા વૃક્ષ સુધી અથવા જળાશય સુધી વળાવી પાછું આવવું. (૩૬૬)

नासहायो नचाज्ञातै-र्नैव दासैः समं तथा ॥
नातिमध्यंदिने नार्ध-रात्रे मार्गे बुधो व्रजेत् ॥३६७॥

અર્થઃ—ડાહ્યા માણસે કોઇને સાથે લીધા વિના, અજાણ્યા માણસોની સાથે અથવા દાસ લોકોની સાથે, તદન બપોરે અથવા રાત્રિને સમયે માર્ગે ન જવું. (૩૬૭)

नाशम्बलश्चलेन्मार्गे, भृशं सुप्यान्न वासके ॥
सहायानां च विश्वासं, विदधीत न धीधनः ॥३६८॥

અર્થઃ—બુદ્ધિમાન્ પુરૂષે ભાતું લીધા વિના માર્ગે ચાલવું નહીં. જ્યાં મુકામ કર્યો હોય ત્યાં ઘણી ઉંઘ ન લેવી. તથા સાથે લોક હોય તેમનો વિશ્વાસ ન કરવો. (૩૬૮)

माहिषाणां खरोष्ट्राणां, धेनूनां चाधिरोहणम् ॥
खेदस्पृशापि नो कार्य-मिच्छता श्रियमात्मनः ॥३६९॥

અર્થઃ—પોતાને અર્થે લક્ષ્મીની ઇચ્છા કરનાર પુરૂષે થાક લાગે તો પણ પાડા, ગધેડાં, ઉંટ તથા ગાય એમના ઉપર ન બેસવું. (૩૬૯)

गजात्करसहस्रेण, शकटात्पञ्चभिः करैः ॥
शृङ्गिणोऽश्वाच्च गन्तव्य, दूरेण दशभिः करैः ॥३७०॥

અર્થ —માર્ગે જતા હાથીથી એક હજાર હાથ, ગાડાથી પાચ હાથ અને શીંગડાવાળા જાનવરથી તથા ઘોડાથી દશ હાથ, છેટે ચાલવુ (૩૭૦)

न जीर्णा नावमारोहे-न्नद्यामेको विशेन्नहि ॥
न चातुच्छमतिर्गच्छे-त्सोदर्येण समं पथि ॥३७१॥

અર્થ —બુદ્ધિશાળી પુરૂષે, જુના વહાણ ઉપર ન ચઢવુ, નદીમા એકાએક ન પેસવુ, તથા સગાભાઈ સાથે માર્ગ ન ચાલવુ. (૩૭૧)

न जलस्थलदुर्गाणि, विकटामटवीं न च ॥
न चागाधानि तोयानि, विनोपाय विलङ्घयेत् ॥३७२॥

અર્થ—જળમા અથવા સ્થળમા રહેલા કિલ્લાઓ, વિષમ અટવી તથા ઊંડુ પાણી એટલી વસ્તુનુ કાંઈ સાધન વિના ઉલ્લઘન ન કરવુ (૩૭૨)

क्रूरैरारक्षकैः कर्णे-जपैः कारुजनैस्तथा ॥
कुमित्रैश्च समं गोष्ठी, चर्या चाकालिकीं त्यजेत् ॥३७३॥

અર્થ —ક્રૂર, રાક્ષસ, ચુગલીખોર, કારૂલોક અને ખરાબ મિત્ર એમની સાથે કવખતે વાતચિત તથા ફરવુ હરવુ વર્જવુ (૩૭૩)

धूर्तावासे रते [illegible] न ॥
सदा गोष्ठी [illegible] पि च ॥३७४॥

અર્થઃ—ડાહ્યા પુરૂષોએ ઠગારાના ઘરમાં, વગડામાં, ગણિકાના ઘરમાં, ધર્મના સ્થાનકમાં તથા પાણીની પરબ ઉપર સદાકાળ વાતો ન કરવી. (૩૭૪)

वद्धवध्याश्रये द्यूत–स्थाने परिभवास्पदे ॥
भाण्डागारे न गन्तव्यं, परस्यान्तःपुरे न च ॥३७५॥

અર્થઃ—બંદીખાનું, ફાંશી દેવાનું સ્થાનક, જુગારીનું સ્થાનક, જ્યાં પોતાનો પરાભવ થાય એવું સ્થાનક, ભાંડાગાર તથા પારકું અંતપુર એટલા સ્થાનકમાં ન જવું. (૩૭૫)

अमनोज्ञे स्मशाने च, शून्यस्थाने चतुष्पथे ॥
तुषशुष्कतृणाकीर्णे, विषमावकरोत्करे ॥३७६॥
वृक्षाग्रे पर्वताग्रे च, नदीकूपतटे स्थितिम् ॥
न कुर्याद्भस्मकेशेषु, कपालाङ्गारकेऽपि वा ॥३७७॥

અર્થઃ—મનને ગમે તેવા સ્થાનકમાં, શ્મશાનમાં, શુન્ય સ્થાનકમાં, ચોવટામાં, ફોતરામાં તથા સૂકું ઘાસ જ્યાં પથરાયલું હોય તેવા સ્થાનકમાં, પેસતાં તથા નીકળતાં પીડા ઉપજાવનાર સ્થાનકમાં, કચરામાં, ખારી ભૂમિમાં, વૃક્ષ ઉપર, પર્વતની ટુંક ઉપર, નદીને અથવા કુવાને કાંઠે, રાખ, વાળ, ખોપરી તથા અંગારા જ્યાં હોય એવી જગોમાં ન રહેવું. (૩૭૬) (૩૭૭)

(अथ विशेषोपदेशक्रमः ।)

मन्त्रस्थानमनाकाश–मेकद्वारमसंकटम् ॥
निःशङ्कादि च कुर्वीत, दूरसंस्थे च यामिमे ॥३७८॥

અર્થ—જ્યાં ઉપરનો ભાગ ઉઘાડો ન હોય, પેસવા નીકળવાનું ઠામ એકજ હોય, ચોકીવાળાની બેઠક દૂર હોય, શંકા પ્રમુખ કરવા જેવું કાંઈ ન હોય, તથા નકસાન ન હોય, ત્યાં મળત્યાગ કરવાનું સ્થાનક કરવું (૩૭૮)

मलस्थाने बहुस्तम्भे, कदाचिन्निपतेत्परः ॥
गवाक्षे भित्तिपात–श्रुतिः सप्रतिभित्तिके ॥ ३७९ ॥

અર્થ—મળત્યાગ કરવાના સ્થાનકમાં જો ઘણા થાંભલા હોય, તો કદાચ કોઈ ત્યાં સંતાઈ રહે, તથા ગોખ અથવા પાસની ભીંત નજીક હોય તો મળત્યાગ કરવાનો અવાજ સંભળાય (૩૭૯)

शून्यागारे भूमिगृहे स्थाने, गत्वा वा काननान्तरे ॥
मलोत्सर्गं [illegible], [illegible] पश्चिमदिशि ॥३८०॥

અર્થ—[illegible] શૂન્ય ઓરડા [illegible] વાળો જેની પાસ અથવા [illegible] પશ્ચિમ [illegible] મળત્યાગ કરી (૩૮૦)

मार्गस्थाने [illegible] ॥
मल न कुर्वीत, [illegible] ॥३८१॥

અર્થ—[illegible] તથા [illegible] દિશે [illegible] મળત્યાગ ન કરી [illegible] (૩૮૧)

भूतानि [illegible] ॥
भूतानि [illegible], न मार्गे [illegible] ॥३८२॥

અર્થઃ—જેમાં ક્રોધી, ગુણના લોલુપ અને કૃપણ લોકો ઘણા હોય, તે લોકસમુદાય પોતાનો સ્વાર્થ ખોઈ બેસે છે. (૩૮૨)

सर्वकार्येषु सामर्थ्य–माकारस्य च गोपनम् ॥
धृष्टत्वं च सदाभ्यस्तं, कर्तव्यं विजिगीषुणा ॥३८३॥

અર્થઃ—જયની વાંછા કરનાર પુરૂષે સર્વ કાર્યોમાં પોતે શક્તિમાન્ થવું, મનની વાત ચહેરા ઉપરથી ન જણાય તેમ કરવું, તથા હમેશાં ધીઠાઈનો અભ્યાસ કરવો. (૩૮૩)

भवेत्परिभवस्थानं, पुमान् प्रायो निराकृतिः ॥
विशेषाडम्बरस्तेन, न मोच्यः सुधिया क्वचित् ॥३८४॥

અર્થઃ—આડંબર ન રાખનાર માણસની પ્રાયે માનખંડના થાય છે. માટે બુદ્ધિશાળી પુરૂષે પોતાનો આડંબર કોઈપણ સ્થળે ન મૂકવો. (૩૮૪)

विश्वासो नैव कस्यापि, कार्य एषां विशेषतः ॥
ज्ञानिमस्तपिताशेष–धर्मविच्छेदमिच्छताम् ॥३८५॥
स्वमतारोपणोत्पन्न–रौद्रार्तध्यानधारिणाम् ॥
पाखण्डिनां तथा क्रूर–सत्वमत्यन्तवासिनाम् ॥३८६॥
धूर्तानां प्राग्विरुद्धानां, बालानां योषितां तथा ॥
स्वर्णकारजलाग्नीनां, प्रभूणां कूटभाषिणाम् ॥३८७॥
नीचानामलसानां च, पराक्रमवतां तथा ॥
कृतघ्नानां च चौराणां नास्तिकानां च जातुचित् ॥३८८॥

અર્થઃ—વિવેકી પુરૂષે કોઈનો વિશ્વાસ ન રાખવો. તથા

તેમા પણ કેવલિભાષિત ધર્મની ઉત્થાપના કરનારા, પોતાનું મત સ્થાપવાના કદાગ્રહથી આર્તરૌદ્ર ધ્યાન કરનારા, પાખંડી, નિર્દય, પરન દેશના રહીશ, ઠગ, એકવાર આપણી સાથે વાંકા થએલો, બાળક, સ્ત્રીઓ, સોની, જળ, અગ્નિ, સ્વામી, અસત્ય બોલનારા, નીચ લોકો, આળસુ, પરાક્રમી, કૃતઘ્ન, ચોર અને નાસ્તિક એટલા લોકોનો તો કોઇ કાળે પણ બિલકુલ વિશ્વાસ ન કરવો (૩૮૫-૩૮૮)

कि कुलं किं श्रुतं किं वा, कर्म कौ च व्ययागमौ ॥
का वाक्शक्तिः कियान् क्लेशः, किं च बुद्धिविजृम्भितम्॥३८९
का शक्तिः के द्विपः कोऽहं, कोऽनुबन्धश्च संमतिः ॥
कोऽभ्युपायः सहायाः के, कियन्मात्रं फलं तथा॥३९०॥
कौ कालदेशौ का चैव, संपत्प्रतिहते परैः ॥
वाक्ये मर्मोत्तरं मन्त्रः, किंच स्यादिति चिन्तयेत् ॥३९१॥

અર્થ--મારૂ કુળ કેવુ ? શાસ્ત્રનો અભ્યાસ કેટલો ? કાર્ય કેવું ? આવક જાવક કેટલી ? મારા વચનની શક્તિ કેટલી ? કાર્યમા કલેશ કેટલો ? આપણુ બુદ્ધિવૈભવ કેટલુ ? શક્તિ કેટલી ? શત્રુ કયા છે ? હુ કોણ છુ ? હમણા પ્રસગ કેવો છે ? ઉપાય કયો છે ? સહાય કોણ છે ? ફળ કેટલુ નીપજશે ? દેશ તથા કાળ ક્યા છે ? સામગ્રી કઈ છે ? મારા શત્રુ મારા વચનને તોડી પાડશે તો હુ તુરત શો ઉત્તર આપુ ? ડાહ્યા માણસે એટલી બાબતોનો વિચાર કરવો (૩૮૯) (૩૯૦) (૩૯૧)

यत्पार्श्वे स्थीयते नित्यं, गम्यते वा प्रयोजनात् ॥

गुणाः स्थैर्यादयस्तस्य, व्यसनानि च चिन्तयेत् ॥३९२॥

અર્થઃ—આપણે જેની પાસે હમેશાં રહિયે, અથવા કારણસર જેની પાસે હમેશાં જઇયે, તેનામાં ઠરેલપણું વિગરે ગુણ છે, અથવા દોષ છે, એ વાતનો વિચાર કરવો. (૩૯૨)

उत्तमैका सदारोप्या, प्रसिद्धिः काचिदात्मनि ॥

अज्ञातानां पुरे वासो, युज्यते न कलावताम् ॥३९३

અર્થઃ—ડાહ્યા પુરૂષોએ ઉત્તમ એવી કાંઇક પણ પોતાની પ્રસિદ્ધિ રાખવી, કળાવાન્ (હુસણી) પુરૂષોને નગરના એક ખુણામાં પડી રહેવું ઉચિત નથી. (૩૯૩)

कालकृत्यं न मोक्तव्य-मतिखिन्नैरपि ध्रुवम्

नाप्नोति पुरुषार्थानां, फलं क्लेशाजितः पुमान् ॥३९४॥

અર્થઃ—ઘણો ખેદ થાય તો પણ જે સમયે જે કામ કરવાનું તે કદાપિ ન છોડવું. કારણકે કલેશને વશ થએલો માણસ ઉદ્યમનું ફળ પામી શકતો નથી. (૩૯૪)

उच्चैर्मनोरथाः कार्याः, सर्वदैव मनस्विना ॥

विधिस्तदनुमानेन, संपदे यतते यतः ॥३९५॥

અર્થઃ—વિવેકી પુરૂષે હમેશાં મોટા મનોરથ કરવા. કારણકે, દૈવ (નશીબ), જેના જેવા મનોરથ તેને તેવી ફલ સંપદા આપવાનો પ્રયત્ન કરે છે. (૩૯૫)

कुर्यान्न कर्कशं कर्म, क्षमाशालिनि सज्जने ॥
प्रादुर्भवति सप्ताचि-र्मथिताच्चन्दनादपि ॥३९६॥

અર્થ—સત્પુરૂષો ક્ષમાશીળ (ઉપદ્રવ થાય તે મૂગે મોઢે ખમી શકે એવા) છે, એમ જાણી તેમની સાથે ક્રૂરપણુ ન કરવુ કારણકે, સુગંધી ચદનનુ મથન કરે તો તેમાથી પણ અગ્નિ નીકળે છે (૩૯૬)

दृष्ट्वा चन्दनतां यातान्, शाखोटादीनपि द्रुमान् ॥
मलयाद्रौ ततः कार्या, महद्भिः सह संगतिः ॥३९७॥

અર્થ—ડાહ્યા માણસે મલય પર્વત ઉપરના સાગના તથા બીજા વૃક્ષ પણ ચદન સરખા થએલા જોઈને મોટા પુરૂષોની સોબત કરવી (૩૯૭)

शुभोपदेशदातारो, वयोवृद्धा बहुश्रुताः ॥
कुशला धर्मशास्त्रेषु, पर्युपास्या मुहुर्मुहुः ॥३९८॥

અર્થ—મોટા પડિત, ધર્મ શાસ્ત્રમા નિપુણ, સારો ઉપદેશ દેનાર અને પાકી ઉમરના એવા લોકોની વારવાર સેવા કરવી (૩૯૮)

इहामुत्र विरुद्ध य-त्तत्कुर्वाण नर त्यजेत् ॥
आत्मान यः स्वय हन्ति, त्रायते स कथ परम ॥३००॥

અર્થ—આ લોકમા તથા પરલોકમા વિરૂદ્ધ એવુ કાર્ય કરનાર માણસથી દૂર રહેવુ કારણકે જે માણસ પોતાનો ઘાત કરે છે, તે બીજાનુ રક્ષણ શી રીતે કરે ? (૩૯૯)

शौर्येण वा तपोभिर्वा, विद्यया वा धनेन वा ॥
अत्यन्तमकुलीनोऽपि, कुलीनो भवति क्षणात् ॥४००॥

અર્થઃ—માણસ ઘણા હીન કુળમાં થયો હોય તોપણ પરાક્રમથી, તપસ્યાથી, વિદ્યાથી અથવા ધનથી ક્ષણ માત્રમાં સારા કુલીન લોકોમાં ગણાય છે. (૪૦૦)

कुर्यान्नात्मानमत्युच्च-मायासेन गरीयसा ॥
नतश्चेदवपातः स्या-दुःखाय महते तदा ॥४०१॥

અર્થઃ—ડાહ્યા માણસે પોતાને ઘણી મહેનતથી ઘણે મોટે દરજ્જે ન ચઢાવવો. કારણ કે, જો તે, તે દરજ્જાથી પાછો નીચે પડે તો પાર વિનાનું દુખ થાય. (૪૦૧)

दैविकैर्मानुषैर्दोषैः, प्रायः कार्यं न सिद्ध्यति ॥
दैविकं वारयेच्छान्त्या, मानुषं स्वधिया पुनः ॥४०२॥

અર્થઃ—કોઈપણ કાર્ય પ્રાયે દેવતાના અથવા મનુષ્યોના કરેલા ઉપદ્રવથી સિદ્ધ થતું નથી. માટે દૈવિક ઉપદ્રવ શાસ્ત્રોક્ત શાંતિકર્મ કરીને તથા માનુષ ઉપદ્રવ પોતાની બુદ્ધિથી દૂર કરવો. (૪૦૨)

प्रतिपन्नस्य न त्यागः, शोकश्च गतवस्तुनः ॥
निद्राच्छेदश्च कस्यापि, न विधेयः कदाचन ॥४०३॥

અર્થઃ—કબૂલ કરેલા વચનનો ભંગ, ગઈ વસ્તુનો શોક અને કોઇનો નિદ્રાભંગ એ ત્રણ વાનાં કોઈકાળે પણ ન કરવાં, (૪૦૩)

अकुर्वन् वहुभिर्वैर, दद्याद्बहुमते मतम् ॥
गतास्वादानि कृत्यानि, न कुर्याद्बहुभिः समम् ॥४०४॥

અર્થ—ઘણાની સાથે વૈર ન કરતા બહુમત વાતને પોતાની સમતિ આપવી તથા સ્વાદ વિનાના કાર્યો ઘણા લોકોની સાથે ન કરવા (૪૦૪)

शुभक्रियासु सर्वासु, मुख्यैर्भाव्य मनीषिभिः॥
नराणां कपटेनापि, निःस्पृहत्व फलप्रदम् ॥४०५॥

અર્થ—ડાહ્યા પુરૂષોએ સર્વ શુભ કાર્યોમા આગેવાન થવુ માણસ કપટથી નિરિચ્છ પણુ દેખાડે તોપણ તે તેને ફળદાયિ થાય છે (૪૦૫)

द्रोहप्रयोजने नैव, भाव्यमत्युत्सुकैर्नरैः ॥
कदाचिदपि कर्तव्यः, सुपात्रेषु न मत्सरः ॥४०६॥

અર્થ—સારા પુરૂષોએ મત્સરથી બની શકે એવુ કાર્ય કરવા અતિશય ઉત્સુક ન થવુ તથા સુપાત્ર મનુષ્યની સાથે કોઈ કાળે પણ મત્સર ન કરવો (૪૦૬)

स्वजातिकष्ट नोपेक्ष्यं, तदैक्य कार्यमादरात् ॥
मानिनां मानहानिःस्या–त्तद्दोषादयशोऽपि च ॥४०७॥

અર્થ—માન પામેલા પુરૂષે પોતાની જાતિના દુખ તરફ આંખમીચામણી ન કરવી પણ જાતિનુ ખતથી ઐક્ય કરવુ કારણ કે, તેમ ન કરે તો તેની માન ખડના અને અપયશ પણ થાય (૪૦૭)

नश्यन्ति ज्ञातयः प्रायः, कलहादितरेतरम् ॥
मिलिता एव वर्धन्ते, कमालिन्य इवाम्भसि ॥४०८॥

અર્થઃ—જ્ઞાતીઓ એક બીજાની સાથે કલહ કરવાથી આયે પાયમાલ થાય છે. અને તેજ જો એક બીજાની સાથે સંપમાં રહે તો જેમ જળમાં કમલિની વધે છે, તેમ વૃદ્ધિ પામે છે. (૪૦૮)

दारिद्र्योपद्रुतं मित्रं, नरं साधर्मिकं सुधीः ॥
ज्येष्ठं जातिगुणैर्जामि-मनपत्यां च पूजयेत् ॥४०९॥

અર્થઃ—ડાહ્યા માણસે દરિદ્રી અવસ્થામાં આવેલા પોતાના મિત્રની તથા સાધર્મીની, પોતાની અપેક્ષાએ જાતિથી અને ગુણથી શ્રેષ્ઠ એવા માણસની અને પોતાની વાંઝણી બેનની આસનાવાસના કરવી, (૪૦૯)

सारमिथ्यान्यवस्तूनां, विक्रयाय क्रयाय च ॥
कुलानुचितकार्याय, नोद्यच्छेद्गौरवप्रियः ॥४१०॥

અર્થ—મોટાઇ જેને ગમતી હોય એવા પુરૂષે પારકી સારી નરસી વસ્તુ વેચવા અથવા ખરીદવા તથા પોતાના કુળને અનુચિત કાર્ય કરવા તૈયાર ન થવું. (૪૧૦)

स्वाङ्गवाद्यं तृणच्छेदं, व्यर्थं भूमिविलेखनम् ॥
नैव कुर्यान्नखैर्दन्त-नखराणां च घर्षणम् ॥४११॥

અર્થઃ—કાખ ન વગાડવી, શીસોટી ન મારવી, તથા બીજી કોઇપણ રીતે પોતાનું શરીર વાજીંત્રની પેઠે ન વગાડવું, કારણવિના તૃણના કટકા ન કરવા, વ્યર્થ પોતાના નખથી ભૂમિ ન ખોતરવી, અને નખથી નખ અથવા દાંત ન ઘસવા. (૪૧૧)

प्रवर्तमानमुन्मार्गे, स्वं स्वेनैव निवारयेत् ॥
किमम्भोनिधिरुद्वेलः, स्तस्मादन्येन वार्यते ॥४१२॥

અર્થ—પોતાનો આત્મા કુમાર્ગે જતો હોય તો તેને પોતેજ અટકાવવો. સમુદ્રની વેલા મર્યાદા ઉપરાંત ચઢતા તેને સમુદ્રજ અટકાવે છે, કે બીજો કોઇ અટકાવે છે ? (૪૧૨)

समानसहितं दान-मौचित्येनाञ्चितं वचः ॥
नयेन वर्य शौर्य च, त्रिजगद्वश्यकृत्त्रयम् ॥४१३॥

અર્થ—આદરમાન પૂર્વક દાન, અવસર યોગ્ય રૂડુ વચન અને ન્યાયસહિત શૌર્ય એ ત્રણ વાના ત્રણે જગતને વશ કરે એવા છે (૪૧૩)

अर्थादधिकतल्पापो, वेषहीनोऽधिकं धनी ॥
अशक्तो वैरकृत्त्वर्कै-र्महद्भिरुपहस्यते ॥४१४॥

અર્થ—પોતાની પાસે દ્રવ્ય જેટલુ હોય તે કરતા અધિક ઉજ્વળ વેષ પહેરનારો, મોટો ધનવાન્ છતા હલકો વેષ પહેરનારો અને પોતે અસમર્થ છતા સમર્થ લોકોની સાથે વૈર કરનારો એ ત્રણ પુરૂષોનો મોટા લોકોમા ઉપહાસ (મશ્કરી) થાય છે (૪૧૪)

सर्वार्थसिद्धवित्ताशः, सदुपायेषु सस्पृही ॥
सत्वा शक्ती निरुद्योगो, नरः प्राप्नोति न श्रियम् ॥४१५॥

અર્થ—ચોરી પ્રમુખ કરવા થી દ્રવ્ય મેળવવાની આશા રાખનારો, ધન મેળવવાના સારા ઉપાયથી ધન મળે કે નહીં એવો ગર્વ રાખનારો અને શક્તિ છતાં ઉદ્યમ ન કરનારો માણસ લક્ષ્મી ન પામે (૪૧૫)

અર્થઃ—જે પોતાની બુદ્ધિની મોટાઇથી અહંકાર લાવે, ભાટ ચારણોના વખાણથી ગર્વ કરે, તથા લોભી એવા ધણી પાસેથી લાભની ઇચ્છા રાખે, તે ત્રણે પુરુષો દુર્બુદ્ધિ જાણવા. (૪૨૩)

दुष्टमन्त्रिणि निर्भीकः, कृतघ्नादुपकारार्थी ॥
दुर्नाथान्न्यायमाकाङ्क्ष-न्वृद्धिं लभेत सः ॥ ४२४ ॥

અર્થઃ—જે દુષ્ટ મંત્રિથી નિર્ધાસ્ત રહે, કૃતઘ્ન માણસ તરફથી કાંઇ ઉપકારની આશા રાખે, અને દુષ્ટ રાજા પાસેથી ન્યાય મળવાની ઇચ્છા કરે, તેની ચઢતી ન થાય. (૪૨૪)

अपथ्यसेवको रोगी, सद्वेषो हितवादिषु ॥
नीरोगोऽप्यौषधप्राशी, मुमूर्षुर्नात्र संशयः ॥४२५॥

અર્થઃ—જે રોગી છતાં પરહેજ ન રાખે, શીખામણ દેનારનો દ્વેષ કરે, તથા રોગી નહી છતાં વહેમથી ઔષધ ખાય, તેનું મરણ સમીપ આવ્યું એમાં શક નથી. (૪૨૫)

शुल्कदोऽपथगामी च, भुक्तिकाले प्रकोपवान् ॥
असेवाकृत्कुलमदा-त्त्रयोऽमीमन्दबुद्धयः ॥४२६॥

અર્થઃ—જે દાણ ટાળવાને અર્થે ચોર માર્ગે જાય, જે ભોજનને અવસરે ક્રોધ કરે, અને જે પોતાના કુળના મદથી ચાકરી ન કરે, તે ત્રણે પુરુષો મંદબુદ્ધિ હોય. (૪૨૬)

मित्रोद्वेगकरो नित्यं, धूर्तैर्विश्वास्य वञ्च्यते ॥
गुणी च मत्सरग्रस्तो, यस्तस्य विफलाः कलाः ॥४२७॥

અર્થ —જે હમેશા પોતાના મિત્રને ઉદ્વેગ ઉપજાવે, જેને ઠગ લોકો ભરોસો દઇ ઠગે, જે પોતે ગુણી છતા બીજા ગુણી લોકોની અદેખાઇ કરે, તે ત્રણે પુરૂષોની કળા નિષ્ફલ હોય. (૪૨૭)

चारुप्रियोऽन्यदाराथी, सिद्धेऽन्ने गमनादिकृत् ॥
निःस्वो गोष्ठीरतोऽत्यन्त, निर्बुद्धीना शिरोमणिः ॥४२८॥

અર્થ —જે પોતાની સ્ત્રી સુદર છતા પરસ્ત્રીને વાછે રસોઇ તૈયાર થયા પછી બહાર નીકળી જાય, અથવા બીજા કોઇ કામમા રોકાય, તથા પોતે દરિદ્રી છતા વાતો કરવામાં બહુ રૂચિ રાખે, તે પુરૂષ મુર્ખ લોકોનો સરદાર હોય (૪૨૮)

धातुवादे धनप्रेपी, रसिकश्च रसायने ॥
विषभक्षी परीक्षार्थं, त्रयोऽनर्थस्य भाजनम् ॥४२९॥

અર્થ—જે કિમિયામા ધન ખોવે, જે રસાયણ ઉપર પ્રીતિ રાખે, તથા જે પરીક્ષાને અર્થે વિષ ખાય, તે ત્રણે પુરૂષો અનર્થને પાત્ર હોય (૪૨૯)

परवश्यः स्वगुह्योक्ताद्, भृत्यभीरः कुकर्मणा ॥
घातकः स्वस्य कोपेन, पद्म दुर्यशसामपी ॥४३०॥

અર્થ —જે પોતાની છાની વાત કહીને પરવશ થાય, જે કુકર્મ કરી પોતાના ચાકરની ડર રાખે, તથા જે ક્રોધથી પોતાનુ નુકસાન કરે, તે ત્રણે પુરૂષો અપજસના સ્થાનક જાણવા (૪૩૦)

क्षणरागी गुणाभ्यासे, दोषेषु रसिकोऽधिकम् ॥
बहुहन्ताल्परक्षी च, मंदलालास्पदं नहि ॥४३१॥

અર્થઃ—જે માણસ ગુણનો અભ્યાસ કરવામાં ક્ષણ માત્ર રૂચિ કરે, જે દોષ કાઢવામાં ઘણી રૂચિ રાખે, તથા જે ઘણું ખોઇને થોડાની રક્ષા કરે, તે લક્ષ્મી ન પામે. (૪૩૧)

नम्रेषु नृपवन्मानी, सोत्साहो दुर्बलार्दने ॥
स्तब्धश्च बहुमानेन, न भवेज्जनवल्लभः ॥४३२॥

અર્થ—જે માણસ નમ્ર માણસની સાથે રાજાની પેઠે માન ધારણ કરે, જે દુબળા લોકોને ઉપદ્રવ કરવાના કામમાં ઘણો ઉત્સાહ ધારણ કરે, અને જે બહુ માન મળવાથી અહંકાર કરે, તે ત્રણે લોકપ્રિય ન થાય. (૪૩૨)

दुःखे दीनमुखोऽत्यन्तं, सुखे दुर्गतिनिर्भयः ॥
कुकर्मण्यपि निर्लज्जो, बालैरपि हस्यते —४३३॥

અર્થઃ— જે માણસ દુઃખ આવે દીન મુખ કરી બેસે, જે સુખી અવસ્થામાં દુર્ગતિની બીક ન રાખે, તથા જે કુકર્મ કરવામાં શરમ ન રાખે, તે ત્રણે પુરૂષોની બાળકો પણ મસ્કરી કરે છે. (૪૩૩)

धूर्तस्तुत्यात्मनि भ्रान्तः, कीर्त्यै च,पात्रपोषकः ॥
स्वहितेऽविमर्शी च, क्षयं यात्येव बालिशः ॥२३४॥

અર્થ—જે ઠગ લોકોના વખાણથી પોતે ભૂલ ખાય, કીર્તિને અર્થે કુપાત્રનું પોષણ કરે, અને પોતાના હિતનો વિચાર ન કરે, તે મૂર્ખ માણસ ક્ષયજ પામે. (૪૩૪)

विद्वानस्मीति वाचालः, सात्मोऽस्मीति चञ्चलः ॥
शूरोऽस्मीति च निःशङ्कः, समज्याया न राजते ॥४३५॥

અર્થ— જે "હુ વિદ્વાન્ છુ" એમ સમજી બહુ બકબકાટ કરે, હુ "મોટો ઉદ્યમી છુ" એમ સમજી બહુ ચાલાકી દેખાડે, તેથા "હુ શૂરો છુ" એમ સમજી કોઈનો ડર ન રાખે, તે પુરૂષ સભામા શોભ ન પામે (૪૩૫)

धर्मद्रोहेण सौख्येच्छु–रन्यायेन विवर्द्धिषुः ॥
श्रेयःपाथेयमुक्तोऽन्ते, नातिथिः सुगतेर्नरः ॥

અર્થ—જે માણસ ધર્મનો દ્રોહ કરીને સુખની ઇચ્છા કરે, પોતે અન્યાય કરી વધવાની વાછા રાખે, તથા અતકાળ આવે પુણ્યરૂપ ભાતુ પાસે ન રાખે, તે પુરૂષ સુગતિએ ન જાય (૪૩૬)

विकृतः सपदा प्राप्त्या, ज्ञमन्यो मुखरत्वतः ॥
दैवज्ञोक्त्या नृपत्वेच्छु–र्धीमद्भिर्न मरूस्यते ॥४३७॥

અર્થ—જે માણસ લક્ષ્મીની પ્રાપ્તિ થવાથી વિકાર પામે, વાચાળતાથી પોતાને પડિત માને, અને જોશીના કહેવાથી પોતે રાજ્યપદ પામવાની વાછા કરે, તેને ડાહ્યા માણસો વખાણતા નથી (૪૩૭)

क्लिष्टोक्त्यापि कविमन्यः, स्वश्लाघी भाषपर्षदि ॥
व्याचष्टे चाश्रुत शास्त्र, यस्तस्य मतये नमः ॥४३८॥

અર્થ—જે માણસ કોઈ ન સમજે એવા કિલષ્ટ વચન બોલી પોતાને કવિ માને, પડિત પુરૂષોની સભામા પોતાના

પોતેજ વખાણ કરે, તથા અણસાંભળેલા શાસ્ત્રની વ્યાખ્યા કરે, તે પુરૂષની બુદ્ધિને નમસ્કાર થાઓ. (૪૩૮)

उद्वेजकोऽतिचाटूक्त्या, मर्मस्पर्शी हसन्नपि ॥
निर्गुणो गुणिनिन्दाकृत्क्रकचप्रतिमः पुमान् ॥४३९॥

અર્થઃ—જે ઘણાં મીઠાં વચન બોલીને ત્રાસ ઉપજાવે, હસતાં હસતાં પારકાં મર્મ બોલે, અને પોતે નિર્ગુણી છતાં ગુણી પુરૂષોની નિન્દા કરે, તે પુરૂષ કરવત સરખો હોય. (૪૩૯)

प्रसभं पाठकोऽविद्वान्दातुरभिलाषुकः ॥
गातानवसरज्ञश्च, कपिकच्छूसमा इमे ॥४४०॥

અર્થઃ—જે પોતે અવિદ્વાન્ છતાં મોટા સ્વરથી ભણે, જે કૃપણ પુરૂષ પાસેથી ધનની અભિલાષા રાખે તથા જે અવસર જાણ્યા વિના ગાય, તે ત્રણે પુરૂષો કૌંચ સરખા હોય. (૪૪૦)

दूतो वाचिकविस्मारी, गीतकारी खरस्वरः ॥
गृहाश्रमरतो योगी, महोद्वेगकरास्त्रयः ॥४४१॥

અર્થઃ—જે દૂત થઇ સંદેશો ભૂલી જાય, જે ગવૈયો થઇ કઠોર સ્વરે ગાય, તથા જે યોગી થઇ ગૃહસ્થાશ્રમમાં રહે, તે ત્રણે પુરૂષો ઘણા ઉદ્વેગના કરનાર જાણવા. (૪૪૧)

ज्ञातदोषजनश्लाघी, गुणिनां गुणनिन्दकः ॥
राजाद्यवर्णवादी च, सद्योऽनर्थस्य भाजनम् ॥४४२॥

અર્થઃ—જેના દોષ પ્રગટ દેખાય તેનાં પણ જે વખાણ

કરે, ગુણી પુરૂષની નિંદા કરે, અને રાજા વિગેરેનો અવર્ણવાદ બોલે, તે તુરત સંકટમાં પડે (૪૪૨)

गृहछिद्रं धनं मन्त्रं, वित्तायुर्मर्मवञ्चनम् ॥
अपमानं स्वधर्मं च, गोपयेदष्ट सर्वदा ॥४४३॥

અર્થ—૧ ઘરનાં છિદ્ર, ૨ મંત્ર, ૩ ધન, ૪ આયુષ્ય, ૫ મર્મ વચન ૬ ઠગાઈ, ૭ અપમાન અને ૮ પોતાનો ધર્મ એ આઠ વાનાં હમેશાં ગોપવવાં (૪૪૩)

इत्येवं कथितमशेषजन्मभाजा-
माजन्म प्रतिपदमत्र यद्विधेयम् ॥
कुर्वन्तः सततमिदं च केऽपि धन्याः,
साफल्यं विदधति जन्मनो निजस्य ॥४४४॥

इति श्रीजिनदत्तसूरिविरचिते विवेकविलासे जन्मचर्यायां विशेषोपदेशो नामाष्टम उल्लासः ॥ ८ ॥

અર્થ—મનુષ્યોને આખા જન્મમાં પગે પગે જે કૃત્ય કરવું પડે છે, તે મેં આ રીતે કહ્યું કોઈ ધન્ય પુરૂષો ઉપર કહ્યા પ્રમાણે જે આચરશે, તો તે પોતાનો મનુષ્ય ભવ સફળ કરશે (૪૪૪)

ઇતિ શ્રી જીનદત્તસૂરિ વિરચિત વિવેકવિલાસની ગુર્જર ભાષાનો આઠમો ઉલ્લાસ સંપૂર્ણ. (૮)



अथ नवम उल्लासः ।

प्रत्यक्षमप्यमी लोकाः, प्रेक्ष्य पापविजृम्भितम् ॥
मूढाः किं न विरज्यन्ते, ग्रहिला इव दुर्ग्रहात् ॥१॥

અર્થ:—આ મૂઢ લોકો પાપનું ફળ પ્રત્યક્ષ જુવે છે, તોપણ કદાગ્રહથી ઘેલા જેવા થાય છે, પણ સંસાર ઉપર વૈરાગ્ય કેમ નથી પામતા? (૧)

वधेन प्राणिनां मद्य—पानेनानृतजल्पनैः ॥
चौर्यैः पिशुनभावैः स्या—त्पातकं श्वभ्रपातकम् ॥२॥

અર્થ:—જીવહિંસા, મદ્યપાન, અસત્ય ભાષણ, ચોરી અને ચાડી એ પાંચ મનુષ્યને નરકમાં પોચાડનારૂં અશુભ કર્મ બાંધે છે. (૨)

परवञ्चमहारम्भ—परिग्रहकदाग्रहैः ॥
परदाराभिषङ्गैश्च, पापं स्यात्तापवर्द्धनम् ॥३॥

અર્થ:—પારકાને ઠગવાથી, મોટો આરંભ કરવાથી, પરિગ્રહ રાખવાથી, કદાગ્રહથી અને પરસ્ત્રીના સંગથી સંતાપને વધારનારૂં પાપ કર્મ બંધાય છે. (૩)

अभक्ष्यैर्विकथालापै—रसन्मार्गप्ररूपणैः ॥
अनात्मयन्त्रणैश्चापि, स्यादेनस्तेन तत्त्यजेत् ॥४॥

અર્થ:—અભક્ષ્ય વસ્તુનું ભક્ષણ, વિકથા અને ખોટી પ્રરૂપણા કરવાથી તથા પોતાના આત્માને વશ ન રાખવાથી પાપ બંધાય છે, માટે તેનો ત્યાગ કરવો. (૪)

लेश्याभिः कृष्णकापोत-नीलाभिर्दुष्टचिन्तनैः ॥
ध्यानाभ्यामार्तरौद्राभ्यां, दुःखकृत्कलुषं भवेत् ॥५॥

અર્થ — કૃષ્ણ, કાપોત અને નીલ એ ત્રણ લેશ્યાથી, માઠા અધ્યવસાયથી તથા આર્ત રૌદ્ર ધ્યાનથી દુ:ખને ઉપજાવનારૂ પાપ બંધાય છે (૫)

क्रोधो विजितदावाग्निः, स्वस्यान्यस्य च घातकः ॥
दुर्गतेः कारणं क्रोध-स्तस्माद्वर्ज्यो विवेकिभिः ॥६॥

અર્થ — ક્રોધ દાવાનળ કરતા ચઢિયાતો છે કારણ કે, તે પોતાનો તથા પરનો નાશ કરે છે, અને દુર્ગતિનું કારણ છે, માટે વિવેકી પુરૂષોએ તે વર્જવો (૬)

कुलजातितपोरूप-बललाभश्रुतश्रियाम् ॥
मदात्प्राप्नोति नान्येव, प्राणी हीनानि मूढधीः ॥७॥

અર્થ — અજ્ઞાની માણસ, ૧ કુલ, ૨ જાતિ, ૩ તપસ્યા, ૪ રૂપ, ૫ બળ, ૬ લાભ, ૭ શાસ્ત્ર અને ૮ લક્ષ્મી એ આઠ વસ્તુનો મદ કરે, તો તેજ વસ્તુ પરભવે ઘણી હલકી પામે (૭)

दौर्भाग्यजननी माया, माया दुर्गतिवर्तनी ॥
नृणां स्त्रीत्वप्रदा माया, ज्ञानिभिस्त्यज्यते ततः ॥ ८ ॥

અર્થ — માયા (કપટ) દોર્ભાગ્યને ઉત્પન્ન કરનારી, દુર્ગતિને પમાડનારી તથા પુરૂષને સ્ત્રીનો જન્મ આપનારી છે, માટે જ્ઞાની પુરૂષો તેનો ત્યાગ કરે છે (૮)

काञ्जिकेन सितं यादृग्, दुग्धं सूक्तेन यादृशम् ॥
क्रियते गुणसंघात, पुंसां लोभेन तादृशः ॥ ९ ॥

અર્થઃ—સફેદ વસ્ત્ર કાજળમાં બોળવાથી જેમ મલિન થાય છે. તથા દૂધ આછણથી જેમ બગડે છે, તેમ પુરૂષના સર્વે ગુણ લોભથી મલિન થાય છે, તથા બગડે છે. (૯)

भव कारागृहनिभे, कषाया यामिका इव ॥
जीवः किं तेषु जाग्रत्सु, मोक्षमाप्नोति बालिशः ॥ १० ॥

અર્થઃ—સંસાર બંદીખાના સરખો છે, અને ક્રોધાદિક ચાર કષાય પોળિયા સરખા છે. માટે જ્યાં સુધી કષાયરૂપ પોળિયા જાગતા હોય, ત્યાંસુધી જીવ સંસારરૂપ બંદીખાનામાંથી શી રીતે છૂટે ? (૧૦)

शौर्यं, गाम्भीर्यमौदार्यं, ध्यानमध्ययनं तपः ॥
सकलं सफलं पुंसां, यदि चेन्द्रियनिग्रहः ॥११॥

અર્થઃ—જો માણસે પોતાની ઇંદ્રિયો જીતી હોય, તો તેની શૂરવીરતા, ગંભીરતા, ઉદારતા, શુભ ધ્યાન, ભણવું ગણવું અને તપસ્યા એ સર્વે સફળ છે. (૧૧)

पापात्पङ्गुः कुणिः पापा—त्पापाद्विषयलोलुपः ॥
दुर्भगः पुरुषः पापा—त्पापात्षण्ढश्च दृश्यते ॥ १२ ॥

અર્થઃ—માણસ પૂર્વ ભવે કરેલા પાપથી પાંગળો, ઠુંઠો, ઘણો વિષયી, દુર્ભાગી અને નપુંસક થાય છે. (૧૨)

प्रेष्यः पापान्मली पापा—त्कुष्ठी पापाज्जनो भवेत् ॥
पापादस्फुटवाक्पापा—न्मूकः पापाच्च निर्धनः ॥१३॥

અર્થઃ—માણસ પાપથીજ પારકો દાસ, માલિન, કોઢિયો, બોબડો, મૂગો અને દરિદ્રી થાય છે. (૧૩)

जायते नारकस्तिर्य-गकुलीनो विमूढधीः ॥
चतुर्वर्गफलैर्वन्ध्यो, रोगग्रस्तश्च पापतः ॥१४॥

અર્થ —માણસ પાપથીજ નારકી, તિર્યંચ, હીનકુલનો, મતિમંદ તથા ધર્મ, અર્થ, કામ મોક્ષ એ ચારે પુરૂષાર્થથી ભ્રષ્ટ અને રોગી થાય છે (૧૪)

यदन्यदपि संसारे, जीवः प्राप्नोत्यसुन्दरम् ॥
तत्समस्तं मनोदुःख-हेतुः पापविजृम्भितम् ॥१५॥

અર્થ —આ સંસારમાં બીજું પણ જીવને જે માઠું તથા મનને દુ:ખ દેનારૂં થાય છે, તે સર્વ પાપનું ફલ જાણવું (૧૫)

इति गदितमशेषं कारणं पातकस्य,
प्रतिफलमपि तस्य श्वभ्रपातादि दुष्टम् ॥
सकलसुखसमूहोल्लासकामैर्मनुष्यै-
र्न खलु मनसि धार्यः पापहेतूपदेशः ॥१६॥

इति श्रीजिनदत्तसूरिविरचिते श्रीविवेकविलासे पापोत्पत्तिकारण नाम नवम उल्लासः ॥ ९ ॥

અર્થ —આ રીતે પાપનું સર્વ કારણ અને તેનું નરક-પાતાદિ દુષ્ટ ફળ પણ કહ્યું જે પુરૂષો સર્વ સુખના સમુદાય-નો ઉદય પમાડવાની વાંછા રાખતા હોય, તેમણે પાપનો હેતુ એવો ઉપદેશ મનમાં ન રાખવો (૧૬)

ઈતિ શ્રીજિનદત્તસૂરિવિરચિત વિવેકવિલાસની ગુજર ભાષાનો નવમો ઉલ્લાસ સંપૂર્ણ (૯)

अथ दशम उल्लासः ।

प्रत्यक्षमन्तरं दृष्ट्वा, श्रुत्वा वा पापपुण्ययोः ॥
सदैव युज्यते कर्तुं, धर्म एव विपाश्चिता ॥ १ ॥

અર્થઃ—પાપ પુણ્યમાં રહેલો તફાવત પ્રત્યક્ષ જોઈને અથવા ગુરૂના ઉપદેશથી સાંભળીને ડાહ્યા માણસે હમેશાં ધર્મજ આચરવો જોઈએ. (૧)

धिग्मूढान् जन्मिनो जन्म, गमयन्ति निरर्थकम् ॥
धर्मानुष्ठानविकलं, सुप्ता इव निशीथिनीम् ॥ २ ॥

અર્થઃ—સુતેલા માણસો રાત્રિ ફોગટ ગુમાવે છે, તેમ જે ધર્મનું આચરણ ન કરતાં માનવભવને વ્યર્થ ગુમાવે છે તે મૂઢ લોકોને ધિક્કાર થાઓ. (૨)

नृपचित्तधनस्नेह–देहदुष्टजनायुषाम् ॥
विघ्नो विघटमानानां, नास्त्यतो धर्ममाचरेत् ॥ ३ ॥

અર્થઃ—રાજાનું ચિત્ત, ધન, પ્રીતિ, દેહ, દુર્જન અને આયુષ્ય એટલી વસ્તુ વિઘટતાં કાંઈ હરકત આવે તેમ નથી; માટે ધર્મ આચરવો. (૩)

धर्मोऽस्त्येव जगज्जैत्रः, परलोकोऽस्ति निश्चितम् ॥
देवोऽस्ति तत्त्वमस्त्येव, सत्त्वं नास्ति तु केवलम् ॥४॥

અર્થઃ—જગતમાં જયવંતો ધર્મ, પરલોક, દેવ અને તત્ત્વ એ ચારે છેજ. એમાં બીલકુલ સંશય નથી. પણ મનુષ્યમાં સત્ત્વ માત્ર નથી. (૪)

कुगुरोः कुक्रियातश्च, भवप्रह्लात्कालदोषतः ॥
न सिद्ध्यन्त्यामवाचश्च–त्तासां किमु वाच्यते ॥५॥

અર્થ —કુગુરુ હોવાથી, કુક્રિયાથી, પૂર્વભવના અંતરાયથી તથા કાળદોષથી કેવળીના વચન પ્રમાણે ફળ ન આવે તો તેમા કેવળીના વચનનો શુ દોષ? (૫)

अनल्पकुविकल्पस्य, मनसः स्थिरता नृणाम् ॥
न जायते ततो देवाः, कुतः स्युस्तद्वशवदाः ॥६॥

અર્થ —અનેક પ્રકારના માઠા અધ્યવસાયથી માણુસોના મનની સ્થિરતા રહેતી નથી તેથી દેવતાઓ તેમને વશ કયાથી થાય? (૬)

आगताप्यन्तिक सिद्धि–र्विकल्पैर्नीयतेऽन्यतः ॥
अनादरवता पार्श्वे, कथं का वावतिष्ठते ॥ ७ ॥

અર્થ —સમીપ આવેલી સિદ્ધિપણ માઠા અધ્યવસાયથી બીજી તરફ જતી રહે છે કારણ કે, આદર ન કરનારા માણસ પાસે કોણ ટકે, અને શી રીતે ટકે? (૭)

विश्वश्लाघ्य कुलं धर्मा–द्धर्माज्जातिर्मनोरमा ॥
काम्य रूप भवेद्धर्मा–द्धर्मात्सौभाग्यमद्भुतम् ॥ ८ ॥

અર્થ —ધર્મથી જગતમા પ્રશંસા કરવા યોગ્ય કુળ, ઉત્તમ જાતિ, મનોહર રૂપ અને આશ્ચર્યકારી સૌભાગ્ય મળે છે (૮)

नीरोगत्वं भवेद्धर्मा–द्धर्माद्दीर्घत्वमायुषः ॥
धर्मादर्थो भवेद्भोग्यो, धर्माज्ज्ञानं वपुष्मताम् ॥ ० ॥

અર્થઃ—ધર્મથી મનુષ્યોને નીરોગીપણું, લાંબું આયુષ્ય, ભોગવવા યોગ્ય ધન અને જ્ઞાન મળે છે. (૯)

मेघवृष्टिर्भवेद्धर्मा–द्धर्माद्दिव्येषु शुद्धयः ॥
धर्मान्मुद्रां समुद्रश्च, नोज्झत्येव कदाचन ॥ १० ॥

અર્થઃ—ધર્મથી વૃષ્ટિ થાય છે, ધર્મથી દિવ્યને વિષે શુદ્ધિ થાય છે; અને ધર્મથીજ સમુદ્ર પોતાની મર્યાદા કોઇ કાળેપણ છોડતો નથી. (૧૦)

धर्मप्रभावतो याति, न रसापि रसातलम् ॥
धर्मार्थकाममोक्षाणां, सिद्धिर्धर्माच्छरीरिणाम् ॥ ११ ॥

અર્થઃ—ધર્મના પ્રભાવથી પૃથ્વી રસાતળે (પાતાળે) જતી નથી. તથા ધર્મથીજ મનુષ્યોને ધર્મ, અર્થ, કામ અને મોક્ષ એ ચારેનાં ફળ પાસ થાય છે. (૧૧)

यदन्यदपि सद्वस्तु, प्राप्नोति हृदयेप्सितम् ॥
जीवः स्वर्गापवर्गादि, तत्सर्वं धर्मचेष्टितम् ॥ १२ ॥

અર્થ.—સ્વર્ગ, મોક્ષ વિગેરે બીજી જે કોઇ મનગમતી ચીજ જીવને મળે છે, તે સર્વ ધર્મના પ્રભાવથીજ એમ જાણવું (૧૨)

दानशीलतपोभावै–र्भेदैर्भिन्नः स दृश्यते ॥
कार्यस्ततः स एवेह, मुक्तेर्यः कारणं परम् ॥ १३ ॥

અર્થઃ—તે ધર્મના દાન, શીળ, તપશ્ચા અને ભાવના એ ચાર પ્રકાર છે, અને તેથી મુક્તિ થાય છે. માટે વિવેકી પુરૂષે ધર્મજ આચારવો. (૧૩)

श्रेष्ठो मे धर्म इत्युच्चै, र्ब्रूते कः कोऽत्र नोद्धतः ॥
भेदो न ज्ञायते तस्य, दूरस्थैराम्रनिम्बवत् ॥१४॥

અર્થ—"મારો ધર્મ શ્રેષ્ઠ છે" એમ કોણ ધીઠો માણુસ કહેતો નથી ? પણુ જેમ દૂર ઉભા રહેલા માણસથી આંબાનો અથવા લીંબડાનો ભેદ જાણી શકાતો નથી, તેમ ધર્મનો ભેદ તે માણસથી જાણી શકાતો નથી (૧૪)

मायाहंकारलज्जाभिः-प्रत्युपक्रियायाथवा ॥
यत्किंचिद्दीयते दानं, न तद्धर्मस्य साधकम् ॥१५॥

અર્થ—જે દાન કપટથી, અહંકારથી, શરમથી અથવા ઉપકારનો બદલો વાળવાને અર્થે દેવાય છે તેથી ધર્મ થતો નથી (૧૫)

असद्भ्योऽपि च यद्दानं, तन्न श्रेयस्करं विदुः ॥
दुग्धपानं भुजंगानां, जायते विषवृद्धये ॥१६॥

અર્થ—કુપાત્રે દાન આપવું તે પણ કલ્યાણકારિ નથી કારણ કે, સર્પને દૂધ પાવાથી કેવળ વિષનીજ વૃદ્ધિ થાય છે (૧૬)

प्रसिद्धिर्जायते धर्मा-न्न दानाद्य प्रसिद्धये ॥
कैश्चिद्वितीर्यते दानं, तज्ज्ञेयं व्यसनं बुधैः ॥१७॥

અર્થ—ધર્મથીજ પ્રસિદ્ધિ થાય છે, કેવળ દાનથીજ થતી નથી કેટલાક લોકો પ્રસિદ્ધિને અર્થે દાન આપે છે, તે તેમનું એક વ્યસન સમજવું (૧૭)

यज्ज्ञानाभयपर्यायैश्च, धर्मोपष्टम्भवस्तुनः ॥
यच्चानुकम्पया दानं, तदेव श्रेयसे भवेत् ॥१८॥

અર્થઃ—જ્ઞાનદાન, અભયદાન, ધર્મોપકરણ (વસ્ત્રપાત્રપ્રમુખ) વસ્તુનું દાન અને અનુકંપાદાન એ ચારે દાનથી કલ્યાણ થાય છે. (૧૮)

स विवेकधुरोद्धार-धौरयो यः स्वमानसे ॥
विरक्तहृदयो वेत्ति, ललनां शृङ्खलोपमाम् ॥१९॥

અર્થઃ—જે હૃદયમાં વૈરાગ્ય હોવાથી સ્ત્રીને શૃંખલા સમાન ગણે, તે પુરૂષ મોટો વિવેકી જાણવો. (૧૯)

आस्तां सर्वपरित्यागा--लंकृतस्य महामुनेः ॥
गृहिणोऽपि हितं ब्रह्म, लोकद्वयसुखैषिणः ॥२०॥

અર્થઃ—સર્વથા ત્યાગી મહામુનિની વાત દૂર રહી. પણ આ લોકમાં તથા પરલોકમાં સુખની વાંછા કરનાર ગૃહસ્થોને પણ બ્રહ્મવ્રત પાળવું હિતકારી છે. (૨૦)

तिर्यग्देवासुरस्त्रीश्च, परस्त्रींश्चापि यस्त्यजेत् ॥
सोऽपि धीमान् स तु स्तुत्यो, यः स्वदाररतिः सदा॥२१॥

અર્થઃ—જે માણસ પોતાની સ્ત્રી ઉપર ઇચ્છા રાખી તિર્યંચની, દેવતાની અને ભવનપતિની સ્ત્રીઓનો તથા મનુષ્યમાં પર સ્ત્રીનો ત્યાગ કરે, તેજ બુદ્ધિમાન્ અને તેજ પ્રશંસા કરવા યોગ્ય સમજવો. (૨૧)

तनौ यदि नितम्बिन्याः, प्रमादाद्दक्पतत्यहो ॥
चिन्तनीया तदैवात्र, मलमूत्रादिसंस्थितिः ॥२२॥

અર્થઃ—જો પ્રમાદથી કોઇ સમયે સ્ત્રીના શરીર ઉપર દૃષ્ટિ જાય, તો તેજ વખતે તેના (સ્ત્રીના) શરીરમાં મળ, મૂત્ર વિગેરે ખરાબ વસ્તુ રહેલી છે, તે ધ્યાનમાં લેવી. (૨૨)

अज्ञातपरमानन्दो, लोकोऽयं विषयोन्मुखः ॥
अदृष्टनागरग्रामः, पामरैरुपवर्ण्यते ॥२३॥

અર્થ—પરમાનંદ સ્વરૂપને ન જાણનારા લોકો વિષય સુખમાં તલ્લીન થાય છે શહેરને ન જોનારા ગામડિયા લોકો ગામડાનાજ વખાણ કરે છે (૨૩)

परानन्दसुखास्वादी, विषयैर्नाभिभूयते ॥
जाङ्गुलीजयनिष्कम्पः, किं सर्पैरुपसर्प्यते ॥२४॥

અર્થ—વિષયો પરમાનંદ સુખને ચાખનારા માણસને વશ કરી ન શકે, ગારૂડી વિદ્યામાં નિપુણ એવા માણસ આગળ સર્પ પોતાની મેળે આવે કે શું? (૨૪)

रसत्यागस्तनुक्लेश, औनोदर्यमभोजनम् ॥
लीनता वृत्तिसंक्षेप-स्तपः षोढ बहिर्भवम् ॥ २५ ॥

અર્થ—૧ રસનો ત્યાગ ૨ કાયાનો ક્લેશ, ૩ ઉણોદરી (પ્રમાણ કરતા ઓછો આહાર), ૪ ઉપવાસ, ૫ અંગોપાંગ સંકોચીને બેસવું અને ૬ વૃત્તિનો સંક્ષેપ એ ૬ પ્રકાર બાહ્ય તપના છે (૨૫)

प्रायश्चित्त शुभध्यानं, स्वाध्यायो विनयस्तथा ॥
वैयावृत्त्यमथोत्सर्ग-स्तपः षोढान्तरं भवेत् ॥२६॥

અર્થ—૧ પ્રાયશ્ચિત, ૨ શુભધ્યાન, ૩ સ્વાધ્યાય, ૪ વિનય, ૫ વૈયાવચ્ચ અને ૬ કાઉસગ્ગ એ ૬ પ્રકાર અંતરંગ તપના છે (૨૬)

दुःखपुण्यप्रभावाय, [illegible] ॥
आत्मना [illegible], तदस्तप्येत [illegible] ॥२७॥

અર્થઃ—પોતાનાં મનનાં પરિણામ શુદ્ધ રાખનારો માણસ સર્વ ઇંદ્રિયોને સમાધિમાં રાખી સર્વે આરંભ છોડી દુઃખનો સમુદાય ટાળવાને અર્થે તપસ્યા કરે છે. (૨૭)

पूजालाभप्रसिद्ध्यर्थं, तपस्तप्येत योऽल्पधीः ॥
शोप एव शरीरस्य, न तस्य तपसः फलम् ॥२८॥

અર્થઃ—જે અલ્પ બુદ્ધિવાળો માણસ પૂજનીક થવાને અર્થે, લાભને અર્થે, અથવા પ્રસિદ્ધિને અર્થે તપસ્યા કરે, તે કેવળ શરીરનેજ સુકાવે છે, પણ તેને તપસ્યાનું ફળ મળતું નથી. (૨૮)

विवेकेन विना यच्च, तत्तपस्तनुतापकृत् ॥
अज्ञानकष्टमेवेदं, न भूरिफलदायकम् ॥२९॥

અર્થઃ—વિવેક વગર તપસ્યા કરવાથી માત્ર શરીરને તાપ ઉપજે છે. તે કેવળ અજ્ઞાન કષ્ટજ છે. તેથી બહુ ફળ પ્રાપ્ત થતું નથી. (૨૯)

दृष्टिहीनस्य पङ्गोश्च, संयोगे गमनादिकम् ॥
यथा प्रवर्तते ज्ञान-क्रियायोगे शिवं तथा ॥३०॥

અર્થઃ—આંધળાના અને પાંગળાના મેળાપથી જેમ (બનેનું) જવું, આવવું વિગેરે થાય છે, તેમ જ્ઞાનનો અને ક્રિયાનો યોગ મળવાથી મોક્ષ થાય છે (૩૦).

शरीरं यौवनं वित्तं, संयोगं च स्वभावतः ॥
इदं नित्यमनित्यता-घ्रातं जानीहि सर्वतः ॥३१॥

અર્થ—હે જીવ! શરીર, યુવાવસ્થા, ધન અને સર્વ પ્રકારના સંયોગ એ સર્વ સ્વભાવથીજ સદાકાળ અનિત્ય છે એમ તું સર્વથા જાણ (૩૧)

शक्रचक्रयाद्योऽप्येते, म्रियन्ते कालयोगतः ॥
तदत्र शरणं यातु, कः कस्य मरणागमे ॥३२॥

અર્થ—ઇંદ્ર તથા ચક્રવર્તી વિગેરે પણ કાળમર્યાદા પૂરી થએ મરણ પામે છે માટે આ જગતમાં મરણ સમય આવે કોણ કોને શરણ જાય? (૩૨)

संसारनाटके जन्तु-रुत्तमो मध्यमोऽधमः ॥
नटवत्कर्मसंयोगा-न्नानारूपो भवत्यहो ॥३३॥

અર્થ—જીવ સંસાર રૂપ નાટકમાં નાટકીની પેઠે કર્મને યોગે ઉત્તમ, મધ્યમ તથા અધમ એવા નાનાવિધ વેષ ધારણ કરે છે, એ ઘણી ખેદની વાત છે! (૩૩)

एक एव ततु जन्तु-र्जायते म्रियतेऽपि च ॥
एक एव सुखं दुःखं, भुङ्क्ते नान्योऽस्ति नो सखा ॥३४॥

અર્થ—જીવ એકલોજ જન્મે છે, મરણ પામે છે, અને સુખ દુઃખ ભોગવે છે બીજો કોઈપણ તેનો સગો નથી (૩૪)

देहार्थबन्धुमित्रादि, सर्वमन्यन्मनस्विनः ॥
युज्यते नैव कुत्रापि, शोकः कर्तुं विवेकिना ॥३५॥

અર્થ—જાણુ પુરૂષો દેહ, ધન, બાંધવ, મિત્ર વિગેરે સર્વ પારકું સમજે છે, માટે વિવેકી પુરૂષે દેહાદિકને અર્થે શોક કરવો યોગ્ય નથી. (૩૫)

रसासृङ्मांसमेदोऽस्थि-मज्जशुक्रमये पुरे ॥
नवस्रोतःपरीते च, शौचं नास्ति कदाचन ॥ ३६ ॥

અર્થ:—રસ, લોહી, માંસ, મેદ, હાડકાં, મજ્જા અને વીર્ય એ સાત ધાતુથી બનેલું અને નવદ્વારથી વીંટાયલું એવા શરીરમાં પવિત્રતા કોઇ કાળે નજ હોય. (૩૬)

कषायैर्विषयैर्योगैः, प्रमादैरङ्गिभिर्नवम् ॥
रौद्रार्त्ताविरत्यज्ञानत्वै-श्चात्र कर्म प्रबद्ध्यते ॥ ३७ ॥

અર્થ:—જીવો આ લોકમાં કષાયથી, વિષયથી, યોગ પ્રમાદથી, રૌદ્ર ધ્યાનથી, આર્તધ્યાનથી, વિરતિના અભાવથી અને અજ્ઞાનથી નવું કર્મ બાંધે છે. (૩૭)

कर्मोत्पत्तिविघाताय, संवराय नतोऽस्म्यहम् ॥
यश्छिनत्ति शमास्त्रेण, शुभाशुभमयं द्रुमम् ॥३८॥

અર્થ:—નવા કર્મની ઉત્પત્તિને અટકાવનાર સંવરને હું નમસ્કાર કરૂં છું કારણ કે, તે સંવર સમતારૂપ શસ્ત્રથી શુભાશુભ કર્મને તોડી નાંખે છે. (૩૮)

सुसंयमैर्विवेकाद्यै-रकामोग्रतपोऽग्निना ॥
संसारकारणं कर्म, जरणीयं महात्मभिः ॥३९॥

અર્થ—મહાત્મા પુરૂષોએ સારા સંયમથી અને નિષ્કામ તપસ્યા રૂપ અગ્નિથી સંસારને વધારનારા કર્મની નિર્જરા કરવી. (૩૯)

शरावसंपुटाधस्था-धोमुखैकशरावंवत् ॥
पूर्णं चिन्त्यं जगत्स्कन्धैः स्थिरसूक्ष्मैस्त्रिभिरिः ॥४०॥

અર્થ —સીધો સરાવળો નીચે અને ઉંધો સરાવળો ઉપર રાખ્યો હોય તો તે શરાવસંપુટ કહેવાય છે, તે શરાવસંપુટની નીચે એક ઊંધો સરાવલો રાખ્યો હોય તેવા આકારમા રહેલુ આ જગત્, ઉત્પત્તિ, સ્થિતિ અને લય પામનાર જીવ, અજીવ પ્રમુખ દ્રવ્યથી પરિપૂર્ણ ભરેલુ છે, એમ સાધકે ચિંતવવુ (૪૦)

सपूर्णेऽपि मनुष्यत्वे, मासे जीवः श्रुतादिभिः ॥
आसन्नसिद्धिकः कश्चि-द्बुद्ध्यते तत्त्वनिश्चयात् ॥४१॥

અર્થ —કોઇકજ આસન્નસિદ્ધિયો જીવ પરિપૂર્ણ ઇંદ્રિયવાળો મનુષ્યભવ પામી શ્રુત, ગુરૂ વિગેરે સામગ્રીનો યોગ મળવાથી તત્ત્વનિશ્ચય કરી બોધ પામે છે (૪૧)

श्रेष्ठो धर्मस्तपःक्षान्ति-मार्दवार्जवसूनृतैः ॥
शौचाकिंचन्यकरुणा-ब्रह्मत्यागैश्च समत' ॥४२॥

અર્થ —૧ તપસ્યા, ૨ ક્ષમા, ૩ કોમળપણુ, ૪ સરળતા, ૫ સત્યભાષણ, ૬ પવિત્રતા, ૭ પરિગ્રહનો ત્યાગ, ૮ દયા, ૯ બ્રહ્મચર્ય અને ૧૦ દાન એ દસ વસ્તુ જેમા હોય તે ધર્મ શ્રેષ્ઠ કહેવાય છે (૪૨)

भावनीयाः शुभैर्ध्यानै-र्भव्यैर्द्वादश भावनाः ॥
एता हि भवनाशिन्यो, भवन्ति भविना किल ॥४३॥

અર્થ —ભવ્ય જીવોએ શુભ ધ્યાનથી બાર ભાવનાઓ ભાવવી જોઇએ કે, તેઓ ભવ્ય જીવોના સંસારનો નાશ કરનારી છે (૪)

गोदुग्धस्यार्कदुग्धस्य; यद्वत्स्वादान्तरं महत् ॥
धर्मस्याप्यन्तरं तद्व-त्फलेऽमुष्यापरस्य च ॥४४॥

અર્થ:—ગાયના દૂધના અને આકડાના દૂધના સ્વાદમાં જેમ ઘણો તફાવત છે, તેમ ઉપર કહેલા ધર્મના અને બીજા ધર્મના ફળમાં ઘણોજ તફાવત છે. (૪૪)

इत्यनेन विधिना करोति यः, कर्म धर्ममयमिद्धवासनः ॥
तस्य सूत्रयति मुक्तिकामिनी–कण्ठकन्दलहठग्रहक्रियाम् ॥४५॥

इति श्रीजिनदत्तसूरीविरचिते विवेकविलासे धर्मोत्पत्तिप्रकरणं
नाम दशम उल्लासः ॥१०॥

અર્થ—શુદ્ધ પરિણામવાળો જે માણસ ઉપર કહેલી રીતે ધર્મકૃત્ય કરે છે. તેના કંઠને મુક્તિરૂપ સ્ત્રી બળાત્કારથી આલિંગન કરે છે. અર્થાત્ તે મુક્તિ પામે છે. (૪૫)

ઇતિ શ્રીજીનદત્તસૂરિવિરચિત વિવેકવિલાસની ગૂર્જર
ભાષાનો દશમો ઉલ્લાસ સંપૂર્ણ. (૧૦)

अथैकादश उल्लासः ।

पूर्वोक्तयत्नसंदोहैः, पालितं देहपञ्जरम् ॥
श्लाघ्यं स्याद्ब्रह्महंसस्य, यष्ट्याधारो वृथान्यथा ॥१॥

અર્થ:—જીવરૂપ હંસનું દેહરૂપ પાંજરૂં ઉપર કહેલા સંપૂર્ણ યત્નથી પાળવું, એજ પ્રશંસા કરવા યોગ્ય છે. તે વિના લાકડીનો આધાર લેવો નકામો છે. (૧)

मुग्धाना वर्द्धते क्षेत्र–पात्राद्यैर्भववारिधिः ॥
धीमतामपि शास्त्राद्यै–रध्यात्मविकलैर्भ्रशम् ॥२॥

અર્થ —અજ્ઞ લોકોનો સસાર ક્ષેત્ર (ખેતર) પાત્ર (વાસણ) વિગેરે વસ્તુથી વધે છે, અને પડિત લોકોનો તો અધ્યાત્મજ્ઞાન વગરના બીજા નકામા ઘણા શાસ્ત્રોથી વધે છે (૨)

किं रोमन्थनिभैः कार्य, बहुभिर्ग्रन्थगुम्फनैः ॥
विद्वद्भिस्तत्त्वमालोक्य–मन्तर्ज्योतिमय महत् ॥३॥

અર્થ —ઓગાળ સરખા ઘણા ગ્રથો રચવાથી શુ લાભ છે? પડિત લોકોએ તો શરીરની અદર રહેલા દિવ્ય જ્યોતિ રૂપ મોટા જીવતત્વનો વિચાર કરવો (૩)

जन्मान्तरसुसस्कारा–त्प्रसादादथवा गुरोः ॥
केषा चिज्जायते तत्त्व–वासना विशदात्मनाम् ॥४॥

અર્થ —પૂર્વભવના શુભ સસ્કારથી અથવા સદ્ગુરૂના પ્રસાદથી કેટલાક શુદ્ધ મનવાળા જીવોને તત્ત્વ જાણુવાની વાસના ઉત્પન્ન થાય છે (૪)

अह बत सुखी दुःखी, गौरः श्यामो दृढोऽदृढः ॥
ह्रस्वो दीर्घो युवा वृद्धो, दुस्त्यजेयं कुवासना ॥

અર્થ —હુ સુખી અથવા દુખી, ગોરો અથવા કાળો, મજબૂત અથવા નબળો, ટુકો અથવા લાબો, તરૂણ અથવા ઘરડો એવી ખોટી વાસના (અધ્યવસાય) પ્રત્યેક મનુષ્યમા રહી છે તે છોડવી કઠણ છે (૫)

जातिपाखण्डयोर्येषां, विकल्पाः सन्ति चेतसि
वार्ताभिस्तैः श्रुतं तत्त्वं, न पुनः परमार्थतः ॥६॥

અર્થઃ—જાતિના અને પાખંડના વિચાર જેમના ચિત્ત-માં વસતા હોય, તેમણે તત્ત્વ સાંભળ્યું હોય તો કદાચ વાર્તારૂપે સાંભળ્યું હશે, પણ પરમાર્થથી નહીં. (૬)

तावत्तत्त्वं कुतो यावद्—भेदः स्वपरयोर्भवेत् ॥
नगरारण्ययोर्भेदे, कथमेकत्ववासना ॥७॥

અર્થઃ—જ્યાં સુધી પોતીકું અને પારકું એવો ભેદ-રહ્યો છે, ત્યાં સુધી તત્ત્વની વાત ક્યાંથી ? જ્યાં સુધી નગ-રમાં અને ગામડામાં તફાવત દેખાય, ત્યાં સુધી ઐક્ય-બુદ્ધિ ક્યાંથી થાય ? (૭)

धर्मः पिता क्षमा माता, कृपा भार्या गुणाः सुताः ॥
कुटुम्बं सुधियां सत्य—मेतदन्ये तु विभ्रमाः ॥८॥

અર્થઃ—સત્પુરૂષોનો ધર્મ તેજ પિતા, ક્ષમા તેજ માતા, દયા તેજ ભાર્યા, અને સદ્‌ગુણ તેજ પુત્ર છે. સત્પુરૂષોનું એજ કુટુંબ છે. બાકી સર્વે ભ્રમ છે. (૮)

पादबन्धदृढं स्थूल—कटीभागं भुजार्गलम् ॥
धातुभित्ति नवद्वारं, देहं गेहं सुयोगिनः ॥९॥

અર્થઃ—પગરૂપ મજબૂત પાયાવાળું, કેડરૂપ મધ્યભાગ વાળું, ભુજારૂપ ભૂંગળવાળું, સાત ધાતુરૂપ ભીંતવાળું, અને નવ દ્વારવાળું એવું શરીર તેજ ભલા યોગીનું ઘર છે. (૯)

कान्त मशान्तमेकान्तं, पवित्रं विपुल समम् ॥
समाधिस्थानमन्वेष्य, सद्भिः साम्यस्य साधकम् ॥१०॥

અર્થ—મનોહર, શાંત, એકાંતવાળું, પવિત્ર, વિશાળ તથા સીધું એવું સમતાને સાધનારૂં સ્થાનક સત્પુરૂષોએ સમાધિને અર્થે શોધી કાઢવું (૧૦)

समाग्निः समदोषश्च, समधातुमलः पुमान् ॥
सुप्रसन्नेन्द्रियमनाः, स्वस्थ इत्यभिधीयते ॥११॥

અર્થ—જેનો જઠરાગ્નિ, કફાદિ દોષ, રસાદિ ધાતુ અને મલ સમાન હોય, અર્થાત્ વૈદ્યશાસ્ત્રમાં જેનું જેટલું પ્રમાણ કહ્યું છે તે તેટલાજ પ્રમાણમાં હોય, તથા જેના ઇંદ્રિય અને મન સુપ્રસન્ન હોય, તે પુરૂષ સ્વસ્થ (સાજો) કહેવાય છે (૧૧)

स्वस्थः पद्मासनासीनः, संयमैकधुरंधरः ॥
क्रोधादिभिरनाक्रान्तः, शीतोष्णाद्यैरनिर्जितः ॥१२॥
भोगेभ्यो विरतः काम–मात्मदेहेऽपि निःस्पृहः ॥
भूपतौ दुर्गते वापि, सममानसवासनः ॥१३॥
समीरण इवाबद्धः, सानुमानिव निश्चलः ॥
इन्दुवज्जगदानन्दी, शिशुवत्सरलाशयः ॥१४॥
सर्वक्रियासु निर्लेपः, स्वस्मिन्नात्मावबोधकृत् ॥
जगप्यात्मवज्जानन्, कुर्वन्नात्ममयं मनः ॥१५॥
मुक्तिमार्गरतो नित्यं, संसाराच्च विरक्तिभाक् ॥
गीयते धर्मतत्त्वज्ञै–र्धीमान् ध्यानक्रियोचितः ॥१६॥

અર્થઃ—ધર્મ તત્વના જાણ પુરૂષો ઉપર કહ્યા પ્રમાણે સ્વસ્થ, પદ્માસન વાળીને બેઠેલો, ઇંદ્રિયોને વશ રાખવામાં નિપુણ, ક્રોધ વિગેરે કપાયોને વશ ન થએલો, શીત, ઉષ્ણ પ્રમુખ પરિષહથી ન જિતાયલો, વિષય ભોગથી વૈરાગ્ય પામેલો, પોતાના દેહ ઉપર પણ બિલકુલ ઇચ્છા ન રાખનારો, રાજાને તથા રંકને સરખી દૃષ્ટિથી જોનારો, પવનની પેઠે કોઇ ઠેકાણે પ્રતિબંધ ન રાખનારો, પર્વતની પેઠે નિશ્ચળ, ચંદ્રમાની પેઠે જગતને આનંદ ઉપજાવનારો, બાળકની પેઠે સરળ સ્વભાવનો, સર્વ ક્રિયાઓમાં નિર્લેપ રહેનારો, પોતાને વિષે પોતાને જાણનારો, જગત્‌ને આત્મતુલ્ય જાણનારો, મોક્ષ માર્ગને વિષે આસક્ત થએલો તથા સંસારથી વૈરાગ્ય પામેલો એવો બુદ્ધિશાળી પુરૂષ ધ્યાન. ક્રિયા કરવાને યોગ્ય કહેવાય છે. (૧૨) (૧૩) (૧૪) (૧૫) (૧૬)

विश्वं पश्यति शुद्धात्मा, यद्यप्युन्मत्तसंनिभम् ॥
तथापि वचनैर्धीरो, मर्यादां नैव लङ्घयेत् ॥१७॥

અર્થઃ—ધ્યાનમાં તલ્લીન થએલો શુદ્ધ જીવ જો પણ જગત્‌ને ઘેલા માફક જાણે છે, તો પણ તે ગંભીર હોવાથી વચનવડે મર્યાદાનો ભંગ ન કરે. (૧૭)

कुलीनाः सुलभाः प्रायः, सुलभा, शास्त्रशालिनः ॥
सुशीलाश्चापि सुलभा, दुर्लभा भुवि तात्त्विकाः ॥१८॥

અર્થઃ—કુલીન, પંડિત તથા સુશીળ પુરૂષો પ્રાયે સુખે મળી શકે એવા છે. પણ તત્વના જાણ પુરૂષો જગત્‌માં દુર્લભ છે. (૧૮)

अपमानादिकान् दोपान्, मन्यते स पुमान् किल ॥
सविकल्पं मनो यस्य, निर्विकल्पस्य ते कुतः ॥१९॥

અર્થ—જેના મનમા વિકલ્પ હોય તે પુરૂષ અપમાન વિગેરે દોષોને ગણે છે પણ જેણે વિકલ્પ છોડયા તેને અપમાન વિગેરે કયાથી હોય ? (૧૯)

मयि भक्तो जनः सर्व, इति हृष्येन्न साधकः ॥
मय्यभक्तो जनः सर्व, इति कुप्येन्न वा पुनः ॥

અર્થ—સાધક પુરૂષ "મારા સર્વે લોકો ભક્ત છે" એમ જાણી હર્ષ ન પામે તથા "મારો કોઇ ભક્ત નથી" એમ જાણી રોપ પણ ન કરે (૨૦)

अन्तश्चित्तं न चेच्छुद्धं, बहिः शौचे न शौचभाक् ॥
सुपक्कमपि निम्बस्य, फलं बीजे कटु स्फुटम् ॥२१॥

અર્થ—અંદરથી મન શુદ્ધ ન હોય તો કેવળ ઉપરની ચોખ્ખાઇ શા કામની ? કારણકે, પાકેલી લીંબોળીનુ પણ બીજ કડવુજ હોય છે (૨૧)

यस्यात्ममनसोर्भिन्न-रुच्योर्मैत्री विवर्तते ॥
योगविघ्नैः समं मित्रै-स्तस्येच्छा कौतुकस्य का ॥२२॥

અર્થ—જે માણસને જુદી જુદી રૂચિવાળા આત્માની અને મનની સાથે મિત્રાઈ બધાઇ હોય, તે માણસને યોગમા વિઘ્ન કરનાર મિત્રોની સાથે કૌતુક કરવાની ઇચ્છાજ કયાથી થાય ? (૨૨)

कालेन भक्ष्यते सर्वं, स केनापि न भक्ष्यते ॥
अभक्ष्यभक्षको योगी, येनासावपि भक्ष्यते ॥२३॥

અર્થ:--કાળ સર્વ વસ્તુઓનું ભક્ષણ કરે છે, પણ કાળનું કોઇ ભક્ષણ કરતો નથી. પણ યોગી તો તેનું (કાળનું) પણ ભક્ષણ કરે છે, માટે તેજ (યોગી) અભક્ષ્ય વસ્તુનો ભક્ષક છે. (૨૩)

या शक्यते न केनापि, पातुं किल परा कला ॥
यस्तां पिबत्यविश्रान्तं, स एवापेयपायकः ॥२४॥

અર્થ:—જે કોઇથી પી શકાય નહીં, એવી પરમ કળાને (બ્રહ્માસૃતને) યોગી હમેશાં પીએ છે. માટે તે (યોગી) અપેય વસ્તુનો પીનાર છે. (૨૪)

अगम्यं परमं स्थानं, यत्र गन्तुं न पार्यते ॥
तत्रापि लाघवाद्गच्छ-न्नगम्यगमको मतः ॥२५॥

અર્થ:—જ્યાં કોઇથી જઇ શકાય નહીં, એવા પરમ પદરૂપ અગમ્ય સ્થાનકે યોગી તુરત જાય છે, માટે તે (યોગી) અગમ્યગામી કહેવાય છે. (૨૫)

ब्रह्मात्मा तद्विचारी यो, ब्रह्मचारी स उच्यते ॥
अमैथुनः पुनः स्थूल-स्तादृक् पण्डोऽपि यद्भवेत् ॥२६॥

અર્થ:—આત્મા બ્રહ્મ કહેવાય છે. તથા બ્રહ્મનો વિચાર કરનાર તેજ ખરો બ્રહ્મચારી કહેવાય છે. પણ કામભોગને વર્જનારો માણસ માત્ર સ્થૂલ બ્રહ્મચારી કહેવાય. કારણ કે, તેવો તો નપુંસક પણ હોય છે. (૨૬)

अनेकाकारतां धत्ते प्राणी कर्मवशं गतः ॥
कर्ममुक्तस्तु नो धत्ते, तमेकाकारमादिशेत् ॥२७॥

અર્થ—જીવ કર્મના વશથી અનેક આકાર ધારણ કરે છે પણ કર્મથી છૂટાયલો જીવ તેમ કરતો નથી માટે તે મુક્ત જીવને 'એકાકાર" કહેવો (૨૭)

दु'खी किमपि कोऽप्यत्र, पाप कोऽपि करोति किम् ॥
मुक्तिर्भवतु विश्वस्य, मतिमत्रीति कथ्यते ॥ २८ ॥

અર્થ—" આ જગતમા કોઇપણ જીવ દુખી કેમ છે ? તથા કોઇપણ જીવ પાપ કેમ કરે છે ? સપૂર્ણ જગતને મોક્ષ પ્રાપ્તિ થાય તો સારૂ " એવી જે મતિ તે " મૈત્રી ભાવના ' કહેવાય છે (૨૮)

दोषनिर्मुक्तटत्ताना, धर्मसर्वस्वदर्शिनाम् ॥
योऽनुरागो गुणेपूच्चै', स प्रमोदः प्रकीर्तितः ॥२०॥

અર્થ—દોષરહિત આચરણ કરનાર અને ધર્મના સર્વ સ્વરૂપના જાણ એવા સત્પુરૂષોનો જે ગુણ ઉપર રાગ તે "પ્રમો-દ ભાવના" કહેવાય છે (૨૯)

भीतार्त्तदीनरोगिनु, जीवितार्थिषु वाञ्छितम् ॥
सततया यत्प्रर्पते नित्यं, करुणा सात्र विश्रुता ॥३०॥

અર્થ—ડરી ગએલા, રોગથી પીડાએલા, દીન અને દીન બનેલા એવા પોતાના જીવિતના અર્થી લોકોની વાછા શક્તિ માફક પૂર્ણ કરવી, તે " કરૂણા ભાવના" શાસ્ત્રમા પ્રસિદ્ધ છે (૩૦)

मोरा मद्दिरतां धर्म, निर्भय दुर्जनामाम् ॥
स्वश्लाघिना च योपेक्षा, माध्यस्थ्यं तदुदीरितम् ॥३१॥

અર્થ:—મોહથી ધર્મનો દ્વેષ કરનારા, બીક ન રાખતાં પાપ કરનારા અને પોતાના પોતેજ વખાણ કરનારા એવા લોકોની ઉપેક્ષા કરવી, એટલે તેમની તરફ ધ્યાન ન આપવું, તે "માધ્યસ્થ્ય ભાવના" કહેવાય છે. (૩૧)

विभवश्च शरीरं च, बाहिरात्मा निगद्यते ॥
तदधिष्ठायको जीव–स्त्वन्तरात्मा सकर्मकः ॥३२॥

અર્થ:—લક્ષ્મી અને શરીર તે "બહિરાત્મા" કહેવાય છે. અને શરીરનો અધિષ્ઠાયક જીવ "અંતરાત્મા" કહેવાય છે. તે જીવજ કર્મ વડે બંધાયલો છે. (૩૨)

निरातङ्को निराकाङ्क्षो, निर्विकल्पो निरञ्जनः ॥
परमात्माक्षयोऽत्यक्षो, ज्ञेयोऽनन्तगुणोऽव्ययः ॥३३॥

અર્થ:—ભય, આકાંક્ષા, વિકલ્પ અને કર્મનો લેપ એ ચાર વાનાં જેનાં જતાં રહ્યાં, તથા અનંત જેના ગુણ, અને જેનો નાશ અથવા ક્ષય ન થાય, એવો જીવ " પરમાત્મા " કહેવાય છે. (૩૩)

यथा लोहं सुवर्णत्वं, प्राप्नोत्यौषधयोगतः ॥
आत्मध्यानात्तथैवात्मा, परमात्मत्वमश्नुते ॥३४॥

અર્થ:—જેમ વનસ્પતિના યોગથી લોઢાનું સોનું થાય છે, તેમ જીવ પરમાત્માના ધ્યાનથી પોતેજ પરમાત્મા બને છે. (૩૪)

अध्यात्मवर्जितैर्ध्यानैः, शास्त्रस्थैः फलमस्ति न ॥
भवेन्नहि फलैस्तृप्तिः, पानीयप्रतिबिम्बितैः ॥३५॥

અર્થ —આત્મવિચાર વિના કેવળ શાસ્ત્રમા રહેલા ધ્યાનથી કાઇપણ ફળ નીપજતુ નથી કારણ કે પાણીમા પ્રતિબિંબિત થએલા (પડછાયામા પડેલા) ફળોથી કોઈ કાળે તૃપ્તિ ન થાય (૩૫)

रूपस्थ च पदस्थं च, पिण्डस्थं रूपवर्जितम् ॥
ध्यान चतुर्विधं प्रोक्तः संसारार्णवतारकम् ॥३६॥

અર્થ:—રૂપસ્થ, પદસ્થ, પિંડસ્થ અને રૂપાતીત એ રીતે ચાર પ્રકારનુ ધ્યાન સંસારરૂપ સમુદ્રથી પાર ઉતરનારૂ કહેવાય છે (૩૬)

पश्यति प्रथम रूप, स्तौति ध्येय ततः पदैः ॥
तन्मयः स्यात्ततः पिण्डे, रूपातीतः क्रमाद्भवेत् ॥३७॥

અર્થ —સાધક પ્રથમ ધ્યેય વસ્તુનુ રૂપ જુવે છે, પછી પદે કરી તેની (ધ્યેય વસ્તુની) સ્તવના કરે છે, તે પછી પિંડને વિષે તન્મય થાય, અને પછી અનુક્રમે રૂપાતીત થાય (૩૭)

यथावस्थितमालम्ब्य, रूप त्रिजगदीशितुः ॥
क्रियते यन्मुदा ध्यान, तद्रूपस्थ निगद्यते ॥३८॥

અર્થ —તીર્થંકર ભગવાનનુ જેવુ રૂપ છે તેવા રૂપનુ આલંબન લઇને જે ભગવાનનુ હર્ષથી ધ્યાન કરવુ તે રૂપસ્થ કહેવાય છે (૩૮)

विद्यायां यदि वा मन्त्रे, गुरुदेवस्तुतावपि ॥
पदस्थ कथ्यते ध्यान, पवित्रान्यस्तुतावपि ॥३९॥

અર્થઃ—વિદ્યામાં, મંત્રમાં, ગુરૂની દેવની સ્તુતિમાં અને બીજી પણ પવિત્ર વસ્તુની સ્તુતિમાં "પદસ્થ" ધ્યાન કહેવાય છે. (૩૯)

स्तम्भे सुवर्णवर्णानि, वश्ये रक्तानि तानि च ॥
क्षोभे विद्रुमवर्णानि, कृष्णवर्णानि मारणे ॥४०॥
द्वेषणे धूम्रवर्णानि, शशिवर्णानि शान्तिके ॥
आकर्षेऽरुणवर्णानि, स्मरेन्मन्त्राक्षराणि तु ॥४१॥

અર્થઃ—સ્તંભન (અટકાવ) કરવું હોય તો સોના સરખા પીળા, વશીકરણ કરવું હોય તો રાતા, કોઇને ક્ષોભ પમાડવો હોય તો પરવાળા સરખા ગુલાબી રંગના, મારણ કરવું હોય તો કાળા, દ્વેષ ઉપજાવવો હોય તો ધુમાડા જેવા રંગના, શાંતિ કરવી હોય તો ચંદ્રમા સરખા સફેદ, આકર્ષણ (ખેંચવું) કરવું હોય તો રાતા એવા મંત્રાક્ષર ચિંતવવા. (૪૦) (૪૧)

यत्किंचन शरीरस्थं, ध्यायते देवतादिकम् ॥
तन्मयीभावशुद्धं तत्, पिण्डस्थं ध्यानमुच्यते ॥४२॥

અર્થઃ—તન્મય ભાવથી શુદ્ધ એવું જે કાંઇ શરીરમાં દેવતાદિકનું ધ્યાન કરાય છે, તે "પિંડસ્થ" ધ્યાન કહેવાય છે. (૪૨)

आपूर्य वाममार्गेण, शरीरं प्राणवायुना ॥
तेनैव रेचयित्वा च, नयेद्ब्रह्मपदं मनः ॥४३॥

અર્થઃ—ડાબી બાજુથી પ્રાણવાયુને શરીરમાં ભારી

તેજ બાજુથી પાછો તેને (વાયુને) બહાર કાઢવો એમ કરી મનને બ્રહ્મપદે લઈ જવુ (૪૩)

अभ्यसाद्रेचकादीना, विनापीह स्वय मरुत् ॥
स्थिरीभवेन्मयःस्थैर्या-द्युक्तिर्नोक्ता ततः पृथक् ॥४४॥

અર્થ —મનની સ્થિરતા હોય તો રેચકાદિકના અભ્યાસ વિના પણ વાયુ પોતાની મેળેજ સ્થિર રહે છે માટે વાયુ સ્થિર કરવાની યુક્તિ જુદી કહી નથી (૪૪)

निमेपार्धार्धमात्रेण, भुवनेषु भ्रमत्यहो ॥
मनश्चञ्चलसद्भाव, युक्त्या भवति निश्चलम ॥४५॥

અર્થ—ચચળ સ્વભાવનુ મન પ્રત્યેક અર્ધ નિમેષમા ત્રણે લોકમા ફરી વળે છે, તોપણ તે યુક્તિથી સ્થિર થાય છે, એ આશ્ચર્ય છે! (૪૫)

लीयते यत्र कुत्रापि, स्वेच्छया चपल मनः ॥
निराबाधं तथवाशु, व्यालतुल्य हि वालितम् ॥ ४६ ॥

અર્થ —ચચળ મન કાઈ બાધા ન હોય તો સર્પની પેઠે પોતાની ઇચ્છા માફક જમે ત્યા ભરાઇ જાય છે અને વાળિયે તો સર્પની પેઠે ક્ષોભ પામે છે (૪૬)

मनःशुद्धि यावत्-दज्ञानतिमिरावृतम् ॥
तत्त्वं न वीक्ष्यते तावत्-द्विषयेष्वेव मुह्यते ॥ ४७ ॥

અર્થ —મનરૂપ નેત્ર જ્યા સુધી અજ્ઞાનરૂપ અધકારથી ચીટાયલુ છે, ત્યા સુધી તત્ત્વ દેખે નહી, વિષયમાજ મુઝાય (૪૭)

૧ —આખ ચીગતા જેમાં કાળ લાગે છે, તે નિમેષ કહાય છે

जन्म मृत्युर्धनं दौस्थ्यं, स्वे स्वे काले प्रवर्त्तते ॥
तदस्मिन् क्रियते हन्त, चेतश्चिन्ता कथं त्वया ॥ ४८ ॥

અર્થઃ—જન્મ, મરણ, ધન અને દારિદ્ર એ પોતપોતાને અવસરે એની મેળે થાય છે. માટે હે મન ! તું ફોગટ આ વાતમાં ચિંતા શું કરવા કરે છે ? (૪૮)

यथा तिष्ठति निष्कम्पो, दीपो निर्वातवेश्मगः ॥
तथेहापि पुमान्नित्यं, क्षीणाधिः सिद्धवत्सुधीः ॥ ४९ ॥

અર્થઃ—જેમ પવન વિનાના ઘરમાં દીપ સ્થિર રહે છે, તેમ પંડિત પુરૂષો મનની સર્વ વાસનાઓનો લય કરી આ જગતમાં સિદ્ધની પેઠે નિરંતર સ્થિર રહે છે. (૪૯)

विकल्पविरहादात्म–ज्योतिरुन्मेषवद्भवेत् ॥
तरङ्गविगमाद्दूरं, स्फुटरत्न इवाम्बुधिः ॥५०॥

અર્થઃ—જેમ ઉછળતા મોજા બિલકુલ બંધ થયાથી સમુદ્રની અંદર રહેલાં રત્નો પ્રગટ દેખાય છે, તેમ વિકલ્પનો સર્વથા અભાવ થવાથી ચૈતન્ય જ્યોતિ પ્રગટ થાય છે. (૫૦)

विषयेषु न युञ्जीत, तेभ्यो नापि निवारयेत् ॥
इन्द्रियाणि मनःसाम्या–च्छाम्यन्ति स्वयमेव हि ॥५१॥

અર્થઃ—ઇંદ્રિયોને વિષયને વિષે જોડવી નહીં, અને વિષયથી વારવી પણ નહીં. કારણકે, મનમાં સમતા ઉપજે છતે ઇંદ્રિયો પોતાની મેળેજ શાંત થાય છે. (૫૧)

इन्द्रियाणि निजार्थेषु, गच्छन्त्येव स्वभावतः ॥
स्वान्ते रागो विरागो वा, निवार्यस्तत्र धीमता ॥५२॥

અર્થ—ઇંદ્રિયો સ્વભાવથીજ પોત પોતાના વિષયને વિષે જાય છે પણ વિવેકી પુરૂષે વિષયના સબધથી મનમા રાગ અથવા દ્વેષ ન રાખવો (૫૨)

यातु नामेन्द्रियग्रामः, स्वान्तादिष्टो यतस्ततः ॥

न वालनीयः पञ्चास्य-सनिभो वालितो भवेत् ॥५३॥

અર્થ—મનના આદેશમા રહેલો ઇંદ્રિયનો સમૂહ પોતાની ઇચ્છા માફક ભલે ગમે તે વિષયને વિષે જાઓ પણ તેને વાળવો નહીં કારણકે, બળાત્કારથી વાળિયે તો તે સિંહ મરણો ક્ષોભ પામે છે (૫૩)

निर्लेपस्य निरूपस्य, सिद्धस्य परमात्मनः ॥

चिदानन्दमयस्य स्या-द्ध्यान रूपाविवर्जितम् ॥५४॥

અર્થ—કર્મલેપ વિનાના, નિરાકાર અને ચિદાનદમય એવા સિદ્ધ પરમાત્માનુ ધ્યાન કરવુ, તે "રૂપાતીત" ધ્યાન કહેવાય છે (૫૪)

स्वर्णादिबिम्बनिष्पत्तौ, कृते निर्मदनेऽन्तरा ॥

ज्योतिःपूर्णे च सस्थाने, रूपातीतस्य कल्पना ॥५५॥

અર્થ—સુવર્ણ વિગેરેનુ બિબ બનાવ્યુ હોય, તેના દ્વારની પોલાણ કાઢી નાખી હોય, તથા બિબનુ સસ્થાન તેજોમય હોય, એવા સ્વરૂપને વિષે રૂપાતીતની કલ્પના થાય છે (૫૫)

यद्दृश्येत न तत्तत्त्व, यत्तत्त्व तन्न दृश्यते ॥

देहात्मान्तर्द्वयोर्मध्य-भावस्तत्त्वं विधीयते ॥५६॥

અર્થઃ—જે દેખાય છે તે તત્ત્વ નહીં, અને જે તત્ત્વ છે તે દેખાય નહીં. દેહ અને આત્મા એ બન્નેનો મધ્ય સ્થભાવ તેજ તત્ત્વ કહેવાય છે. (૫૬)

अलक्ष्यः पञ्चभिस्ताव-दिन्द्रियैर्निकटैरपि ॥
स तु लक्षयते तानि, क्षेत्रज्ञोऽलक्ष्य इत्यसौ ॥ ५७ ॥

અર્થઃ—નિકટ રહેલી ઈંદ્રિયો પણ આત્માને દેખતી નથી. પણ આત્મા ઇંદ્રિયોને દેખે છે. માટેજ ક્ષેત્રજ્ઞ (આત્મા) અલક્ષ્ય (ન જણાય એવો) કહેવાય છે. (૫૭)

आगतं वीजमन्यस्य, क्षेत्रेऽन्यस्य निधीयते ॥
चित्रं क्षेत्रज्ञ एवात्र, प्ररोहति यदा तदा ॥ ५८ ॥

અર્થઃ—અન્યક્ષેત્રનું વાવેલું બીજ અન્યના ક્ષેત્રમાં વવાય છે. અને તે ક્ષેત્રમાં ક્ષેત્રજ્ઞ (ક્ષેત્રનો જાણ આત્મા) ઉગે છે, એ મોટું આશ્ચર્ય છે! (૫૮)

परमाणुरतिस्वल्पः, खमतिव्यापकं किल ॥
तौ जितौ येन माहात्म्या-न्नमस्तस्मै परात्मने ॥ ५९ ॥

અર્થઃ—અતિ સૂક્ષ્મ પરમાણુ અને સર્વવ્યાપી આકાશ એ બન્ને વસ્તુને પોતાના માહાત્મ્યથી જીતનારા પરમાત્માને નમસ્કાર થાઓ. (૫૯)

आत्मद्रव्ये समीपस्थे, योऽपरद्रव्यसंमुखः ॥
भ्रान्त्या विलोकयत्यज्ञः, कस्तस्माद्बालिशोऽपरः ॥ ६० ॥

અર્થઃ—જે અજ્ઞ જીવ આત્મારૂપ દ્રવ્ય સમીપ છતાં બીજા દ્રવ્ય (ધન) તરફ ભ્રાંતિથી જુવે છે, તેના કરતાં બીજો કોણ મૂર્ખ હશે? (૬૦)

परमात्मागस्त्यस्मृत्या, चित्रं संसारसागरः ॥
असरूयं भवत्येव, प्राणिना चुलुकोपमः ॥६१॥

અર્થ—ભવ્યજીવોને પરમાત્મારૂપ અગસ્ત્ય ઋષિના સ્મરણથી સસારરૂપ સમુદ્ર નિશ્ચયથી કોગળા સરખો થાય છે એ મોટુ આશ્ચર્ય છે। (૬૧)

आत्मानमेव ससार- माहुः कर्माभिवेष्टितम् ॥
तमेव कर्मनिर्मुक्त, साक्षान्मोक्ष मनस्विनः ॥६२॥

અર્થ—પડિત પુરૂષો કર્મથી વીટાયલા જીવનેજ સસાર અને કર્મથી મૂકાયએલા જીવનેજ સાક્ષાત્ મોક્ષ કહે છે (૬૨)

अयमात्मैव निःकर्मा, केवलज्ञानभास्करः ॥
लोकालोक यदा वेत्ति, प्रोच्यते सर्वगस्तदा ॥६३॥

અર્થ—એ જીવજ કર્મે કરીને રહિત અને કેવળ જ્ઞાનથી સૂર્યસમાન થઈ લોકને તથા અલોકને જ્યારે જાણે છે, ત્યારે તે કેવળી જીવજ "સર્વગામી" કહેવાય છે (૬૩)

शुभाशुभैः परिक्षीणैः, कर्मभिः केवलो यदा ॥
एकाकी जायते शून्यः, स एवात्मा प्रकीर्तित ॥६४॥

અર્થ—જીવ શુભાશુભ કર્મનો અત્યત ક્ષય થવાથી જ્યારે કેવળ એકાકી થાય છે, ત્યારે તેજ જીવ "શૂન્ય" કહેવાય છે (૬૪)

लिङ्गत्रयविनिर्मुक्त, सिद्धमेकं निरञ्जनम् ॥
निराश्रयं निराहार-मात्मान चिन्तयेद्बुधः ॥६५॥

અર્થ—ડાહ્યા પુરૂષે ત્રણે લિગથી મૂકાએલા, સિદ્ધ, એક, નિરજન, શ્રમવિનાના એવા આત્માનુ ધ્યાન કરવુ (૬૫)

जितेन्द्रियत्वमारोग्यं, गात्रलाघवमार्दवे ॥
मनोवचनवत्काय-प्रसत्तिश्चेतनोदयः ॥६६॥
बुभुक्षामत्सरानङ्ग-मानमायाभयक्रुधाम् ॥
निद्रालोभादिकानां च, नाशः स्यादात्मचिन्तनात् ॥६७॥

અર્થ:—આત્માના ધ્યાનથી ઇંદ્રિયો વશ થાય, શરીર હળવું થાય, કોમળતા ઉત્પન્ન થાય, મન, વચન અને કાયા પ્રસન્ન થાય, ચેતના ઉદય આવે, તથા ક્ષુધા, મત્સર, કામવિકાર, અહંકાર, કપટ, ભય, ક્રોધ, નિદ્રા અને લોભ ઇત્યાદિક વિકારનો નાશ થાય. (૬૬) (૬૭)

लयस्थो दृश्यतेऽभ्यासा-ज्जागरूकोऽपि निश्चलः ॥
प्रसुप्त इव सानन्दो, दर्शनात्परमात्मनः ॥६८॥

અર્થ:—અભ્યાસથી ધ્યાનમાં લયલીન થએલો અને પરમાત્માના દર્શનથી આનંદ પામેલો જીવ જાગૃત હોય તે પણ સુતેલાની પેઠે નિશ્ચળ દેખાય છે. (૬૮)

मनोवचनकायाना-मारम्भो नैव सर्वथा ॥
कर्तव्यो निश्चलैर्भाव्य- मौदासीन्यपरायणैः ॥६९॥

અર્થ:—વિવેકી પુરૂષોએ મન વચન કાયાથી સર્વથા આરંભ વર્જવો અને સર્વત્ર ઉદાસીનપણું રાખી નિશ્ચળ રહેવું. (૬૯)

पुण्यार्थमपि नारम्भं, कुर्यान्मुक्तिपरायणः ॥
पुण्यपापक्षयान्मुक्तिः, स्यादतः समतापरः ॥७०॥

અર્થ:—મુક્તિને અર્થે યત્ન કરનાર પુરૂષે પુણ્યને

અર્થે પણ આરંભ ન કરવો કારણ, પુણ્યનો તથા પાપનો સમૂળ નાશ થાય ત્યારેજ મુક્તિ થાય છે માટે બન્નેને વિષે સમતા રાખવી (૭૦)

संसारे यानि सौख्यानि, तानि सर्वाणि यत्पुनः ॥
न किंचिदिव दृश्यन्ते, तदौदासीन्यमाश्रयेत् ॥७१॥

અર્થ —સંસારમા જે કાઇ સુખ છે તે નહીં જેવુ દેખાય છે, માટે ઉદાસીનપણુ સ્વીકારવુ (૭૧)

वेदा यज्ञाश्च शास्त्राणि, तपस्तीर्थानि संयमः ॥
समतायास्तुला नैव, यान्ति सर्वेऽपि मेलिताः ॥७२॥

અર્થ —વેદ, યજ્ઞ, શાસ્ત્રો, તપસ્યા, સયમ એ સર્વેને એકઠા કરીએ તોપણ તે સર્વે સમતાની બરાબરી કરી ન શકે. (૭૨)

एकवर्णं यथा दुग्धं, बहुवर्णासु धेनुषु ॥
तथा धर्मस्य वैचित्र्यं, तत्त्वमेकं परं पुनः ॥७३॥

અર્થ —જેમ જુદા જુદા રગની સર્વે ગાયોને વિષે દૂધ એકજ રગનુ હોય છે, તેમ ધર્મનુ બાહ્ય સ્વરૂપ જુદા જુદા પ્રકારનુ છે, પણ તે સર્વેને વિષે પરમ તત્ત્વતો એકજ છે (૭૩)

(शङ्का ।)

आत्मानं मन्यते नैकश्चार्वाकस्तस्य वागियम् ॥
जतुनीरन्ध्रिते भाण्डे, क्षिप्तश्चौरो मृतोऽथ सः ॥७४॥
निर्जगाम कथं तस्य, जीवः मविविशुः कथम् ॥
अपरे कृमिरूपाश्च, निश्छिद्रे तत्र वस्तुनि ॥७५॥

અર્થઃ—એક ચાર્વાક (નાસ્તિક) માત્ર જીવ માનતો નથી.. તે એમ કહે છે કે-"મોટે લાખ ચોટાડી મજબૂત બંધ કરેલી કોઠીમાં ચોર રાખ્યો હતો, તે મરણ પામ્યો. હવે છિદ્ર વિનાની તે વસ્તુમાંથી ચોરનો જીવ બહાર શી રીતે નીકળ્યો ? તથા તેને શરીરે બીજા કૃમિરૂપ જીવ પડયા હતા તે શી રીતે અંદર પેઠા?" (૭૪) (૭૫)

(उत्तरम् ।)

तत्रैव मुद्रिते भाण्डे, क्षिप्तः शङ्खयुतो नरः ॥
शङ्खात्तद्वादितान्नादो, निष्क्रामति कथं बहिः ॥७६॥

અર્થઃ—(ઉપરલી શંકાનો ઉત્તર.) જેવી કોઠીમાં ચોર રાખ્યો હતો. તેણે વગાડેલા શંખનો ધ્વનિ (સાદ) બહાર શી રીતે નીકળ્યો ? (૭૬)

अग्निर्मूर्तः कथं ध्माते, लोहगोले विशत्यहो ॥
अमूर्तस्यात्मनस्तत्किं, विहन्येतां गमागमौ ॥७७॥

અર્થઃ—તેમજ આશ્ચર્ય છે કે, તપાયલા લોઢાના ગોળામાં સાકાર અગ્નિ શી રીતે પેસે છે ? એમ સાકાર વસ્તુના પ્રવેશ, નિર્ગમ (પેસવું, નીકળવું) થાય છે, તો પછી નિરાકાર જીવના થવાને શી હરકત ? (૭૭)

(शङ्का ।)

दस्योरन्यस्य काये च, शतशः शकलीकृते ॥
न दृष्टः क्वचिदप्यात्मा, सोऽस्ति चेत्किं न दृश्यते ॥७८॥

અર્થઃ—(શંકા.) બીજા એક ચોરના શેંકડો કટકા કરી

નાખ્યા, તોપણ જીવ દેખાયો નહીં જો જીવ છે, તો તે દેખાતો કેમ નથી ? (૭૮)

(उत्तरम् ।]

खण्डितेऽप्यरणेः काष्ठे, मूर्तो वह्निर्वसन्नपि ॥
न दृष्टो दृश्यते किं वा जीवो मूर्तिविवर्जितः ॥७९॥

અર્થ —(ઉત્તર) અરણિ વૃક્ષના કાષ્ઠના કટકા કટકા કરીએ તો પણ તેની અદર રહેલો સાકાર અગ્નિ દેખાતો નથી તો પછી શરીરમા રહેલો નિરાકાર જીવ ક્યાથી દેખાય? (૭૯)

(शङ्का ।)

जीवन्नन्यतरश्चौर–स्तोल्तिो मारितोऽथच ॥
श्वासरोधेन किं तस्य, तोल्मे न घनोनता ॥८०॥

અર્થ —(શકા) એક જીવતો ચોર તોળ્યો અને તેને શ્વાસ રૂધીને મારયા પછી તોળ્યો પણ તોલમા કેમ વધ્યો ઘટયો નહીં ? (૮૦)

(उत्तरम् ।)

दृतेः पूर्णस्य वातेन, रिक्तस्यापि च तोल्ने ॥
तुल्ा समा तथाङ्गस्य, सात्मनोऽनात्मनोऽपि च ॥८१॥

અર્થ —(ઉત્તર) પાણીની મશક પવનથી ભરેલી અથવા ખાલી તોળીએ તોએ તે તોલમા સરખીજ ઉતરે છે તેમ શરીર જીવ હોય અથવા ન હોય તોએ તોલમા સરખુજ ઉતરે છે (૮૧)

(शङ्का ।)

जलपिष्टादियोगस्य, मद्यस्य मदशक्तिवत् ॥
अचेतनेभ्यश्चैतन्यं, भूतेभ्यस्तद्वदेव हि ॥८२॥

અર્થઃ—(શંકા.) જેમ જળ, લોટ (આટો) વિગેરે વસ્તુના મિશ્રણથી મદ્યમાં માદક શક્તિ (કેફ ઉપજાવવાની સત્તા) આવે છે, તેમ અચેતન પંચ મહાભુતોનું મિશ્રણ થવાથી ચૈતન્ય ઉત્પન્ન થાય છે. (૮૨)

(उत्तरम् ।)

शक्तिर्नविद्यते येषां, भिन्नभिन्नास्थितिस्पृशाम् ॥
समुदायेऽपि नो तेषां, शक्तिर्भीरुषु शौर्यवत् ॥८३॥

અર્થઃ—(ઉત્તર.) વસ્તુઓ જુદી જુદી છતાં જે તેમાં શક્તિ નથી, તે શકિત તેજ વસ્તુઓના સમુદાયમાં નજ હોય. જેમ જુદા જુદા બીકણ લોકોમાં શૂરવીરપણું નથી, તેથી તે તેઓના સમુદાયમાં પણ હોતું નથી. (૮૩)

प्रत्यक्षैकप्रमाणस्य; नास्तिकस्य न गोचरः ॥
आत्मा ज्ञेयोऽनुमानाद्यै-र्वायुः कम्प्रैः पटैरिव ॥८४॥

અર્થઃ—એક પ્રત્યક્ષ પ્રમાણનેજ માનનારા નાસ્તિકને જીવ જણાય નહીં. કારણ કે જેમ હાલનારાં લુગડાં ઉપરથી વાયુનું અનુમાન (કલ્પના) કરી શકાય છે, તેમ જીવ પણ અનુમાન વિગેરેથીજ જણાય છે. (૮૪)

अङ्कुरः सुन्दरे वीजे, सूर्यकान्ते च पावकः ॥
सलिलं चन्द्रकान्ते च, युक्त्यात्माङ्गेऽपि साध्यते ॥८५॥

અર્થ —જેમ સુદર બીજમા અકુર, સૂર્યકાત મણિમા અગ્નિ, અને ચદ્રકાત મણિમા જળ છે, એમ યુક્તિથી સિદ્ધ કરાય છે, તેમ શરીરમા જીવ છે તે પણ યુક્તિથીજ સિદ્ધ કરાય છે (૮૫)

प्रत्यक्षेण प्रमाणेन, लक्ष्यते न जनैर्यदि ॥
तन्नास्तिक तवाङ्गे किं, नास्ति बुद्धिः कुरूत्तरम् ॥८६॥

અર્થ —"લોકોને પ્રત્યક્ષ પ્રમાણથી જીવ જણાતો નથી " એમ તુ કહીશ તો અમે પૂછિયે કે, "હે નાસ્તિક ! તારા શરીરમા બુદ્ધિ છે કે નહીં, તે કહે " (૮૬)

अप्रत्यक्षा तवाम्बा चे-द्दूरदेशान्तरं गता ॥
जीवन्त्यपि मृता हन्त, नास्ति नास्तिक सा कथम् ॥८७॥

અર્થ —હે નાસ્તિક ! દૂર દેશાતરે ગયેલી તારી માતા પ્રત્યક્ષ દેખાતી નથી, ત્યારે તારા મત પ્રમાણે તે જીવતી મરી ગઇ નહી કે શુ ? (૮૭)

तिलकाष्ठपयःपुष्पे-ष्वास्ते क्रमशो यथा ॥
तैलाग्निघृतसौरभ्या-ण्येवमात्मापि विग्रहे ॥८८॥

અર્થ —જેમ તિલમા તેલ, લાકડામા અગ્નિ, દૂધમા ઘી અને ફૂલમા સુગધી રહે છે, તેમ જીવ પણ શરીરમા રહે છે (૮૮)

अस्त्येव नियतो जीवो, लक्षणैर्ज्ञायते पुनः ॥
संज्ञाविज्ञानचैतन्य-चित्तप्रभृतिभिर्भृशम् ॥८९॥

જીવ ... રમા જીવ નિયમથી છેજ તે

સંજ્ઞા, વિજ્ઞાન, ચૈતન્ય, ચિત્ત વિગેરે લક્ષણથી જણાય છે. (૮૯)

पयःपानं शिशोर्भीतिः, संकोचिन्यां च मैथुनम् ॥
अशोकेऽर्थग्रहो बिल्वे, जीवे संज्ञाचतुष्टयम् ॥९०॥

અર્થઃ—બાળકને વિષે ધાવવાની, સંકોચિની (સંકોચ-ણી) વનસ્પતિને વિષે ભય, અશોક વૃક્ષને વિષે મૈથુન તથા બિલ્વ વૃક્ષને વિષે ધનનો સંગ્રહ એ ચારે સંજ્ઞાઓ જીવને વિષે જાણવી. (૯૦)

इन्द्रियापेक्षया प्रायः, सतेकमस्तोकमेव च ॥
चराचरेषु जीवेषु, चैतन्यमपि निश्चितम् ॥९१॥

અર્થઃ—સ્થાવર જંગમ જીવોમાં ઇંદ્રિયોની અપેક્ષાએ થોડું તથા ઘણું ચૈતન્ય પ્રાયે નિશ્ચયે છેજ. (૯૧)

अन्तरायत्रुटेर्ज्ञानं, कियत्क्वापि प्रवर्तते ॥
मतिश्रुतप्रभृतिकं, निर्मलं केवलावधि ॥९२॥

અર્થઃ—મતિ, શ્રુત, અવધિ, મનઃપર્યવ તથા કેવળ એ પાંચ નિર્મળ જ્ઞાનોમાં કેટલુંક કોઇ ઠેકાણે જ્ઞાનાંતરાયના તુટવાથી થાય છે. (૯૨)

त्रिकालविषयव्यक्ति—चिन्तासंतानधारकम् ॥
नानाविकल्पसंकल्प—रूपं चित्तं प्रवर्त्तते ॥९३॥

અર્થઃ—અતીત, અનાગત અને વર્તમાન ત્રણે કાળના વિષયની ચિંતાને હમેશાં ધારણ કરનારૂં તથા નાનાવિધ સંકલ્પવિકલ્પરૂપ ચિત્ત હોય છે. (૯૩)

नास्तिकस्यापि नास्त्येत्र, प्रसरः प्रश्नकर्मणि ॥
नास्तिकत्वाभिमानस्तु, केवल वलवत्तरः ॥९४॥

અર્થ —નાસ્તિકને પણ પ્રશ્ન કરવાનો અવકાશ નથી-જ પણ તેને કેવળ નાસ્તિક પણાનો ઘણોજ અહંકાર છે. (૯૪)

ध्यानुर्न प्रभवन्ति दुःखविषमव्याध्यादयः साधयः,
सिद्धिः पाणितले स्थितेव पुरतः श्रेयांसि सर्वाण्यपि ॥
त्रुट्यन्ते च मृणालनालमिव वा मर्माणि दुष्कर्मणा,
तेन ध्यानसम न किंचन जने कर्तव्यमस्त्यद्भुतम् ॥९५॥

इति श्रीजिनदत्तसूरिविरचिते विवेकविलासे ध्यानस्वरूपनिरूपणं नामैकादश उल्लास ॥११॥

અર્થ —ધ્યાન કરનાર માણસ ઉપર દુ ખ, કઠણ રોગ તથા મનના વિકાર પોતાનો જોર ચલાવી શકતા નથી, સિદ્ધિ તેના હાથમા રહેલી જેવી હોય છે, સર્વ કલ્યાણો મુખ આગળ ચાકરની પેઠે રહેલા જેવા હોય છે, અને માઠા કર્મના મર્મો કમલતતુની પેઠે સહજમા ત્રૂટી જાય છે માટે જગતમા ધ્યાન સરખુ આશ્ચર્યકારિ કોઇપણ કર્તવ્ય નથી (૯૫)

ઇતિ શ્રીજિનદત્તસુરિવિરચિત વિવેકવિલાસની ગૂર્જર ભાષાનો અગ્યારમો ઉલ્લાસ સપૂર્ણ. (૧૧)



अथ द्वादश उल्लासः ।

दुःस्वप्नैः प्रकृतित्यागै-र्दुर्निमित्तैश्च दुर्ग्रहैः ॥
हंसप्रचारान्यत्वैश्च, ज्ञेयो मृत्युः समीपगः ॥१॥

અર્થઃ—માઠાં સ્વપ્નથી, પોતાની પ્રકૃતિના બદલાવાથી, માઠાં નિમિત્તથી, માઠા ગ્રહથી તથા હંસચારના (સ્વરના) ફેરફારથી મરણ સમીપ આવેલું જાણવું. (૧)

प्रायश्चित्तं व्रतोच्चारं, संन्यासं जन्तुमोचनम् ॥
गुरुदेवस्मृतिं मृत्यौ, स्पृहयन्ति विवेकिनः ॥२॥

અર્થઃ—વિવેકી પુરૂષો મરણ નજીક આવે પ્રાયશ્ચિત્ત (આલોયણા), વ્રતનું ઉચ્ચરવું, ત્યાગ કરવો, જીવ છોડાવવા તથા દેવગુરૂનાં સ્મરણ કરવાં એટલાં વાનાં વાંછે છે. (૨)

अनार्त्तः शान्तिमान् मृत्यौ, न तिर्यङ् नापि नारकः ॥
धर्मध्यानी सुरो मर्त्यो-ऽनशनी त्वमरेश्वरः ॥३॥

અર્થઃ—જે માણસ મરણ સમયે આર્તધ્યાન ન કરે, તથા શાંતિમાં રહે, તે માણસ તિર્યંચ અથવા નરક ગતિમાં જતો નથી. જે ધર્મધ્યાન કરે તે દેવતા થાય છે, અને અનશન કરે તે દેવતાનો સ્વામી થાય છે. (૩)

तप्तस्य तपसः सम्यक्, पठितस्य श्रुतस्य च ॥
पालितस्य व्रतस्यापि, फलं मृत्युः समाधिना ॥४॥

અર્થઃ—આચરેલી તપસ્યા, સમ્યક્ પ્રકારે ભણેલું શાસ્ત્ર, અને સારી પેઠે પાળેલું વ્રત એ ત્રણેનું ફળ સમાધિમરણ છે. (૪)

अजडेनापि मर्तव्य, जडेनापि हि सर्वथा ॥
अवश्यमेव मर्तव्यं, कि बिभ्यति विवेकिनः ॥५॥

અર્થ —વિદ્વાન્ હોય કે જડ હોય, સર્વે જીવોને અવશ્ય મરવુ તો છેજ માટે વિવેકી પુરૂષોએ શા માટે બીવુ જોઈયે (૫)

दित्सा स्वल्पधनस्याथा–चष्टम्भः कष्टितस्य च ॥
•गतायुषोऽपि धीरत्वं, स्वभावोऽयं महात्मनाम् ॥ ६ ॥

અથ —અલ્પ ધન છતા દાન દેવાની ઇચ્છા, દુ ખ આવે મનની સ્થિરતા તથા મરણ સમીપ આવે ધીરતા એ સત્પુરૂષોનો સ્વભાવ છે (૬)

नास्ति मृत्युसम दुख, ससारेऽत्र शरीरिणाम् ॥
ततः किमपि तत्कार्य, येनैतन्न भवेत्पुनः ॥ ७ ॥

અર્થ —જીવોને આ સસારમા મરણ સમાન દુ ખ નથી માટે જેથી ફરીવાર મરણ ન આવે, એવુ કાઇપણ કૃત્ય અવશ્ય કરવુ (૭)

शुभं सर्व समागच्छ–च्छ्लाघनीय पुनः पुन' ॥
क्रियासमभिहारेण, मरण तु त्रपाकरम् ॥ ८ ॥

અર્થઃ—સર્વ શુભ ભાવ વારવાર આવતા હોય તે વખાણવા લાયક છે, પણ અવિરત જીવને વારવાર મરણ આવે છે તે શરમ ભરેલુ છે (૮)

सर्वत्रसुमभावज्ञैः, सपन्नाखिलसुभिः ॥
आयुः भवर्नोपायो, निर्नाशयि तैरपि ॥ ९ ॥

અર્થઃ—સર્વે વસ્તુઓની શક્તિ જાણનારા તથા સર્વે વસ્તુઓ પામેલા એવા શ્રી જિનમહારાજની જાણમાં પણ આયુષ્ય વધારવાનો ઉપાય આવ્યો નહીં. (૯)

सर्वेषां पूर्वजाः सर्वे, नृणां तिष्ठन्तु दूरतः ॥
एकैकोऽपि स्थिरश्चेत्स्या–ल्लोकः पूर्येत तैरपि ॥ १० ॥

અર્થઃ—સર્વે જીવોના સર્વે પૂર્વજ તો દૂર રહો, પણ દરેક જીવ જો જગત્‌માં સ્થિર રહે તોપણ આખો લોક તેથી ભરાઇ જાય. (૧૦)

आबाल्यात्सुकृतैः स्वजन्म सकलं कृत्वा कृतार्थं चिरं,
धर्मध्यानविधानलीनमनसो मोहव्यपोहोद्यताः ॥
पर्यन्तं प्रतिभाविशेषवशतो ज्ञात्वा निजस्यायुषः,
कायत्यागमुपासते सुकृतिनः पूर्वोक्तया शिक्षया ॥११॥

અર્થઃ—બાલ્યાવસ્થાથી માંડી ચિરકાળ સુધી કરેલા સુકૃતવડે પોતાનો જન્મ સફલ કરીને ધર્મધ્યાનને વિષે પોતાનું મન તલ્લીન રાખનારા અને મોહનો નાશ કરવાને અર્થે પ્રયત્ન કરનારા એવા પુણ્યશાળી લોકો અવસર આવે પોતાના આયુષ્યનો છેડો વિશેષ જ્ઞાનથી જાણીને ઉપર કહેલી રીત પ્રમાણે દેહનો ત્યાગ કરે છે. (૧૧)

स श्रेष्ठः पुरुषाग्रणीः स सुभटोत्तंसः प्रशंसास्पदं,
स प्राज्ञः स कलानिधिः स च मुनिः स क्ष्मातले योगवित् ॥
स ज्ञानी स गुणिव्रजस्य तिलकं जानाति यः स्वां मृतिं,
निर्मोहः समुपार्जयत्यथ पदं लोकोत्तरं शाश्वतम् ॥१२॥

इति श्रीजिनदत्तसूरिविरचिते श्रीविवेकविलासे परमपदनिरूपणं नाम द्वादश उल्लासः ॥१२॥

અર્થ—જે પુરૂષ પોતાનુ મરણ જાણે, અને મોહિની કર્મનો અત્યત ક્ષય કરી લોકને અતે રહેલા શાશ્વત પદને (મુકિતપદને) પામે, તેજ પુરૂષ જગતમા શ્રેષ્ઠ, મનુષ્યોમા શિરોમણી, સુભટોનો અગ્રેસર, વખાણવા લાયક, પડિત, કળામા કુશળ, મુનિરાજ, યોગી, જ્ઞાની તથા ગુણી લોકોમા શ્રેષ્ઠ હોય (૧૨)

ઇતિ શ્રી જિનદત્તસૂરિવિરચિત વિવેકવિલાસની ગુર્જરભાષામા પરમપદનિરૂપણ નામે દ્વાદશ ઉલ્લાસ સપૂર્ણ.(૧૨)

(अथ प्रशस्तिः ।)

आस्ति प्रीतिपदं गच्छो, जगतः सहकारवत् ॥
जनपुस्कोकिलाकीर्णो, वायडस्थानकस्थितिः ॥१॥

અર્થ—આબાના વૃક્ષની પેઠે જગતને પ્રીતિ ઉપજાવનાર અને શ્રેષ્ઠ પુરૂષરૂપ કોકિલપક્ષીથી વ્યાપ્ત એવો "વાયડ" નામે ગચ્છ છે (૧)

अर्हन्मतपुरीवप्र–स्तत्र श्रीराशिलः प्रभुः ॥
अनुल्लङ्घ्यः परवादि–वीरैः स्थैर्यगुणैकभूः ॥२॥

અર્થ—તે ગચ્છમા, જૈનમત રૂપ નગરીનુ રક્ષણ કરનારો એક કોટજ હોય નહી? એવા, વાદિરૂપ શૂરવિરોથી હાર ન પામે એવા અને સ્થિરતા વિગેરે સદ્ગુણોનુ વસતિસ્થાન એવા શ્રીરાશિલ પ્રભુ થયા (૨)

गुणाः श्रीजीवदेवस्य, प्रभोरद्भुतकेलयः ॥
विद्वन्नरशिरोदोला, यद्गृह्णन्ति यदाचन ॥३॥

અર્થ—શ્રી જિવદેવ ગુરૂ મહારાજના ગુણોની લીલા કાંઈ અદ્ભુત છે. કારણ કે, તે [ગુણો] વિદ્વજ્જનોના મસ્તકરૂપ દોલાને (હિંદોળાને) કોઇ કાળે મૂકતા નથી. અર્થાત્ વિદ્વાન લોકો હમેશાં માથું ધુણાવીને શ્રી જીવદેવ ગુરૂ મહારાજના ગુણોની પ્રશંસા કરે છે. (૩)

अस्ति तच्चरणोपास्ति–संजातस्वस्तिविस्तरः ॥
सूरिः श्रीजिनदत्ताख्यः, ख्यातः सूरिषु भूरिषु ॥४॥

અર્થ:— તે જીવદેવ ગુરૂ મહારાજની ચરણ સેવાથી કલ્યાણની પરંપરા પામેલા શ્રી જીનદત્ત સુરિ નામે આચાર્ય સર્વ આચાર્યોમાં પ્રસિદ્ધ છે. (૪)

वाहुमान्वयपाथोधि–संवर्धनविधौ विधुः ॥
श्रीमानुदयसिंहोऽस्ति, श्रीजाबालिपुराधिपः ॥५॥

અર્થ:—"બાહુમાં" વંશરૂપ સમુદ્રને ઉલ્લાસ પમાડવાને ચંદ્રમા સમાન એવો શ્રી ઉદયસિંહનામે જાબાલિપુરનો રાજા છે. (૫)

तस्य विश्वाससदनं, कोशरक्षाविचक्षणः ॥
देवपालो महामात्यः प्रज्ञानन्दनचन्दनः ॥६॥

અર્થ:—તે ઉદયસિંહ રાજાનો ઘણો વિશ્વાસુ અને તેના ભાંડાગારની રક્ષા કરવામાં નિપુણ એવો દેવપાલ નામે મોટો મંત્રી, બુદ્ધિરૂપ નંદન વનમાં ચંદન સરખો અર્થાત મોટો બુદ્ધિશાળી છે. (૬)

आधारः सर्वधर्माणा–मवधिर्ज्ञानशालिनाम् ॥
आस्थानं सर्वपुण्याना–माकरः सर्वसंपदाम् ॥७॥

प्रतिपन्नात्मजस्तस्य, वायडान्वयसंभवः ॥
धनपालः शुचिर्धीमान्, विवेकोल्लासिमानसः ॥८॥

અર્થ—સર્વે ધર્મોનો આધાર, જ્ઞાનશાળી લોકોમા અગ્રેસર, સર્વ પુણ્યોનુ વસતી સ્થાન, સર્વ સપદાઓની જાણે ખાણજ હોયની ! એવો, પવિત્ર, બુદ્ધિશાળી, વિવેકથી વિકાસ પામતા મનને ધારણ કરનારો અને વાયડ વશમા ઉત્પન્ન થયેલો "ધનપાલ" નામે દેવપાલનો માનેલો પુત્ર છે (૭). (૮)

तन्मनस्तोषपोषाय, जिनादित्तसूरिभिः ॥
श्रीविवेकविलासाख्यो, ग्रन्थोऽयं निर्ममेऽनघः ॥९॥

અર્થ—શ્રી જીનદત્ત સુરિજીએ તે ધનપાળનુ મન સતુષ્ટ કરવાને અર્થે આ "વિવેકવિલાસ" નામે પવિત્ર ગ્રથ રચ્યો. (૯)

देवः श्रीगणो भुजगपगुर्यावद्युगादिप्रभोः
श्रीमद्विश्वविदः प्रविस्फुरकलाव्कारशृङ्गारिणः
भक्तिव्यक्तिविशेषमेष कुरुते तावच्चिरं नन्दतात्,
ग्रन्थोऽयं भृशमक्ष्यादरपरं पापठ्यमानो बुधैः ॥१०॥

અર્થ—નાગ કુમારનો સ્વામી શ્રી ધરણેંદ્ર દેવ, સ્ફુરણ પામતી સર્વ કળાઓને શોભાવનાર અને સર્વજ્ઞ એવા શ્રી યુગાદિનાથ ઋષભ ભગવાનની અતિશય ભકિત જ્યા સુધી પ્રગટ કરે છે, ત્યાસુધી પડિત પુરૂષોએ આદરથી અને વારવાર પઠન કરાતો એવો આ (વિવેકવિલાસ) ગ્રંથ ચિરકાળ આબાદ રહો. (૧૦)

